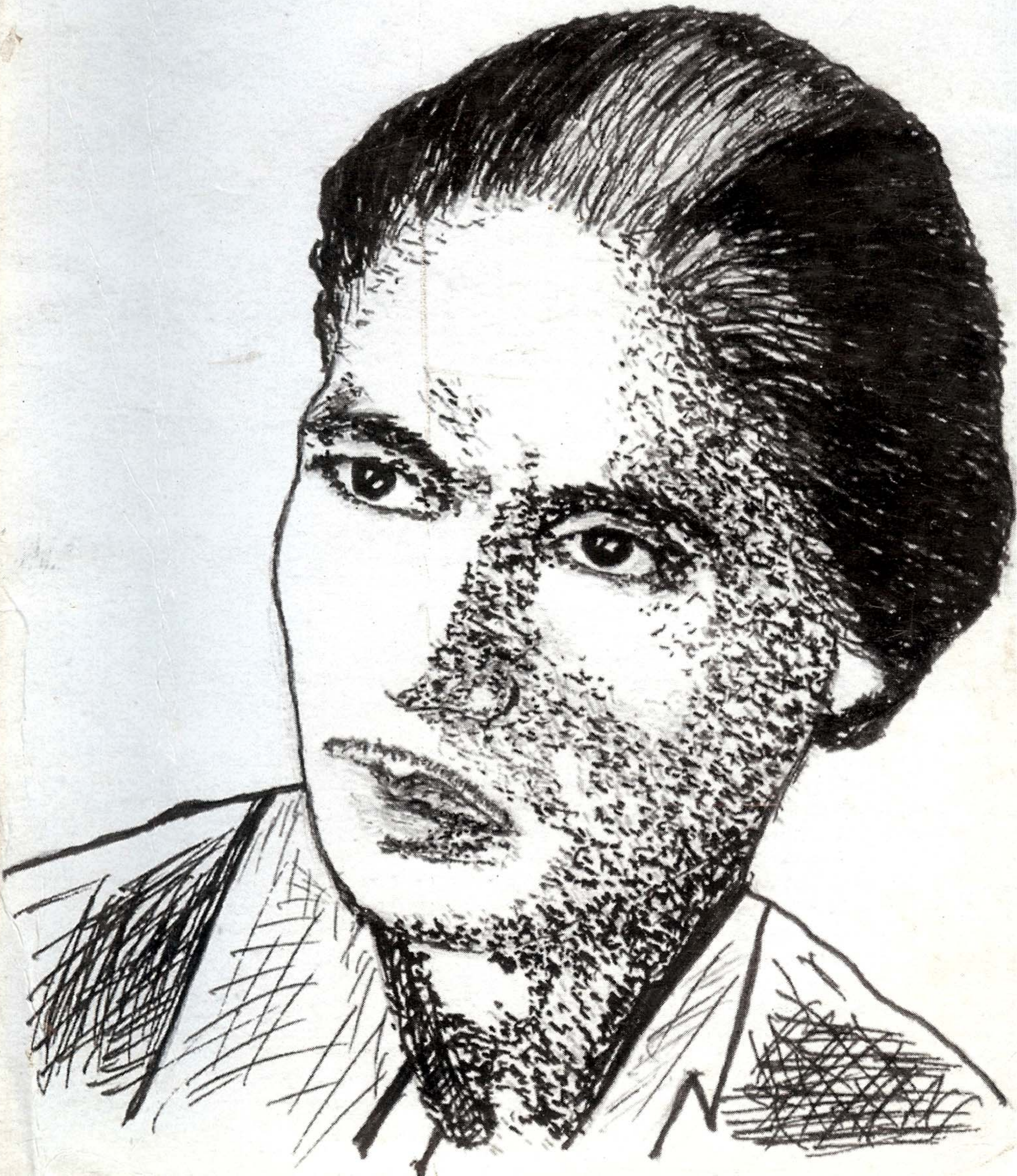
हमर छत्तीसगढ़-5

त्रिभुवन पाण्डेय पर केन्द्रित



हमर छत्तीसगढ़ - 5
त्रिभुवन पाण्डेय पर केन्द्रित

:: संरक्षक ::

जयन्त कुमार थोरात

•

:: प्रधान संपादक ::

दीपक लखोटिया

•

:: सम्पादक ::

डुमन लाल ध्रुव

•

:: संपादक मण्डल ::

प्रो. सुरेश देशमुख

रंजीत भट्टाचार्य

दुर्गा प्रसाद पारकर

डॉ. सरिता दोशी

•

:: सहयोग ::

अभय कुमार मिश्रा : महावीर अग्रवाल

ISBN - 13 - 978 - 93 - 80356 - 48 - 8

हमर छत्तीसगढ़	:	त्रिभुवन पाण्डेय पर केन्द्रित
अंक	:	पांचवी (जनवरी 2010–दिसम्बर 2014)
सम्पादक	:	डुमन लाल ध्रुव
सौजन्य सहयोग	:	द्वारिका प्रसाद तिवारी : हीरालाल साहू, कविता ध्रुव
अनियतकालीन	:	अव्यवसायिक
संपादन संचालन	:	पूर्णतः अवैतनिक
प्रकाशक	:	श्री प्रकाशन
इस अंक का मूल्य	:	चार सौ रूपये मात्र
आजीवन सदस्यता	:	तीन हजार रूपये
अक्षर संयोजन	:	श्री प्रकाशन, दुर्ग (छ.ग.)
प्रकाशक व मुद्रक	:	श्री प्रकाशन, ए–14, आदर्श नगर, दुर्ग (छत्तीसगढ़) 491001 फोन : 0788–2210234

अनुक्रम

त्रिभुवन पाण्डेय : व्यक्ति एवं रचना

कवित्त

संपादक की कलम से

संस्मरण

गीतों के बहाने

व्यंग्य विमर्श : त्रिभुवन पाण्डेय

आमने सामने

मूल्यांकन

पत्र

छत्तीसगढ़ी अनुवाद

गीत गाता चल (परिन्दे सुनो)

मेरे समकालीन / संस्मरण, व्यक्तित्व-कृतित्व

कवित्त

कवित्त

ओ आसमां है

संतोष झांझी

देखकर उनको अक्सर ये लोग कहते हैं
वो आसमों है सर झुकाये फिर भी रहते हैं

''झूठ जैसा सच'' है भाई ''पम्पापुर की कथा''
''गाओ बन पाखी'' अब तो अपने मन की व्यथा
''महाकवि तुलसी'' भी जीवन अपना पढ़ते हैं
नवयुग आपसे मनीषी ले गढ़ते हैं
जो लिखने से पहले सब कुछ दिल पर सहते हैं
वो आसमां हैं .....

''ब्यूटी पार्लर में भालू'' सुनो सूत्रधार
''पंछी मत हँसो'' तुम इस बात पे इतना यार
''भगवान विष्णु की भारत यात्रा'' कब हुई थी
''विश्व बैंक बसति लक्ष्मी'' जी जिस दिन आई थी
''कागज की नाव'' आपको हम संग बहते हैं
वो आसमां है सर झुकाये फिर भी रहते हैं
विश्राम तुम्ही में बना है

•••

कृति

विद्या गुप्ता

कागज पर नहीं
वह समय के
दस्तावेजों पर
लिखता रहा कथा

कितनी नम आँखों से
चुनकर
कितने टूटे सपने
बिनकर
टूटे नीड़ों की
वह लिखता रहा व्यथा

कवि वह
बहता रहा सदा
बंधा रहा परिपाटी सा
रूख हवा के साधे
बांध कितने
मन के बांधे
साध लेखनी की प्रथा

वह वेदों का बहना
वह शब्दों का नाविक

महासमर का
ध्वज उठाता
सागर मंथता, गरल चुनता
विषपाई वह
छोड़ चला अमृत गाथा

●●●

ऐसे हैं त्रिभुवन

अशोक सिंघई

साहित्य के पथ दुर्गम
एक पथ साधना कुछ नहीं सुगम
कविता, व्यंग्य और आलोचना
के तीनों भुवनों में
जिनके चरण
ऐसे हैं त्रिभुवन

निष्कम्प नाव
जैसे सरिता में तिरती हो
जिनका कोई न हो बैरी
सबकी जिनसे निभती हो
नये–पुराने लिखने वालों की
शर्तिया शरण
ऐसे हैं त्रिभुवन

साहित्य–समझ के सबल हस्ताक्षर
निष्पाप किरण जैसे नियमित
अनुभवों की छानियों से उतरते
व्रण–विहीन सुरभित सौरभ
नहीं किसी को
कोई चुभन
ऐसे हैं त्रिभुवन

●●●

त्रिलोकीनाथ त्रिभुवन

गुलबीर सिंह भाटिया

मनुष्य जीवन में
कहां मिलते हैं – तीनों लोक एक साथ।
सदैव
अलग–अलग ही रहते हैं तीनों लोक
पृथ्वी, पाताल, स्वर्ग।
केवल एक ही लोक है – मनुष्य का
जीवन पर्यन्त
और मिल जाते हैं उसे तीनों
मोक्ष के पश्चात्।

कुछ भी असम्भव नहीं
त्रिलोकीनाथ के लिए
तीनों लोक
सदैव उसकी पहुंच में, उसके अपने।

ये तीनों लोक
समाहित हैं
त्रिभुवन जी के नाम में
स्वभाव में
और कर्म क्षेत्र में।

कविता
उनकी धरती

कथा–पाताल
और व्यंग्य–आकाश।
हर विधा में विद्यमान हैं
त्रिलोकीनाथ – त्रिभुवन।

●●●

संपादक की कलम से

संपादक की कलम से

संपादकीय

डुमन लाल ध्रुव

व्यंग्यकार, कवि, समीक्षक त्रिभुवन पाण्डेय के पचपन वर्षीय सृजन यात्रा का मूल्यांकन करने तथा उनके कृतित्व से परिचित करने के लिए इस पुस्तक के प्रकाशन की योजना 21 नवम्बर 2012 को पचहत्तरवें वर्ष प्रवेश के अवसर पर छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों एवं धमतरी के साहित्य अनुरागी नागरिकों की उपस्थिति में बनी। इस पुस्तक के प्रकाशन में होने वाले व्यय की पूर्ति के लिये जो सहयोग राशि घोषित की गई वह यथेष्ट थी। सर्व श्री दीपक लखोटिया, प्रो. सुरेश देशमुख, श्री जयंत थोरात, साहित्य, संगीत सांस्कृतिक मंच मुजगहन एवं श्री दुरगा परसाद पारकर ने उदारता पूर्वक इस पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग दिया।

21 नवम्बर 2012 का दिन लेखक के जीवन के 75वें जन्म दिवस के रूप में महत्वपूर्ण था। स्थानीय समाचार पत्र प्रखर समाचार ने त्रिभुवन पाण्डेय के व्यक्तित्व–कृतित्व पर प्रकाश डालने के लिए हीरक जयंती परिशिष्ट प्रकाशित किया। महत्वपूर्ण चित्रों के साथ प्रकाशित लेखक के महत्वपूर्ण विचार विशेष साज–सज्जा के साथ प्रस्तुत किये गये। सम्पादक दीपक लखोटिया की सभी ने जमकर प्रशंसा की। उपस्थित साहित्यकारों ने अपने संबोधन में इस परिशिष्ट का जोरदार उल्लेख किया। त्रिभुवन पाण्डेय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर केन्द्रित वृहद् पुस्तक प्रकाशित करने की आवश्यकता पर सभी ने जोर डाला। परिणाम यह हुआ कि पुस्तक प्रकाशन की घोषणा होने के साथ प्रकाशन व्यय की आपूर्ति के लिये सहयोग राशि की घोषणा भी हो गई। पुस्तक प्रकाशन की जिम्मेदारी सांस्कृतिक

साहित्य संगीत सांस्कृतिक मंच मुजगहन के अध्यक्ष ने लिया। मुद्रण का दायित्व श्री प्रकाशन, ए–14, आदर्श नगर, दुर्ग के संचालक महावीर अग्रवाल को सौंपा गया।

इस कृति में लेखक की प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा, छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों पर केन्द्रित संस्मरणात्मक आलेख, छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों की लेखक पर केन्द्रित विशेष टिप्पणी, अप्रकाशित गजल एवं रचनाओं के कुछ महत्वपूर्ण अंश दिये गये हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशन में हीरालाल साहू, द्वारिका प्रसाद तिवारी, श्रीमती कविता ध्रुव, बेटा युगान्तर–मयंक, सहयोगी रचनाकार और रचनाकर्म पर लिखने वाले सभी महत्वपूर्ण लेखक, कवि, मुद्रक एवं प्रकाशक के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। आशा है हमारा यह प्रयास आपको अच्छा लगेगा। महत्वपूर्ण लेखन का पूर्ण मूल्यांकन हो सकेगा।

●●●

दैनिक
प्रखर समाचार
धमतरी, रायपुर एवं जगदलपुर से एकसाथ प्रकाशित

प्रधान कार्यालय
सिहावा मार्ग, धमतरी
जिला- धमतरी (छ.ग.)
☎ 237777,(FAX) 07722-236000

पांडेय जी के व्यंग्य से मिली धमतरी को पहचान

दीपक लखोटिया

त्रिभुवन पांडेय एक ऐसी शख्सियत का नाम है, जिनसे साहित्य जगत विशेषकर व्यंग्य की दुनिया में धमतरी को पहचान मिली। पांडे सर से मेरा परिचय करीब तीस वर्ष पूर्व हुआ था जब मैने पत्रकारिता के क्षेत्र में धमतरी में कदम रखा था – तब अमूमन प्रतिदिन हमारी मुलाकात विनोद होटल (क्वालिटी होटल) या अपना मोर्चा कार्यालय में हुआ करती। मुलाकात के दरम्यान दुनियाजहां की बातों का सिलसिला चल पड़ता। शब्दों की बाध्यतावश कुछ खास बातों को उकेर रहा हूँ। साथ बैठने वालों में अमूमन नारायण लाल परमार, मुकीम भारती, सुरजीत नवदीप, भगवती लाल सेन, रंजीत भट्टाचार्य, विनोद जैन, रामविलास अग्रवाल, पांडे सर और मैं हुआ करते थे। चेहरे कई आते और जाते भी रहे किन्तु स्थायी चेहरे यही हुआ करते। शहर की गतिविधियों से चर्चा की शुरूआत होती जो कि राजनीति से चलती हुई, साहित्य फिर परिवार में आकर समाप्त हो जाती। इन बैठकों में सभी विषयों पर चिंता और उसके समाधान तथा गलतियों, खासकर व्यक्ति विशेष पर कटाक्ष जरूर होते थे। एक जीवंत दृश्य वहां दिखाई पड़ जाता।

पांडेय जी शुरू से बेबाक टिप्पणी के लिए जाने जाते रहे हैं। चाहे जो भी हो उन्हें गलत लगा तो वे उस पर तीखा कटाक्ष जरूर करते थे। कोई भी नई पुस्तक या समाचार पत्र अथवा कोई

भी लेखनी जो कि पांडे जी तक पहुंच गयी हो उसे वे सबसे पहले पढ़ लेते थे। यह क्रम आज भी जारी है, मेरी जानकारी में वे अकेले ऐसे शख्स हैं जो इस उम्र में भी पढ़ने के लिए लालायित रहते हैं। पढ़ने के प्रति उनकी भूख खत्म होती ही नहीं और पढ़ने के बाद उस रचना के प्रति उनकी बेबाक टीप आवश्यक हुआ करती है। उम्र ने जरूर उन पर हावी होने का प्रयास किया, किन्तु पढ़ने और लिखने में आज भी वे किसी युवा से आगे हैं।

धमतरी की कोई भी स्मारिका निकलती है तो उसमें पांडेय जी का सहयोग अवश्य होता। प्रो. त्रिभुवन पांडेय और सुरजीत नवदीप यहां होने वाले कवि सम्मेलनों में सहयोग राशि न लेकर आयोजकों को प्रोत्साहित करते रहे हैं। अनेक पुस्तकों के रचयिता प्रो. पांडेय एक सशक्त नाटककार भी रहे हैं, उनके लिखे नाटकों का मंचन स्कूल और कॉलेजों में भी होता रहा है। प्रो. त्रिभुवन पांडेय जी ने गीत भी लिखा है तथा उनके लिखे गीतों को स्वर व संगीत भी दिया गया है।

अपने जीवन का अधिकांश समय सायकल और कुछ समय लूना में बिताने वाले पांडेय सर को शहर के लोग व्यंग्यकार, साहित्यकार, प्रोफेसर के अलावा एक विशेष विधा के लिए जानते हैं और उसका लाभ भी उनसे लेते रहे हैं। कोई भी सम्मान पत्र, अभिनंदन पत्र या विशिष्ट व्यक्ति का जीवन परिचय तैयार करवाने उनके पास चला जाता है। और वे भी सहजता के साथ तत्काल उसे तैयार कर देते। एक विशेष विधा में भी तैयार किया हुआ उनका अभिनंदन पत्र लोगों के लिए महत्व रखता है। व्यंग्यकार के रूप में कवि सम्मेलनों में उन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनाई। छत्तीसगढ़ ही नहीं, सम्पूर्ण म.प्र. तथा साहित्य जगत में त्रिभुवन पांडे का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ व्यंग्यकार और पुस्तक समीक्षक के रूप में लिया जाता है। हमें गर्व है कि श्री त्रिभुवन पांडे जी धमतरी के हैं और हम धमतरी निवासी है।

अभिन्न एवं आत्मीय पाण्डेय जी

डॉ. सुरेश देशमुख

से.नि. प्राध्यापक

जुलाई 1971 में जब मैं व्याख्याता होकर महाविद्यालय में आया तब बौद्धिक गपशप के केन्द्र में पंचशील होटल, फिर विनोद होटल अंत में महानदी संदेश का कार्यालय था। साहित्यिक एवं कलात्मक अभिरूचि होने के कारण मैं भी इन केन्द्रों का अंग बना जहाँ नारायण लाल परमार, भगवती सेन, त्रिभुवन पाण्डेय आदि ख्यातिनाम साहित्यकारों के संपर्क में आया। स्व. परमार जी के घर की रविवारीय गोष्ठियाँ तो सबको एक सूत्र में पिरोये रखने का काम करती थी।

प्रारंभ में पाण्डेय जी का रूझान छत्तीसगढ़ी संस्कृति, साहित्य और लोक कलाओं की ओर बिल्कुल नहीं था। मेरे चाचा स्व. दाऊ रामचंद्र देशमुख के अभूतपूर्व एवं भव्य कार्यक्रम 'चंदैनी गोंदा' के ग्राम पैरी के द्वितीय प्रदर्शन को देखने के बाद परमार जी, पाण्डेय जी आदि साथ में ही बघेरा गये। वहाँ से लौटने के बाद पाण्डेय जी ने मुझसे कहा कि छत्तीसगढ़ में पैदा जरूर हुआ मगर जाना 'चंदैनी गोंदा' को देखने के बाद। कार्यक्रम ने उन्हें इतना मथा कि 'देशबन्धु' में डेढ़ पेज का एक रिपोतार्ज उन्होंने लिखा। तबसे पाण्डेय जी का बघेरा आना जाना लगा रहा और उसी क्रम में मेरे परिवार से और मुझसे आत्मीयता बढ़ती गयी।

पाण्डेय जी 'हरफनमौला' साहित्यकार हैं। उन्होंने व्यंग्य लेखन से प्रसिद्धि पानी शुरू की। 'भगवान विष्णु की भारत यात्रा' सरिता में धारावाहिक छपी। उन्होंने नाटक, रिपोर्ताज, समीक्षा

सभी विधाओं में अपनी कलम की प्रखरता से पाठकों को अवगत कराया। आज वे लोक संस्कृति के भी गंभीर अध्येता हैं। एक ही महाविद्यालय में बरसों साथ रहने के कारण हममें जो घनिष्ठता और आत्मीयता है उसे शब्दों की सीमा में बांधना कठिन है।

पाण्डेय जी साहित्य के क्षेत्र में निरंतर सक्रिय रहें और अपनी अभिव्यक्ति के नये आयाम स्थापित करें यही मेरी मंगल कामना है।

●●●

एक साहित्यकार जो घर-घर में रहता है : श्री त्रिभुवन पाण्डेय

जयंत थोरात

प्रत्येक जगह विशेष की अपनी एक अलग पहचान होती है। वहाँ की अपनी कोई न कोई विशिष्टता होती है। धमतरी के माटी की भी अलग खासियत है। इस धरती ने भी कई विख्यात साहित्यकारों से प्रदेश को नवाजा है। धमतरी की पावन धरा में जन्म लेकर सुरजीत नवदीप, मुकीम भारती, नारायण लाल परमार आदि ने अपनी साहित्यिक महक से न केवल क्षेत्र को बल्कि देश के साहित्य जगत को सुवासित किया है। इसी क्रम में श्री त्रिभुवन पाण्डेय का नाम भी जुड़ जाता है। श्री त्रिभुवन पाण्डेय, धमतरी की मिट्टी में 21.11.1938 को अवतरित होकर यहीं पले बढ़े। फिर यहीं से अपनी साहित्य साधना प्रारंभ की। इनकी लेखनी में गद्य व पद्य रूपी गंगा यमुना का अभूतपूर्व संगम है। जितनी सशक्तता से वे अपनी बात चंद पंक्तियों की कविता या गीत के माध्यम से कहते हैं, उनके गद्य में भी अपनी बात मजबूती से रखने की अपार क्षमता है।

इनकी कविता अथवा गीतों को पढ़ने से महसूस होता है कि इन्होंने जीवन के हर पहलू को बड़े करीब से देखा है। आम आदमी के जीवन में घटित होने वाले हर क्षण को स्पर्श किया है। वाचक स्वयं ही उनकी रचनाओं से जुड़ जाता है।

अलाप हो या सरगम, सुरताल सधे थे
मधु कंठ राग से, सब गण बंधे थे
जो गा रहा था संग-संग, वह गीत तुम्ही थे।

इन पंक्तियों में उन्होंने प्रेम के प्रति आस्था को चित्रित किया है। इन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से बस्तर के दुःख को, यहां के आदिवासियों की वेदना को, उनकी पीड़ा को उकेरा है। नक्सलियों के कहर से बस्तर के आदिवासी, वहाँ के पशु पक्षी, सभी के बीच हाहाकार मचा है। इस त्रासदी को पाण्डेय जी ने अपनी रचनाओं में बखूबी चित्रित किया है।

गौर श्रृंग पर पड़ी अचानक, बंदूकों की धार
गाँव घरों से वंचित दर–दर, भटक रहा परिवार
मैंना की भर आई आँखें, जंगल हुआ उदास।

इन्होंने अपनी काव्य रचना में देश व समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार व लूटखसोट को भी स्थान दिया है। वे अपनी लेखनी के माध्यम से हर तबके को सचेत भी करना चाहते हैं।

आँखों का किस्सा सुनते हैं लेकर लोग कटोरा
खेल रहे काले रूपयों से भर चमड़ी और ढोरा।

वर्तमान राजनीति पर भी उनकी तीक्ष्ण नजर है। वे आजादी से लेकर वर्तमान तक राजनैतिक मूल्यों में हो रहे सतत गिरावट के प्रत्यक्षदर्शी हैं। इन हालातों से उनका मन भी आहत होता है। तभी उनका मन कह उठता है।

एक बार सहें आप, पांच साल हम
एक बार दुखी आप, पांच साल हम।

उन्होंने अपनी कविता व गीतों में अपने हृदय में उत्पन्न होने वाले भावों का अत्यंत कुशलता व प्रभावशाली ढंग से उद्धत किया है। उनके गीतों में प्रारंभ से अंत तक सरसता बनी रहती है। उनके शब्द पाठक के अंतर्मन का स्पर्श कर गुनगुनाने को मजबूर करते हैं। पाण्डेय जी में सीखने की अद्‌भुत ललक है। यह वजह है कि इन दिनों वे उर्दू की विधा गजल पर अपनी लेखनी का परिचय करा रहा हैं, जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

दूसरी ओर यदि हम उनके गद्य विशेषकर व्यंग्य की बात

करें तो उन्होंने अपने व्यंग्य से रोजमर्रा की जिंदगी पर तीक्ष्ण व सटीक प्रहार किया है । उन्होंने आम आदमी की रोजमर्रा की समस्याओं को बड़े करीब से देखा तथा स्वयं भी भोगा है ।

टेलीविजन संस्कृति हो, विज्ञापनों की समस्या हो, मोबाईल की परेशानी हो, क्रिकेट पर समय या धन का अपव्यय हो, बस में सफर करते समय यात्रियों की समस्या या परेशानी हो या आज का सबसे चर्चित विषय भ्रष्टाच्चार हो । हर विषय पर इनकी लेखनी ने व्यंग्य कर प्रहार किया है । व्यंग्य में इनकी पकड़ इतनी मजबूत है कि भाषा कहीं भी अपने निरंतरता से नहीं भटकती । शैली में नयापन व मौलिकता है । शब्दों का शिल्प अपने आप में विशिष्ट है । भाषा ऐसी कि आम आदमी सरलता से समझ जाये । जब आम आदमी इसे पढ़ता है तो उसे महसूस होता है मानों यह उसके जीवन में घटित घटना है ।

टेलीविजन की मजबूती देखिये । वह बुरी तरह निजी जीवन को ध्वस्त कर रहा है, पर उसे बाहर नहीं फेंका जा सकता । यह आज के परिवार की आवश्यक बुराई व मजबूरी हो गया है । वे साहित्य की मुख्य धारा के साथ नयी धारा प्रवाह करने की सलाह पुराने साहित्यकारों को देते हैं ताकि उनका वर्चस्व व उनके साहित्य में निरंतरता बनी रहे । साथ ही आज के साहित्यिक वातावरण से उनका सामंजस्य बना रहे । इन्होंने मुन्नी के बदनाम होने के कारणों की विस्तृत खोज कर सत्य सामने लाया । इन्होंने पाया कि भ्रष्टाचार आधुनिक नैतिक गुण है । वे कहते हैं कि –

टका धर्मः टका कर्मः, टका ही परमं तपः
यस्य गेरे या नास्ति, हा टका टक टकायते ।

वर्तमान में प्रचलित डायलर टोन रोग के कारण मानसिक रूप से कैसे प्रताड़ित होता है इसका उन्होंने अपने व्यंग्य में खूब वर्णन किया है । इसी तरह चुनाव, बस के सफर, शेयर या नेताओं की अस्थिरता, जुगलबंदी, जाने कितने विषयों पर उन्होंने व्यंग्य की कलम चलाई

है । जो पढ़ने वालों को जहां हौले से गुदगुदाती है वहीं जीवन की कटु वास्तविकता से परिचय भी कराती है ।

इस प्रकार साहित्य की साधना में पाण्डेय जी ने अपना जीवन लगा दिया है । उन्हें न केवल प्रदेश बल्कि संपूर्ण देश में साहित्य क्षेत्र के लोग जानते हैं । उनकी लेखनी का लोहा मानते हैं । पाण्डेय जी पर भी काफी लिखा गया है, जो उनकी विशिष्टता को प्रदर्शित करता है । उनकी संपूर्ण साहित्य यात्रा पर लिखी यह पुस्तक उनके चाहने वालों के लिये अमूल्य निधि होगी । उन जनों के लिये भी अत्यंत उपयोगी होगी जो उन पर शोध करना चाहते हैं । इस अमूल्य धरोहर को मूर्त रूप देने में डुमन लाल ध्रुव ने अथक परिश्रम किया है । उन्होंने चरणबद्ध तरीके से योजना बनाकर इसे पुस्तक का रूप दिया है । कई स्थानों से सामग्री संकलन करना बड़े मेहनत व धैर्य का कार्य था । जिसका उन्होंने बखूबी निर्वहन किया । इतनी अमूल्य धरोहर को अस्तित्व में लाने हेतु डुमनलाल ध्रुव की जितनी प्रशंसा की जाए वो कम है ।

•••

संस्मरण

संस्मरण

उनके भीतर एक शिशु है

ललित सुरजन

यह विंश्वास करने को जी नहीं चाहता कि त्रिभुवन पाण्डेय ने पचहत्तर की उम्र पार कर ली है। दरअसल वे उन बिरले लोगों में से है जो न तो उम्र को वेताल की तरह अपनी पीठ पर सवार होने देते और न अपने चेहरे पर उसकी परछाई पड़ने देते। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो जन्मजात बूढ़े होते हैं। वे जीवन में कभी खुलकर नहीं हंसते, उन्हें लोगों से हाथ मिलाने या गले मिलने में अपनी जेब कट जाने का डर होता है और जो भरी गर्मी में कंबल ओढ़कर बाहर की दुनिया में विचरने के बजाय अंतर्मुखी हो जाते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो अपनी ही धवल केशराशि के पाश में खुद को जकड़ लेते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जिनके सिर पर उम्र चढ़कर बोलती है और इसी को अपनी पूंजी मानकर वे दुनिया पर रौब गालिब करने से बाज नहीं आते। इन्हीं में एक वर्ग उनका भी है जो आयु और विद्वता का गुणनफल निकालकर असमय बूढ़े हो जाते हैं।

हमारे दोस्त त्रिभुवन पाण्डेय के व्यक्तित्व की बनावट इन सबसे बहुत अलग है। उनमें एक अदम्य जिज्ञासुवृत्ति है जो उन्हें हर समय नए-नए अनुभव, नई-नई जानकारियां एकत्र करने के लिए उकसाती रहती हैं। वे जिस भी रास्ते पर निकलते हैं हर समय अपने आसपास एक चौकन्नी नजर से देखते चलते हैं कि न जाने कब, कौन सी नई बात जानने सीखने मिल जाए। मैं अगर कहूँ कि उनके भीतर एक शिशु है जो उन्हें बूढ़ा नहीं होने देता तो गलत नहीं होगा, फिर भी यह सच अपनी जगह पर है कि त्रिभुवन पचहत्तर के हो गए। हम इसे मानें या न मानें। और जैसा कि कहा जाता है उन्होंने अपने बाल धूप में सफेद नहीं किए हैं। मैं उन्हें पिछले पचास साल से एक कर्मठ

व्यक्ति, सजग नागरिक, आदर्श शिक्षक और निरंतर रचनाशील लेखक के रूप में देखते आया हूँ। वे ज्ञानपिपासु है और मैं अपनी मित्र मंडली में जिस व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता का सबसे ज्यादा कायल हूँ वह त्रिभुवन ही है।

मैंने एक पाठक के रूप में उनकी अनेकानेक रचनाएं पढ़ी है जिनमें कविता, नवगीत, व्यंग्य, समीक्षा और निबंध सब शामिल है। इनमें से अधिक्तर रचनाओं को एक संपादक के नाते मुझे 'देशबंधु' अथवा 'अक्षर पर्व' में प्रकाशित करने का सुखद अवसर भी मिला है तथा इसी रौब में यह कहना भी मुनासिब होगा कि अनेक बार मेरे आग्रह पर उन्होंने निबंध अथवा रिपोर्ताज भी लिखे हैं। यह सब जानते हैं कि दाऊ रामचन्द्र देशमुख द्वारा परिकल्पित एवं निर्देशित चंदैनी गोंदा में न सिर्फ छत्तीसगढ़ की लोकसंस्कृति का उत्सव है बल्कि यह भी कि इस प्रदेश के सर्वहारा की जीवन परिस्थितियों का मार्मिक चित्रांकन उसमें हुआ है, लेकिन आज यह बात बहुत कम लोगों को स्मरण होगी कि त्रिभुवन पाण्डेय ने 'देशबन्धु' में चंदैनी गोंदा के मंचन पर जो एक-एक पेज के रिपोर्ताज लिखे उनसे दाऊजी के प्रयत्नों का मूल्यांकन करके मैं आंशिक ही सही, सहायता मिली।

मैं यह कह सकता हूँ कि त्रिभुवन की पारखी और पैनी नजर से छोटे-छोटे विवरण भी नहीं छूटते और इसीलिए वे चंदैनी गोंदा की समुचित विवेचना कर सके हैं। उनके इसी गुण को देखकर कुछ समय पहले मैंने उनसे आग्रह किया कि वे महानदी व उनके बाद प्रदेश की अन्य नदियों के साथ-साथ यात्रा कर उन पर रिपोर्ताज लिखें, लेकिन किसी न किसी कारण से वे इस काम को अंजाम नहीं दे पाए, यद्यपि वे मेरे प्रस्ताव पर खासा उत्साहित भी थे।

मैने उनका एक रूप धमतरी महाविद्यालय में एक ऐसे शिक्षक के रूप में भी देखा है जिसका अनुकरण हमारे शिक्षक बंधुओं को करना चाहिए। वे अपने कॉलेज में विद्यार्थियों के लिए कई बरसों

तक लगातार रचना शिविर का आयोजन करते रहे। मुझे तीन–चार बार इस कार्यक्रम में शिरकत करने का मौका मिला। इसे आप उनका एक पागलपन कह सकते हैं कि छुट्टी का दिन आराम से घर पर बिताने के बजाय विद्यार्थियों के साथ गुजार रहे हैं और उन्हें साहित्य के मूल्यों से परिचित कराने में जुटे हुए हैं। अपने विद्यार्थियों की इतनी चिंता आज नहीं, पहले भी बहुत कम शिक्षकों में देखने मिलती थी। छत्तीसगढ़ में मैंने कुछ ही ऐसे हिन्दी अध्यापक देखे हैं – राजेश्वर सक्सेना, त्रिभुवन पाण्डेय और रमाकांत श्रीवास्तव, जिन्हें अपने से ज्यादा अपने विद्यार्थियों के भविष्य की चिंता सताते रहती है।

पहले मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, फिर छत्तीसगढ़ प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा उसके साथ–साथ प्रगतिशील लेखक संघ में हम लोगों ने एक लंबा समय साथ–साथ बिताया हैं। मैंने यह पाया कि त्रिभुवन किसी काम के लिए नहीं नहीं करते। आप उन्हें कोई भी जिम्मेदारी दे दीजिए वे उसे बड़े उत्साह के साथ अपने ऊपर ले लेते हैं। वे एक अच्छे आयोजनकर्ता है और उन्हें बखूबी पता है कि टीम कैसे बनाई जाती है या कि टीम के सदस्यों को अपना रोल अदा करने के लिए किस तरह प्रेरित किया जा सकता है। धमतरी के 1967 में आयोजित 'नई कलम सम्मेलन' से लेकर अभी हाल–हाल तक उन्होंने न जाने कितने कार्यक्रम आयोजित किए होंगे। कॉलेज के रचना शिविर का जिक्र मैं कर आया हूँ, लेकिन धमतरी मे कोई भी साहित्यिक, सांस्कृतिक कार्यक्रम उनके मार्गदर्शन और सक्रिय भागीदारी के बिना शायद ही हो पाता हो।

त्रिभुवन जितना लिखते हैं उससे कई गुना ज्यादा पढ़ते हैं। उन्हें हमेशा नई से नई किताबों की तलाश रहती है। वे हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी पुस्तकें भी पढ़ते हैं और साहित्यिक कृतियों के अलावा दुनिया के इतर विषयों में भी उनकी रूचि बराबर रहती है। यही संभवतः वह कारण है जिससे उन्होंने अपनी तर्क प्रणाली

विकसित की है। वे जब किसी पुस्तक की समीक्षा लिखते हैं तो उसमें बहुत सटीक और नपी–तुली टिप्पणियां होती हैं। उनके पास एक सधी हुई भाषा है, जो उनके लिखे में सर्वत्र परिलक्षित होती है। मैं कहना चाहूंगा कि वह भाषा है, जो एक अच्छे पत्रकार से अपेक्षित होती है। यह सोचकर शायद कभी मैंने उन्हें रायपुर आकर अपने साथ काम करने का निमंत्रण दिया था, यद्यपि वे इसे स्वीकार नहीं कर पाए।

एक तरफ त्रिभुवन पाण्डेय में ये सारी अच्छाइयां है, लेकिन दूसरी ओर उनके भीतर एक अजब तरह की अल्हड़ता भी है। अपने आप में इतना जिम्मेदार व्यक्तिः उससे कोई यह अपेक्षा नहीं करेगा कि वह धमतरी से रायपुर के लिए निकले, यहां सब उनका इंतजार करते रहें, वह आए ही नहीं और अगले दिन मालूम पड़े कि वह तो राज टॉकीज में लगी कोई नई फिल्म देखकर रात की बस से वापिस लौटकर चले गये। ऐसा त्रिभुवन ने एकाधिक बार किया है। बाद में झेंपते हुए सफाई दी कि पुराने बस स्टैण्ड पर उतरे, सामने नई फिल्म का पोस्टर दिखा तो सोचा गोष्ठी तो हमारे बिना हो जाएगी, नई फिल्म देखने फिर मिल पाएगी या नहीं, कौन जाने। अब इस पर आप क्या कहेंगे ?

मैं भाई त्रिभुवन के बारे में एक और बात कई बार सोचता हूँ कि वे धमतरी में उलझकर रह गए। धमतरी आज जिला मुख्यालय है, लेकिन पहले तो एक छोटा कस्बा ही था। वह उनका अपना नगर है जिसने उन्हें भरपूर प्यार और सम्मान दिया और वे इस मोहपाश से किसी न किसी कारण से बाहर नहीं निकल पाए। उनके जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को एक बड़े मंच की जरूरत थी जिसकी स्वयं उन्होंने उपेक्षा कर दी।

मुझे शायद त्रिभुवन की रचनाओं का भी जिक्र करना चाहिए था, लेकिन मुझे अनुमान है कि बहुत से गुणी मित्र उनके नवगीतों का, व्यंग्य रचनाओं का, कविताओं का विश्लेषण करेंगे ही। मैं अपनी बात इस शुभकामना के साथ समाप्त करता हूँ कि वे निरंतर रचनाशील बने रहें।

त्रिभुवन को नापता वामन

रमेश नैय्यर

धमतरी की हवा, मिट्टी, पानी और धूप-छाँव में कोई तिलिस्म तो है जो आदिवासियों और किसानों के सत्याग्रह के लिए महात्मा गांधी को उस समय अत्यंत दूरस्थ-दुर्गम रहे इस इलाके में खींच लाता है। जो निरंकुश और सर्वशक्तिमान ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ जंगल सत्याग्रह अथवा कंडेल नहर सत्याग्रह का खम ठोकने का हौसला यहां के मजदूर किसान को दे-देता है। क्या यह एक तिलिस्म नहीं है जो धमतरी के वर्नाकुलर स्कूल के प्रधान पाठक हीरालाल काव्योपाध्याय को छत्तीसगढ़ी भाषा का प्रमाणिक व्याकरण लिखने को प्रेरित करता है? 19वीं सदी के अंत में जब यह व्याकरण लिखा गया तो किसी को कल्पना नहीं थी कि इस्वी सन् 2000 में छत्तीसगढ़ राज्य का निर्माण होगा और छत्तीसगढ़ी इसकी राजभाषा बनाई जायेगी। हीरालाल काव्योपाध्याय के इस व्याकरण का अंग्रेजी अनुवाद 1880 में प्रसिध्द ब्रिटिश भाषाशास्त्री जार्ज ग्रियर्सन ने किया था। इसी धमतरी में पौराणिक काल की अनेक विभूतियों की कीर्तिगाथाएं रची गई। आजादी के आंदोलन और स्वतंत्र भारत की राजनीति में भी यहाँ के अनेक जुझारू राजनेताओं ने धमतरी को राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा में रखा। धमतरी संत राजनीतिज्ञों, सांस्कृतिक विचारकों और वीतरागी पंढरीराव कृदंत की कर्मभूमि रही। हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में प्रदीर्घ साधना करने वाले परमार दंपत्ति ने यहां रचनाशील जीवन जीते हुए विपुल यश अर्जित किया। नारायण लाल परमार जी और श्रीमती इंदिरा परमार के बालगीतों को इन पंक्तियों के लेखक ने ढाई-तीन दशक पहले हरियाणा, चंडीगढ़, हिमाचल और उत्तराखंड में स्कूली बच्चों को गुनगुनाते हुए सुना था। इस नगर ने भारत के कवि-सम्मेलनों में रस का संचार करने वाले मुकीम भारती को तराशा था। मुकीम एक ऐसा नायाब हीरा था जो पत्थर से टकरा कर बिखर गया। इस नगर

के लेखकों और पत्रकारों में प्रतिभा के साथ ही अद्भुत आत्मीयता रची-बसी है। किस-किस का नाम लूँ? मिसाल के तौर पर विनोद जैन को सामने रखता हूँ, जिनके लिए पत्रकारिता दीवानगी से खनखनाती लहर बनी रही। आँखों में वह कशिश कि एक बार झांकते ही सामने वाला खुशबुओं से सराबोर रसधार में बह जाये। न जाने कितनी स्मृतियां जेहन में कुनमुनाती है। छः दशकों से अधिक समय से बस्तर आता-जाता रहा हूँ। अक्सर धमतरी में कुछ देर दम लेना जरूरी होता था। उन क्षणों में जिंदादिल और सुलझे हुए रचनाकार मित्रों का संग-साथ मिल जाना सोने में सुगंध का काम करता था। फिर वे अकेले थोड़े ही होते थे। साहित्य का एक तारामंडल साथ रहता था। नारायण लाल परमार जी के साथ अनेक कवियों, लेखकों पत्रकारों और साहित्यानुरागियों की मंडली में घंटों गुजर जाया करते। इनमें कद्दावर लेखक त्रिभुवन पाण्डेय की उपस्थिति लगभग अनिवार्य हुआ करती। सुरजीत नवदीप सहित और भी अनेक कवि, लेखकों के अलावा साहित्यकारों को सम्मान तथा संरक्षण देने वाले राजनेता, व्यापारी और उद्योगपति भी साहित्य के प्रति सघन समर्पण की जो भावना रखते वह अब विरल होती जा रही है। साहित्य पढ़ने या सुनने से विरतइस बदले हुए दौर का रूझान नोट गिनने में ज्यादा होता जा रहा है। फिर भी अपनी माटी की जो तासीर होती है वह 'प्रखर समाचार' को अपनी वर्षगांठ मनाने के लिए विशाल कवि सम्मेलन के आयोजन के लिए प्रेरित करती है। वैसे भी धमतरी में डेढ़ दो दशक पहले तक देश भर के महत्वपूर्ण कवियों तथा शायरों की आग्रहपूर्वक आमंत्रित करने और अखिल भारतीय मुशायरे तथा कवि सम्मेलन आयोजित करने की धवल परंपरा रही है।

इस परंपरा और परिवेश में विकसित त्रिभुवन पाण्डेय को मैं करीब आधी सदी से सुनते-पढ़ते आया हूँ। त्रिभुवन जी से यूं ही बात करने में जो रसरंजन होता है वह मन-प्राण भिगो देता है। मैं तो केवल पत्रकारिता तक सीमित रहा। कभी साहित्यकार बनने की मुगालता भी नही पाला। त्रिभुवन भाई को देखता और पढ़ता हूँ तो उनकी रचनाशीलता से रश्क होता है। कैसे चौतरफा मार करते

हैं । त्रिभुवन भाई ! साहित्य की हर विधा में दमखम के साथ दखल। हास्य–व्यंग्य में विशेष दक्षता है इनकी। व्यंग्य के वज्र प्रहार से लेकर बहुत महीन मार करने में निपुण। बातों–बातों में मीठा सा नश्तर गहराई तक उतार देने में पाण्डेय जी सिद्ध हैं। कुछ गुदगुदाहट, कुछ चुभन और फिर काफी देर तक महसूस होने वाली तिलमिलाहट त्रिभुवन के व्यंग्य–लेखन से गुजरते हुए होती है । इनकी पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही रचनाओं को पढ़ने के साथ ही कुछ संकलन भी लिये थे, जो बेतरतीब रखी किताबों की भीड़ में कहीं दुबकी होंगी । पुस्तक ही नहीं अन्य बहुत सी बातों में बहुत अस्त–व्यस्त रहना मेरा लगभग स्थायी भाव बन गया है ।

त्रिभुवन भाई को अपनी पुस्तकों के शीर्षक देने में कमाल का कौशल हासिल है । उन शीर्षकों को आप भूल नहीं सकते । मसलन इनके गीत–संग्रह का शीर्षक है 'कागज की नांव' । किसी गीत जैसा ही कोमल नाम । और एक गीत–संग्रह है 'गाओ वनपाखी' । यह आपको गुनगुनाने का न्यौता देता है । चुटीलेपन से सराबोर इनका एक हास्य–व्यंग्य एकांकी है 'पंछी मत हंसो' । 'विश्व बैंक वसति लक्ष्मी' शीर्षक से ही संकेत मिल जाता है कि यह कैसी व्यंग्य रचना है । राजनीति को तो अब जाकर मुद्दा मिला है कि भारत की लक्ष्मी विदेशी बैंकों में कैद है । वह उजागर नहीं की जा सकती इसलिए वह 'श्यामा लक्ष्मी' है । क्या विडंबना है भारत का 'श्याम धन' बड़ी पोशीदगी के साथ विदेशी बैंकों में दुबका पड़ा है । इस श्याम धन के बारे में बहुतेरों को बहुत कुछ मालूम है, उनके स्वामियों की शिनाख्त भी गाहे–बगाहे की जाती है, परंतु कोई उनके गिरहबान में हाथ डालने का दुस्साहस नहीं कर पाता । उर्दू की दो पंक्तियां इस विचित्र किंतु सत्य स्थित पर मौजूं मालूम होती है ।

क्या ही परदा है कि चिलमन से हो लगे बैठे हो !
साफ छिपते भी नहीं, नजर आते भी नहीं ।।

त्रिभुवन पांडेय संस्कारी व्यक्ति है इसलिए इनका हास्य निर्मल, कोमल और शिष्ट है । 'पंपापुर की कथा' 'ब्यूटी पार्लर में भालू' और 'भगवान विष्णु की भारत यात्रा' से गुजरिये तो संभव है आप मेरी राय से सहमत हो सकें । 'झूठ जैसा सच' पांडेय जी का

लघु उपन्यास है परन्तु उसमें यदि बदलते हुए दौर की उफनती हुई व्याकुलताओं को पिरो दिया जाये तो वह एक बड़े उपन्यास का विस्तार पा सकता है। वह निश्चिय ही एक सार्थक उपन्यास होगा। अपने समय के सच की कसौटी बन सकेगा। लिखना बहुत चाहता हूँ। विचार भी कुनमुनाते हैं परन्तु पत्रकारिता तक सीमित शब्दावली से हेर-फेर करते आये इस गूंगे अकिंचन के पास वह गुड़ रहने दीजिए। मेरे निविड़ एकांत का विश्वस्त साथी यह गुड़ ही है। मैं पूरी विनम्रता से स्वीकार करता हूँ कि इस कलयुगी वामन में विराट त्रिभुवन को नापने की सामर्थ्य नहीं है।

●●●

बात अभी जारी है

रमाकांत श्रीवास्तव

प्रसिद्ध चित्रकार एन.एस. बेन्द्र इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में आये थे तब उनके इंटरव्यू लेते हुए मैंने उनसे पूछा था कि चित्र बनाने के लिये वे विषय का चुनाव किस तरह करते हैं? बेन्द्र ने अपने सहज गांभीर्य में डूबे हुए सीधे-सादे शब्दों में उत्तर दिया था कि उन्हें विषय चुनने में कभी कठिनाई नहीं हुई क्योंकि दुनिया उन्हें दिलचस्प लगती है।

जब भी मैं अपने मित्र त्रिभुवन पाण्डे से मिलता हूँ मुझे बेन्द्रे की यह बात याद आ जाती है। त्रिभुवन जब भी किसी दृश्य या घटना को देखते हैं उनके भीतर का रचनाकार उसमें गहरी दिलचस्पी लेता है। ऐसा मुझे लगता है क्योंकि जब वे किसी भी विषय पर बात करते हैं तो मैं उनके चेहरे को देखता हूँ जिस पर आश्चर्य, मजेदार। और किसी सत्य को पाकर उसे व्यक्त करने की व्यग्रता छलकती सी नजर आती है। सामान्य तौर पर जिन बातों की ओर लोग ध्यान नहीं देते उन बातों के पीछे छिपे अर्थ को त्रिभुवन ढूंढ लेते हैं। घटनाओं, स्थितियों, वस्तुओं और व्यक्तियों के विरोधाभासों को पकड़ने की अद्भुत दृष्टि त्रिभुवन में है। और फिर बयान का उनका तरीका। जिक्र उस परिवेश का और फिर बयान अपना।

स्मृति के झरोखे से झांकू तो कई दशकों पहले का एक आयोजन मेरी आंखों के सामने उपस्थित हो जाता है। बात सत्तर के दशक की है। पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर में डॉ. नंदकिशोर तिवारी ने एक सेमीनार का आयोजन किया। जिसमें हिस्सा लेने के

लिए खैरागढ़ से आया था। इकहरे बदन वाले लंबे से जिस व्यक्ति के वक्तव्य से मैं प्रभावित हुआ उनका नाम मैंने अपनी बगल में बैठे व्यक्ति से जानना चाहा। ज्ञात हुआ कि वे धमतरी के त्रिभुवन पांडे हैं। मैं त्रिभुवन की रचनाओं से परिचित था। उनसे उसके पहले मिला नहीं था। त्रिभुवन का वक्तव्य मुझे बेहद दिलचस्प लगा। गंभीरता के साथ उसमें व्यंग्य का स्पर्श था। जो बात मुझे प्रभावित कर रही थी वह थी उनकी भाषा की सुदृढ़ता और उसका धारा प्रवाह।

तब से अब तक मैं त्रिभुवन से जाने कितनी बार कितनी जगहों पर मिल चुका हूँ। हर बात मैंने उनमें वहीं ऊर्जा, सादगी और आत्मीयता देखी। हमेशा यह पाया कि उनके आस पास जो भी समय गुजर रहा है और जो कुछ भी घटित हो रहा है उसमें उनकी दिलचस्पी है और उसमें वे कोई अर्थ ढूंढ रहे हैं।

एक घटना याद आती है। रायपुर में एक संगोष्ठी का आयोजन था। त्रिभुवन पाण्डे को वक्तव्य देना था लेकिन त्रिभुवन पहुंचे नहीं। गोष्ठी प्रांरभ हो गई। त्रिभुवन देर से पहुंचे। जब उन्हें वक्तव्य देने क लिए आमंत्रित किया गया तो पहले तो उन्होंने देर से पहुंचने के लिए क्षमा मांगी फिर देर से पहुंचने का कारण बतलाया। दरअसल भीड़ की अधिकता के कारण वे जिस बस में आना चाहते थे उसमें नहीं आ पाये। फिर वे जिस बस से आये उसमें उन्हें सीट नहीं मिली तो वे धमतरी से रायपुर तक खड़े-खड़े आये। अपने इस एडवेंचर में उन्होंने जो कुछ देखा और महसूस किया उसे जब उन्होंने बताना शुरू किया तो बस मजा आ गया। कठिन यात्रा का भास नहीं, त्रिभुवन के चेहरे पर नये अनुभव की प्राप्ति का उल्लास दमक रहा था। अपने कष्ट को इस कदर मजाकिना ढंग से बतला रहे थे जो किसी मजे हुए व्यंग्यकार के वश की बात है। अपने कष्टप्रद अनुभव को उन्होंने रचनात्मक आनंद में तबदील कर दिया था। एक क्षण के लिये भी उन्होंने अपने को दयनीय बनाकर पेश नहीं किया।

और उस अनुभव के सत्य के रूप में प्रस्तुत किया। उनका वतव्य अपने आप में एक शानदार व्यंग्य रचना की तरह हमने सुना। मुझे परसाई याद आ गये जो कहते हैं कि अपने व्यक्तित्व और विशिष्टता की हानि नहीं होती, लाभ ही होता है। अपने से बाहर निकलो। देखो, समझो और हंसो।

दरअसल त्रिभुवन परसाई परम्परा के व्यंग्यकार है जिनकी रचनाओं में सतह पर समाज को गर्त में ले जाने वालों के प्रति उपहास और कटूक्तियां है किंतु उसकी अंतर्धारा में करूणा और आम आदमी के प्रति गहरी सहानुभूति है। अपनी रचना का स्थापत्य निर्मित करने के लिये त्रिभुवन समकालीन जीवन की घटनाओं से लेकर पौराणिक कहानियों और पात्रों तक जाते हैं। एक तरफ त्रिभुवन का व्यंग्य लेखन है और दूसरी तरफ उनके गीत जिनमें जीवन की कोमलता, गंभीरता तथा प्रकृति का सौन्दर्य है। यह जीवन के विस्तार को नापने की आकांक्षा है जिसे दो भिन्न तेवर की विधाओं में वे रूपान्तरित करते हैं। हमारे मित्र कवि जीवन ने त्रिभुवन की इस क्षमता पर गीत लिखा है। जिसकी कुछ पंक्तियां इस तरह है –

जाने कैसे रहा अपरिचित
बंधु ! आपके गीतकार से
मेरी भी इसमें क्या गलती
सरस्वती की गुप्त धारा है
व्यंगकार पर्वत के पीछे
अमराई सा गीतकार है
वह युग चिंतक पूछ रहा
प्रश्न जगत के सूत्रधार से।

व्यंग्य लेखन के केन्द्र में जग बीती होती है जबकि गीत में जगबीती के साथ ही आपबीती की तरह कौ... हैं। उनके दो गीतों

की पंक्तियां मुझे प्रभावित करती है। जीवन का सत्य वे इन शब्दों में व्यक्त करते हैं –

बहुत कठिन है हर क्षण सब कुछ
मुस्कानों से लिखना
किन्तु जिजीविषा कभी पराजित नही होती
अतः उसका जयगान वे इन शब्दों में करते हैं –
जीवन के उपवन में
कभी नहीं मुस्काते .../ सपनों के फूल

किसके जीवन में उतार–चढ़ाव नहीं आते? तनावों से कौन नहीं गुजरता। इन भावनाओं के इन झंझावातों को झेलकर स्थिर .. बने रहना और सृजन धर्मिता को अक्षुण्ण बनाये रखना अपने आप में एक साधना है। अपने आस पास हम ऐसे लोगों को देख सकते हैं जो अपनी तकलीफों का रोना रोते हैं, परेशानी का इजहार करते हैं। बेशक उनकी परेशानियां सच्ची है, दिखावा नहीं है। कुछ ऐसे भी जो अपनी करूण मुद्रा दिखाकर सहानुभूति पाना चाहते हैं। मध्यवर्ग में ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है। इनसे भिन्न ऐसे भी लोग हैं जो ऊंचा नीचा झेलकर भी एकरस बने रहते हैं। मैं अपने को सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मेरे आसपास ऐसे मित्र हैं जो जिन्दगी को हौसले से जीते हैं कभी अपनी तकलीफों का बयान नहीं करते। ऐसे मित्र प्रेरणा देते हैं और उन्हें मैं संतों से कम नहीं मानता, बल्कि कहूं कि संतों का बाना धारण किये हुए लोगों से बढ़कर उनको मानता हूँ। त्रिभुवन ऐसे ही लोगों में हैं। एक सीधा–सादा जीवन जीते हुए एक अच्छा मनुष्य बने रहना आसान नहीं है। द्वेष, निंदा, .. प्रपंच में लिप्त ना होकर अपनो के प्रति सद्भावना बनाये रखने के लिये एक विशेष प्रकार की हिम्मत चाहिए। त्रिभुवन को कभी मैने किसी की निंदा करते हुए और किसी के प्रति क्रोध जताते नहीं देखा। अपनी रचना में तीखा व्यंग्य करने वाले त्रिभुवन सहज

सरल और निराभिमानी है । यह अपने आप में गहरी सामाजिक समझ है ।

नगर धमतरी और त्रिभुवन पाण्डे का संबंध चोली दामन का है । जाहिर है कि त्रिभुवन 'दामन' है । कई दशकों तक वे अपने नगर के सांस्कृतिक परिदृश्य के अनिवार्य हिस्से रहे हैं । नगर के हर वर्ग के चहेते । वे धमतरी के सांस्कृतिक इतिहास के एक कालखंड के संयोजक रहे हैं । शमशेर ने कहा है – 'काल तुझसे होड़ है मेरी' । यह होड़ हर सृजनाधर्मा की जिद होती है । यह ना तो बड़बोलापन है और ना ही अभिमान । अपने भीतर की रचनात्मक ऊर्जा को बनाये रखना ही काल से होड़ लेना है । कितनी अच्छी बात है कि त्रिभुवन अभी भी इस दृढ़ विश्वास से लिख रहे हैं कि रचनात्मकता अप संस्कृति के विरूद्ध सार्थक हस्तक्षेप है । उनके शब्द हैं –

बात अभी जारी है, धूप और छांह की

●●●

लिख दिया जा...

प्रभाकर चौबे

धमतरी के पुराने बस स्टैण्ड से एकदम लगकर भाई विनोद जैन पंचशील होटल में (अब यह होटल बंद हो गई –साहित्यकार बैठेंगे तो और क्या होगा)। बैठकर कोई कह रहा हो कि 'लिख दिया जा साले को' तो समझ जाओ वह त्रिभुवन पांडे है । किसी पुरानी हिन्दी फिल्म का गाना है "कोरे कागज पर लिख दे सलाम बाबू। वे जान जाएगे। पहचान जाऐंगे।" ठीक इसी तर्ज पर त्रिभुवन को छत्तीसगढ़ की बिरादरी पहचान लेती है कि यह कहने वाला कि पार्टनर, है तो वह बहुत हरामी लेकिन पीछे पड़ गया तो लिख दिया, जा ... साले को। यह बात त्रिभुवन किसी के लिए लिखे गए सम्मान पत्र को लेकर कह रहे हों। कोई आया हो और उसने कहा हो – यार जरूरी है । उसे मुख्य अतिथि बनाया है । एक मान पत्र लिख दें । और त्रिभुवन को इस अपने मित्र के कारण उसके लिए मान पत्र लिखना पड़ा हो। दिक्कत यह है कि पूरा धमतरी ही त्रिभुवन का मित्र है। और न जाने त्रिभुवन के कितने मन मान पत्र लिखा हो। मन क्या टनों लिखा हो। त्रिभुवन को खुद याद नहीं होगा। और हो सकता है कि इनमें से अधिकांश मान पत्रों का वाचन भी स्टेज से त्रिभुवन ने ही किया हो। जिसने मान पत्र लिखवाया उसने यह भी निवेदन किया हो कि बंधु इसे तुम ही स्टेज पर पढ़ना। मान पत्र लिखना। ये त्रिभुवन की हॉबी है। अगर धमतरी में किसी साहित्यिक सांस्कृतिक कार्यक्रम का निमंत्रण मिले तो अंबिकापुर के मित्र भी समझ जाते हैं कि संचालन त्रिभुवन करेंगे। धमतरी का साहित्यिक समारोह त्रिभुवन के बिना हो, यह कल्पनान्तीत है। त्रिभुवन धमतरी में सर्वत्र हैं। मजेदार बात तो यह कि त्रिभुवन ने दादा (श्री नारायण

लाल परमार) से भी दर्जनों मान पत्र लिखवा लिए। किसी के सम्मान में निकलने वाले सम्मान ग्रंथ के लिए लेख लिखवाए हैं और न चाहने पर भी जैसे त्रिभुवन ने लिखा उसी तरह दादा के न चाहने पर भी उनसे लिखवा लिया। "पार्टनर, करना पड़ता है। संबंध निभाना पड़ता है। पार्टनर, मजा भी आता है। जान रहे हैं कि जिसका संस्मरण लिख रहे हैं वह दुष्ट है लेकिन उसकी महानता उसकी उदारता के गुण गाए जा रहे हैं। पार्टनर इन विसंगतियों से ही अपना ओरिजनल लेखन पैदा होता है। सम्मान ग्रंथ में उसके गुण गाए और अपने व्यंग्य में उसकी सही तस्वीर खींच दी। बाद में सिर धुने वहां। अपन ने तो लिख दिया – जा.. साले को।" लेकिन दादा तो व्यंग्य नहीं लिखते। वे सम्मान ग्रंथ में त्रिभुवन के कहने पर सच–झूठ लिखने के बाद क्या करें। एक गीत लिखकर गम गलत कर लेते हैं। वैसे त्रिभुवन की बात हो और सुरजीत सामने न आए। ऐसा हो भी नहीं सकता। दोनों के संबंधों को यह तो कह नहीं सकते कि दोनों में चोली–दामन का संबंध है। क्योंकि फिर तय करना होगा कि चोली कौन है और दामन कौन है। यह भी नहीं कर सकते कि दोनों में दांत काटी रोटी का संबंध है। ऐसा संबंध जोड़ना इसलिए गलत साबित होगा। क्योंकि सार्वजनिक कवि सम्मेलन के मंच से दोनों एक दूसरे की टांग खींचते हैं। दोनों के रिश्तों को परिभाषित करना उसी तरह कठिन है जैसे बाबा तुलसीदास के लिए सीता की सुदंरता को परिभाषित करना रहा। हर उपमा अधूरी लगती है। लेकिन दोनों में गहरी छनती है। यह तय है। जितना आत्म मुग्ध होकर सुरजीत अपने त्रिभुवन के बारे में बताता है, त्रिभुवन भी उसी रस में डूब कर सुरजीत के बारे बताता है। वैसे त्रिभुवन के किस्से (अच्छे ही अच्छे) सुनाने वाले धमतरी में कई मित्र मिलेंगे।

मैं कई बार सोचता हूँ कि त्रिभुवन अगर धमतरी में नहीं होता, या धमतरी से बाहर चला गया होता तो क्या होता। यह कि वह डॉ. त्रिभुवन पांडे कहलाता। देश का वरिष्ठ और प्रतिष्ठित

समीक्षक कहलाता। वह दिल्ली या सागर से इधर आता तो रायपुर से जगदलपुर तक हिन्दी जगत में हलचल मच जाती कि डॉ. त्रिभुवन पांडे आए हैं कि डॉ. त्रिभुवन पांडे ने आज की कहानी पर यह कहा। कविता पर यह कहा। उनके ढेरों साक्षात्कार प्रकाशित हो गए होते। अपनी पुस्तकें उन्हें भेंट करने वालों की भीड़ लगी रहती। और त्रिभुवन वापसी में वे पुस्तकें धमतरी में सुरजीत के पास छोड़ जाते। लेकिन त्रिभुवन धमतरी में रहे आए। और धमतरी में रहकर त्रिभुवन ने व्यंग्य में अखिल भारतीय ख्याति अर्जित की है। छत्तीसगढ़ के दो लेखकों (व्यंग्य) के उपन्यास खूब चर्चित हुए – भाई विश्वेन्द्र ठाकुर का व्यंग्य उपन्यास किस्सा 'बेहराम चोट्टा' और त्रिभुवन का व्यंग्य उपन्यास भगवान विष्णु की भारत यात्रा काफी पहले सरिता में धारावाहिक प्रकाशित हुआ और चर्चित रहा। त्रिभुवन के पास गजब की अवलोकन शक्ति और स्थितियों को पकड़ने की उनकी क्षमता के सब कायल है। इसीलिए वे बात–बात में हास्य पैदा कर देते हैं। स्थितियों का व्यंग्यात्मक विश्लेषण करते हैं और सहज रूप में भी गहरे जाकर सारा कुछ बाहर ले आते हैं। त्रिभुवन ने भी रोज खोदो, रोज पिओ किया है– यानि कि अखबारों में नियमित कॉलम लिखा है। अपने आसपास जो घटित हो रहा है, उसे वे पकड़ते हैं। ज्यादा दूर जाने की उनकी कभी अच्छा नहीं रही। राज्य परिवहन निगम की बसों परउनकी विशेष कृपा रही है – इन्ही बसों से खूब यात्राएं करते हुए बसों का कष्ट जो भोगा है। कवि सम्मेलनों में जाना, गोष्ठियों और सम्मेलनों में जाना – इन्हीं बसों से हुआ है। इसलिए इन बसों पर खूब कलम चली है उनकी। अपनी रचनाओं को लेकर त्रिभुवन जितने संवेदनशील हैं, उतने ही जागरूक मित्रों की रचनाओं को लेकर हैं। मित्रों की हर रचना चाव से पढ़ते है। राय भी देते हैं। त्रिभुवन ने अच्छे नवगीत भी लिखे हैं।

वैसे वे नवगीतों में ज्यादा फबते हैं। कविताएं भी खूब लिखी हैं और कवि सम्मेलनों में जमते भी हैं।

अगर किसी गोष्ठी में जाने के लिए निकले और धमतरी के किसी सिनेमाघर में घुस गए – यह त्रिभुवन ही कर सकते हैं। यहां तक की धमतरी से निकले रायपुर के लिए। रायपुर पहुंच गए। गोष्ठी में जाना है। अगर बाबूलाल टॉकीज में कोई अच्छी फिल्म लगी हो तो वहां घुस जाने वाले केवल त्रिभुवन हैं। और यह सबको पता भी है। बाद में सफाई दें कि पार्टनर यह फिल्म धमतरी में दो माह बाद आती। पार्टनर, धमतरी गजब का शहर है। और वे अपने शहर की तारीफ में लग गए। त्रिभुवन जब तक गोष्ठी में हाजिर न हो जाएं, संदेह बना रहता है कि कहीं किसी थियेटर में न घुस गए हो। वैसे यह काम दो–चार बार ही अपने जवानी के अच्छे भरे पूरे मस्ती के दिनों में ही किया है, लेकिन बदनाम तो हो गए। आज से लगभग 25 वर्ष पूर्व देशबंधु में ही मैंने त्रिभुवन के नाम खुला पत्र लिखा। इस पत्र की बहुत प्रतिक्रियाएं छपीं। छत्तीसगढ़ में अपने तरह का वह संबधं जोड़ने का एक नया तरीका था। त्रिभुवन ने तो कुछ नहीं कहा लेकिन उसके चाहने वाले विशाल पाठक वर्ग ने उसे एक स्थापित व्यंग्यकार बताते हुए मुझे कॉलम राइटर कहकर मुझ पर गरियाया।

सबको जोड़कर रखना, कवि गुण है या व्यंग्य गुण ? या काकटेल हे कवि और व्यंग्य का। त्रिभुवन ने महाविद्यालय में पढ़ाते हुए कॉलेज की हिन्दी समिति में छात्र–छात्राओं के लिए कई साहित्यिक कार्यक्रम किए। प्रतिवर्ष एक दिवसीय रचना शिविर उन कार्यक्रमों का एक अंग रहा। मुझे, ललित को, डॉ. हरिशंकर शुक्ल को छात्र–रचनाकारों के मार्ग निर्देशन के लिए आमंत्रित किया गया – हम क्या मार्ग निर्देशन करते हमारी ही जानकारी बढ़ी। भगवती सेन के पुत्र गंगाराम, सहित सरिता जैन अब दोशी, अंजुमनाज उस शिविर की देन है। अच्छा लिखते हैं सब। निकष परमार भी उस गोष्ठी में बैठते थे। दिन भर चलने वाले उन रचना शिविरों में छात्र उत्साह से भाग लेते, अपने प्रिय गुरू के निर्देशन

में । वहां धमतरी के वरिष्ठ साहित्यकारों, भगवती सेन, सुरजीत, नारायणलाल परमार, मुकीम भारती से भेंट हो जाती । मुकीम से मेरा परिचय त्रिभुवन ने ही कराया था – त्रिभुवन को देखता हूँ तो मुकीम की याद हो आती है । वैसे त्रिभुवन से मिलकर श्री चंदूलाल जैन से मिलना हो जाता है एक कम बोलते हैं, एक केवल बोलता है । त्रिभुवन के चाहने वालों में कृष्णकुमार ढांढ भी हैं – मेरे सहपाठी । कृष्ण कुमार ढांढ धमतरी नगर पालिका का अध्यक्ष बने । मित्रों ने बधाई विज्ञापन प्रकाशित कराया । त्रिभुवन का भी नाम था । कुछ लेखक मित्रों ने त्रिभुवन के नाम पर आपत्ति की । किसी के अध्यक्ष बनने पर लेखक को बधाई नहीं देना चाहिए । त्रिभुवन ने इस मत का विरोध किया । बहुत दिनों तक यह बहस गरमाती रही । फिर बहस को पूर्णविराम मिला । त्रिभुवन के सभी मित्र हैं । राजनेता, वकील, प्रशासक, डॉक्टर, लेखक, मजदूर, होटल वाले, ठेलेवाले – तो उनके कुछ कुछ होने पर त्रिभुवन बधाई देने से कैसे बचें । ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर – फिर व्यंग्य कैसे लिख लेता है । क्योंकि विसंगतियों पर व्यंग्य करता है । और इसलिए त्रिभुवन इधर है, त्रिभुवन उधर भी है । अगर राजनीतिक रूप में सोचा जाए तो हर उम्मीदवार समझे कि त्रिभुवन का वोट उसे ही मिल रहा है ।

त्रिभुवन व्यंग्य लिखता है लेकिन छत्तीसगढ़ की गरीब, वंचित, साधनहीन महिलाओं पर जरा भी व्यंग्य या हास्य पसंद नहीं करता । किसी कवि ने छत्तीसगढ़ी में एक हास्य गीत लिखा, जिसमें लोटा लेकर जाती हुई दो छत्तीसगढ़ी महिलाओं का मजाक उड़ाया गया है । त्रिभुवन ने हर गोष्ठी में उस गीत की संरचना और गीतकार की मानसिक स्थिति पर प्रहार किया – इस तरह का हास्य लिखेंगे कवि । गरीब महिलाओं की दैनंदिनी क्रियाओं का मजाक उड़ाना कौन सा हास्य है । उनकी संवेदनाओं की तरह ही उनके अक्षर भी सुंदर है । छोटे–छोटे अक्षरों में बड़ी–बड़ी बातें लिखते हैं । अधिकतर कार्ड ही लिखते हैं । अब फोन लग गया है । फोन से बाते ही जाती

है। (मैं ही करता हूँ, त्रिभुवन कंजूसी करता है।) हाँ प्रभाकर भाई, नमस्कार... फिर विस्तार से बाते हो जाती है। आपका व्यंग्य पढ़ा – आपकी फाइल में डाल दिया है। यानि कि वे 60 से ऊपर वाले मित्रों की फाइल तैयार कर रहे हैं। मैने टोंका भी यार त्रिभुवन तुम बहुत बदमाश हो। सारी सामग्री इकट्ठी कर रहे हो ना मालूम कब काम आ जाए। त्रिभुवन हंसे, जोर से हंसे – ऐसा नहीं है प्रभाकर भाई। लेकिन मन ही मन बोले होंगे तैयार तो कर लिया है, जा... साले को।

●●●

कुछ बातें हैं त्रिभुवन पाण्डेय में

विनोद साव

राजधानी रायपुर से एक लाईन कटती है जो धमतरी लाईन कहलाती है। रायपुर स्टेशन के ब्रॉडगेज से निकलती एक छोटी लाईन राजिम-अभनपुर इलाके से होती हुई धमतरी शहर की ओर निकल जाती है। इस लाईन पर चलती ट्रेन सबकी न्यारी- दुलारी हैं। हौले-हौले बड़े प्यार से चलती है। इसमें सवार मुसाफिर के दिल में 'आशीर्वाद' के अशोक कुमार का गाना गूंजता है। 'रेलगाड़ी... छुक...छुक...।' धमतरी के लिए ट्रेन भी रायपुर से और बस भी। छत्तीसगढ़ राज्य में फकत तीन राष्ट्रीय मार्ग हैं क्रमांक छह, पन्द्रह और तिरालिस। यह तिरालिस नम्बर वाला राष्ट्रीय मार्ग पहले रायपुर जिले से निकलता था लेकिन अब यहां धमतरी नाम का एक और जिला बन संवरकर तैयार हो गया है। अब यहां भी कुछ लोगों को नए सिरे से जिलाबदर होने के मौके मिलने लगे हैं।

देश की सबसे चौड़ी नदी महानदी का उद्गम स्थल इसी इलाके में हैं। धमतरी से अस्सी किलोमीटर दूर सिहावा की पहाड़ियों में महानदी पुराने रायपुर जिले से निकलकर नए रायपुर जिले से बाहर हो जाती है और उड़ीसा की जीवदायिनी बन जाती है इस नदी के किनारे राजिम और धमतरी बड़े समृध्द व सुसंस्कृत क्षेत्र हैं। यहां साहित्य साधकों का मजमा लगा रहता है। महानदी का चौड़ा पाट पानी से अधिक रेत से भरा हुआ है। रेत की नदी ! लगता है नदी व्यंग कर रही है, इस नदी में व्यंग कूट-कूट कर भरा है। एक बार प्रसिध्द कथाकार कमलेश्वर ने पूछा था कि "क्या वजह है कि मध्यप्रदेश में ज्यादा व्यंग्यकार होते हैं?" तब मैं ने मासूमियत से कह दिया था कि "हां ! और मध्यप्रदेश में ज्यादा व्यंग्य लेखक

छत्तीसगढ़ अंचल में और छत्तीसगढ़ में सबसे ज्यादा व्यंग्कार महानदी के तट पर पाए जाते हैं।'' इस पर कमलेश्वरजी ने एक जोरदार ठहाका लगाया था। यदि गौर फरमाएं तो धमतरी, राजिम और महासमुंद में रहने वाले –लतीफ घोंघी, त्रिभुवन पांडेय, पुरूषोत्तम अनासक्त, ईश्वर शर्मा, चेतन आर्य, काशीपुरी कुंदन, अनवार आलम, रवि श्रीवास्तव और महावीर अग्रवाल जैसे व्यंग्य लेखक महानदी के तटवट क्षेत्र की उपज है। महानदी के चौड़े पाट पर व्यंग्य के अपने उस्तरे को जिसने सबसे अधिक धार किया वे त्रिभुवन पांडे है। एक लेखक जिस परिवेश में पला बढ़ा होता है उस परिवेश को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना भी जरूरी है। त्रिभुवन पांडेय का शहर धमतरी हिन्दी और छत्तीसगढ़ी दोनों साहित्य का बड़ा केन्द्र रहा है। अंग्रेज इतिहासकार ग्रियर्सन के अनुसार छत्तीसगढ़ी भाषा का पहला व्याकरण ग्रंथ हीरालाल काव्योपाध्याय ने यहां लिखा था। यह भी उल्लेखनीय है कि जबलपुर के कामता प्रसाद गुरू जब हिन्दी व्याकरण ग्रंथ लिख रहे थे उसके पहले ही छत्तीसगढ़ी का व्याकरण लिखा जा चुका था। छत्तीसगढ़ी के बड़े गीतकार भगवती सेन धमतरी के थे। साहित्य की हर विधा को धन्य करने वाले लेखक नारायण लाल परमार यहां हैं जिन्हें महाराष्ट्र मंडल रायपुर द्वारा पहला मुक्तिबोध सम्मान दिया गया है। परमारजी 75 वर्ष के हो गए हैं। बाहर निकलना नहीं होता। आने जाने वालों से मिलकर खुश होते हैं। त्रिभुवन पांडे सहित इस नगर के सभी संस्कृतिकर्मी उन्हें 'दादा' कहकर संबोधित करते हैं। जिनका दिमाग दो–चार किताबों के छप जाने से गरम हो उठता हे वे अपना माथा ठंडा कर लें यह जानकर कि परमार कर्मठ और देशभत मिले जिनके विषय में जानकर उन्हें बेहद आश्चर्य हुआ। भगवान विष्णु पागलखाने से भागकर फिर लक्ष्मी जी के पास लौट आए। बम्बई से परेशान होकर वे नागपुर की ओर चल पड़े। ट्रेन में ही एक पंडित जी मिले। अखबार में विष्णु के पागलखाने से भागने की खबर प्रकाशित

हो चुकी थी। पकड़ कर लाने वाले के लिए पुरस्कार घोषित किया गया था। पंडितजी ने विष्णु का काफी सत्कार किया। घर में कुछ दिन आतिथ्य के बाद पुलिस को सूचना देकर उन्हें पकड़वा दिया। नागपुर से सेठ स्वरूपचंद का नौकर विष्णु भी भाग गया था। पुलिसवालों ने विष्णु को सेठ के हाथों सौंप दिया। विष्णु अब सेठ के घर पहुंचे तब सेठ की लड़की अंजना उनसे प्यार करने लगी। सेठ के खिलाफ जब कामरेड क्रांतिकुमार ने प्रदर्शन किया तब विष्णु भी प्रदर्शनकारियों के साथ गिरफ्तार कर लिए गए।

जेल से रिहा होने के बाद वे देवी लक्ष्मी को लेकर मजदूर बस्ती में रहने लगे। इसी बीच अंजना ने मजदूर नेता को फांस लिया। क्रांतिकुमार के अंजना के साथ चले जाने के बाद विष्णु कनकपुरा पहुंचे जहां श्रीधर ने गांवों में होने वाले विकास कार्यों का उन्हें परिचय दिया विमान चालक अनादिदेव ने एक लड़की का पीछा करते हुए व्यक्ति को पकड़ लिया। स्टंट फिल्म की शूटिंग करने वाले डायरेक्टर पिनाकीदत्त काफी प्रभावित हुआ। अनादिदेव को फिल्म में काम मिल गया। एक बार नायिका कामिनीदेवी की इज्जत लूटने पर आमादा सेठ को पीटकर वह फिल्म से भाग आया। अंत में भगवान, देवी लक्ष्मी और अनादि देव वापस लौट आए।

●●●

हिन्दी की प्राध्यापकीय, समर्थ आलोचना दृष्टि चमत्कारिक भाषीय कौशल, अध्ययन की गहनता, अनुभव की व्यापकता तथा विश्लेषण की अद्भुत क्षमता के साथ 1995 में त्रिभुवन पांडेय का ताजा संग्रह "पम्पापुर की कथा" का प्रकाशन हुआ। यह संग्रह उन्हें व्यंग्य संसार में भीड़ से अलग एक चेहरा सिद्ध करने की क्षमता रखता है। संग्रह की एक रचना पढ़ी नहीं कि दूसरी शुरू की ... और फिर तीसरी खत्म की 128 पृष्ठों में व्याप्त गद्य व्यंग्य रचनाओं

की इस किताब को उत्साही पाठक चाहे तो एक दिन में पढ़कर निपटा दें । जैसे ट्रेन का यात्री सत्य कथाओं में सरोकार हो जाता है । बच्चे कॉमिक्स में डूब जाते हैं । महिलाएं 'मनोरमा' हो जाती हैं । वैसे ही साहित्य का पाठक त्रिभुवन पांडेय की रचनाओं में खो जाता है ।

अपनी पहली किताब 'भगवान विष्णु की भारत यात्रा' जो उनका पहला स्तंभ लेखन भी था, से अपने रचना शिल्प का लोहा मनवा लेने वाले त्रिभुवन पांडे की यह दूसरी किताब बीस वर्ष के अंतराल में आई और अपने साथ लाई जानदार हास्य और धारदार व्यंग्य का शास्त्रीय ताल । कहीं गुदगुदाती हुई तो कहीं फुरेरी करती, कहीं वैचारिक गहनता में डूबती हुई रचनाएँ हैं । कहीं भाषाई चटकारेपन से चिकोटी काटती हुई । रचनाकार कहीं हास्य के 'स्कड' छोड़ता है तो कहीं व्यंग्य के पेट्रियार्ड फेंकता है । अपनी रचनाओं में वे उस धनुर्धर की तरह अभ्यास क्षेत्र में तन्मय दिखलाई देते हैं जिसे निशाना लगाना है तो सीधे लक्ष्य पर नहीं तो नहीं .... । कोई भटकाव नहीं ... कोई चूक नहीं .... बस चूक हुई तो केवल रचनाओं को डिसपैच करने में । पिछले तीस सालों से वे केवल स्थानीय अखबारों और आकाशवाणी को ही रचनाएं देते आ रहे हैं । व्यातनाम और बड़ी पत्रिकाओं को नहीं वरना क्या कमी थी त्रिभुवन जी की दर्जनों किताबें छप चुकीं हैं ।

मंचों के प्रसिध्द हास्य कवि और कुशल मंच संचालक हास्य कवि सुरजीत नवदीप यहां हैं । अपने चिरपरिचित अंदाज में मिलने वालों से ऊंचे बोल बोलते हैं 'रिटायरमैंट के बाद यार... यहीं सिहावा चौक पर एस.टी.डी. और जेरॉक्स की दुकान डाल लिया हूँ ताकि काम भी होता रहे और यार दोस्तों के लिए एक अड्डा भी बना रहे । हा.. हा... ! लो ... सचमुच एक और यार आ टपके हैं इस अड्डे पर... ये हैं रंजीत भट्टाचार्य । कभी इस शहर को गजल

सुनाने के लिए मुकीम भारती मयस्सर थे। तरन्नुम में निकलती हुई उनकी आवाज उनके नहीं होने के बाद भी आज भी लोगों के दिलों में गूंज रही है।'

साहित्यकारों से समृध्द इस धमतरी लाईन में है त्रिभुवन पांडेय जैसे श्रेष्ठ व्यंग्य लेखक। धमतरी से लगे हुए गांव 'सोरिद' में रहते हैं। त्रिभुवन जी बताते हैं कि उनका गांव रायपुर (अब धमतरी) और दुर्ग जिले की सरहद पर बसा होने के कारण सोरिद कहलाया। गांव से लगा हुआ ही है धमतरी का शासकीय महाविद्यालय जहां प्रो. त्रिभुवन पांडेय लंबे समय तक हिन्दी के विभागाध्यक्ष रहकर सेवानिवृत्त हुए। गांव में बसकर और धमतरी में रहकर भी त्रिभुवनजी का लेखन केवल कस्बाई प्रभाव तक सीमित नहीं रहा बल्कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय तंत्र तक अपने चिंतन को वे ले गए। उनके सादगीपूर्ण रहन–सहन और जीवन शैली को देखते हुए उनके विषय का उठान अचंभित कर देने वाला है। भाषा और कहने के अंदाज में वहीं परिपवक्ता है जिसके लिए परसाई, शरदचंद्र जोशी, रविन्द्र त्यागी और शुक्ल जैसे व्यंग्य लेखक जाने जते हैं। यह भी कहां जा सकता है कि जिस समय परसाई, जोशी, त्यागी और श्रीलाल शुक्ल की चौकड़ी हिन्दी व्यंग्य लेखन को नई ऊंचाईयाँ दे रहो थी। उस समय छत्तीसगढ़ में लतीफ घोंघी, त्रिभुवन पांडेय, प्रभाकर चौबे और विनोद शंकर शुक्ल की चौकड़ी अपनी लेखकीय सक्रियता से अपनी पहचान बना रही थी। भाषा, कथ्य और विचार सम्प्रेषण की दृष्टि से आज भी इस अंचल में इनके मुकाबले कोई दूरी चौकड़ी तैयार नहीं हो सकी। यह साहित्यिक और वैचारिक मामला है कोई राजनैतिक मसला नहीं कि नए राज्य के बन जाने से कोई रास्ता निकल आए। साहित्य में सहज नहीं है डगर पनघट की। त्रिभुवन पांडेय छद्मों और तिकड़मों से दूर रहकर केवल अपनी लेखनी के बल पर ही प्रतिष्ठा अर्जित करने वाले साफ सुथरे लेखक हैं। जैसा लिखा वैसा दिखा और वैसा ही बयान दिया वर्ना हिन्दी के लेखकों में ऐसी

पारदर्शिता कितने लोगों में है? यहां तो दिखते कहीं और हैं और लिखते कहीं और हैं जब बोलने की बारी आई तो कुछ ऐसा बोल गये कि जिसका दिखने और लिखने से कोई ताल्लुक ही नहीं रहा।

•••

मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ की धरती में व्यंग्य लेखकों के लिए बड़ा अनुकूल वातावरण हैं। संभवतः ऐसा इसलिए क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से देश के इस केन्द्रस्थल में रहने वाले रचनाकारों की नजर देश के सभी हिस्से में एक बराबर पड़ती है। सारे देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोग अपनी संस्कृति और आचारसंहिता का बोझ ढोकर इसी केन्द्रस्थल की ओर कूच करते रहे हैं। मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ की धरती देश की इस अनेकता में एकता को जहां आत्मसात कर लेती है वहीं इस एकता में अनेक विसंगतियों को उसकी विविधता में देखकर व्यंग्य लेखन के लिए कच्चा माल ढूंढ निकालती है। यहां त्रिभुवन पांडेय रहे जिन्होंने अपने लेखन के आरंभिक दौर में ही 'भगवान विष्णु की भारत यात्रा' जैसे चर्चित व्यंग्य उपन्यास लिखा। उनका व्यंग्य संग्रह 'पम्पापुर की कथा' हिन्दी व्यंग्य साहित्य को इस अंचल की महत्वपूर्ण देन है। कविता और समीक्षा लेखन तथा अखबारों में स्तंभ लेखन में भी उनका दखल सर्वदा स्वागतेय रहा है। गौरतलब बात यह है कि त्रिभुवन पांडेय ने कस्बाई शहर में रहकर उस ऊंचाई पर लेखन कर दिखाया जिसे महानगरों और राजधानियों के लेखक केवल अपनी कूबत मानते हैं।

•••

त्रिभुवन पांडेय 1970 के आसपास जब स्थानीय अखबारों के माध्यम से मुखरित हो रहे थे तब जहां उनकी पीढ़ी का लेखक वर्ग उनके भाषाज्ञान विचारों की सघनता भरे लेख और परिपक्व

व्यंग्य रचनाओं से प्रभावित हो रहा था। उस समय परवर्ती पीढ़ी उनके लेखन से संस्कारित हो रही थी। त्रिभुवनजी का रचनात्मक कौशल उनकी अपनी पीढ़ी में एक परिष्कृत नवलेखन की तरह सामने आ रहा था। उन्हीं दिनों उन्होंने भगवान विष्णु की भारत यात्रा नामक व्यंग्य उपन्यास लिख डाला। उन दिनों 'सरिता' पत्रिका पूरे देश में लोकप्रियता के पहले स्थान पर थी। 1972 में ही 'सरिता' ने इस उपन्यास को छत्तीस किश्तों में लगातार छापा। यह प्रकाशकीय उपलब्धि उन दिनों कितने लेखकों को मिल पाती रही होगी ? उसके तत्काल बाद यह समूचा उपन्यास फंतासी के विराट फलक पर रचा गया लेखनकर्म था। इस परिकल्पना के साथ कि 'भगवान विष्णु एक बार फिर भारत आए' अपने भक्तों का हालचाल पूछने, अपने पिछले अवतारों द्वारा स्थापित धर्म की गतिविधि देखने। उन्होंने सोचा था कि लोग उनके चरणों की धूल मांथे पर लगाएंगे, गोपियां, रोमांस का अवसर मिलेगा वह अलग।

लेकिन प्रणाम की जगह उन्हें मिली प्रताड़ना, श्रद्धा की जगह पुलिस के डंडो की मार। जेल के अलावा जब भगवान को पागलखाने की यात्रा करने का अवसर मिल गया तो उन्हें बैकुण्ठ लौट जाने में कुशलता समझी। ... इधर उनके विमान चालक अनादिदेव ने बंबई की रंगबिरंगी फिल्मी दुनिया में क्या कुछ देखा? कामिनी देवी के साथ इश्क का उतार चढ़ाव क्या समुन्दर के ज्वार-भाटे से कम थे? प्रोड्यूसर आलूवाला, डायरेक्टर पिनाकीदत्त लेखक सिंहनाद के साथ उसे कैसे रोमांचक अनुभव हुए ? यदि 'भगवान विष्णु की भारत यात्रा' के कथासार पर हम एक नजर डाले तो लेखक में 'कथा का शिल्प गढ़ने में' हास्य प्रसंगों तथा व्यंग्य की मारक क्षमता से प्रहार करने तात्कालिकता के प्रति सजग रहकर मिथकों की तरफ जाकर उन्हें वर्तमान संदर्भों से सफलतापूर्वक जोड़ पाने की उनकी कलात्मक कुशलता का सहज ही अन्दाज लगाया जा सकता है। उपन्यास का कथासार इस प्रकार है :

"भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी के मन में भारत वर्ष देखने की लालसा हुई। अनादि देव के साथ वे पुष्पक विमान से बम्बई पहुंचे। मछुवा बस्ती में उनकी भेंट वेंकटैया और चिम्मा से हुई। शाम के समय जब वे सागर का सौंदर्य देख रहे थे, चोर कुछ सामान उनके पास फेंक गए। पीछा करते पुलिस अधिकारियों ने विष्णु को पकड़ लिया। अपना परिचय जब उन्होंने भगवान विष्णु कहकर दिया तब उन्हें पागलखाने भिजवा दिया गया।"

अध्ययन के विराट अनुभव का ही यह प्रभाव माना जावेगा कि त्रिभुवनजी की रचनाए अनेक संदर्भों व उदाहरणों से भरी होती है। जैसे ही कोई विषय उन्हें कौंधता है तो संदर्भों व सूचनाओं का एकत्रीकरण आरंभ हो उठता है। लेकिन यह महज संदर्भ लेखन नहीं होते। इन संदर्भों को वे हास्य के साथ इस ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक पढ़ते समय बरबस ही ठहाके लगा उठता है। संग्रह की कई रचनाएं जैसे पम्पापुर की कथा, पृथ्वी पार्थना, चन्द्रकांता, बीसवी शताब्दी में आर्यजन तथा सतयुग में चुनाव जैसी रचनाओं में वे मिथकों की ओर जाते हैं और लौटकर उन्हें वर्तमान संदर्भ में जोड़ते हें। मिथकों व संदर्भों के साथ हास्य का सटीक प्रयोग कर त्रिभुवनजी वैसे ही छाप छोड़ते हैं जिसके लिए रवीन्द्रनाथ त्यागी जाने जाते हैं। उनकी अनेक रचनाएं त्यागीजी की रचनाओं की तरह अभिजात शैली की बन पड़ती है। बीसवीं शताब्दी में आर्यजन की ये पंक्तियाँ देखे –

"कुछ दूर जाने पर एक पोस्टर दिखलाई पड़ा जिस पर वात्सयायन रचित कामशास्त्र जैसी मुद्रा अंकित थी। उत्सुकतावश मैने एक व्यक्ति से पूछा" इस भाव विव्हल दृश्य को प्रदर्शित करने का क्या आशय है भद्रजन?

"यह आर्यों की रंगशाला है। यहां बैठकर आर्य अपना मनोरंजन करते हैं।"

"इसे क्या कहते हैं, आर्य?"

"इसे वीडियो हॉल कहते हैं। यहां कामक्रीड़ा के उत्कृष्ट दृश्य भद्र आर्यों के मनोरंजन हेतु दिखाए जाते हैं"

संग्रह की गई रचनाएं ऐसी है जो वाचिक परम्परा का निर्वाह करती है जैसे गरीबदास का नागरिक अभिनंदन, अपहरणकर्ता, प्रेम के विकास में मेरा योगदान। संग्रह की सभी रचनाओं में भाषा के स्वर अपनी शास्त्रीयता बनाए हुए हैं। कहीं कहीं वे भाषाविद की तरह शब्दों का अद्भुत विश्लेषण करते हुए दिखाई देते हैं। जैसे 'नेता' एक भाषाशास्त्री अध्ययन में एक व्याख्या इस तरह है आखिर नेता की व्युत्पत्ति कैसे हुई ? क्या यह 'नेति' शब्द से बना है ...। यदि यह शब्द 'नेत' से बना है तो उसके भी अनेक अर्थ होते हैं – मथानी की रस्सी, रेशमी चादर, प्रबंध या व्यवस्था। नेता में तीनों गुण समाहित हैं। वह मथानी की रस्सी की तरह उपलब्धियों को बिलोता है फिर मक्खन खुद रखकर बाकी बची छांछ जनता में बांट देता है। अभिनंदन के अवसर पर रेशमी चादर ओढ़ लेता है। इन्हीं चीजों की व्यवस्था में जो निपुण होते हैं वे नेता कहलाते हैं। रचना – "छूटे हुए रस प्रसंग" में विविध प्रसंगों का हवाला देते हुए बताते हैं "आजादी के बाद करूण रस के कोटे में काफी वृध्दि हुई है जबकि हास्य रस सिविललाइन्स, शॉपिंग सेंटर और व्यापारियों के गोदामों में मौजूद है। यहां मोटे और थुलथुलकाय लोगों को देखकर हास्यरस साकार हो उठता। श्रृंगाररस को फिल्मों में उसके हाव भाव विभाव तथा संचारी भाव सहित हड़प लिया है। पुलिस विभाग ने रौद्र रस ले लिया। पत्नी वीर रस पर कब्जा जमा लेती है जबकि पति शांत रस हो जाता है। अद्भुतरस भारतीय संस्कृति के हिस्से चला आया जहां मंदिर में भजन तो सड़क पर डिस्को हो रहे हैं।"

संग्रह की पहली व शीर्षक रचना 'पम्पापुर की कथा' में भी मगधपुरी बोली में आर्यजनों की वार्तालाप का सुंदर प्रयोग है। इसके संवादों में देश काल का विशेष ध्यान रखा गया है। भाषा के यही निर्वाह तकरीबन संग्रह की सभी रचनाओं का वैशिष्ट्य है।

त्रिभुवनजी का विषय क्षेत्र ज्यादातर रचनाकारों की तरह केवल राजनीति, महंगाई, बेरोजगारी या आतंकवाद की सीमा में नहीं है। उनकी नजर राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय स्तर के अनेक अनछुए प्रसंगों पर भी है। शेयर मार्केट, क्रिकेट, फुटबाल, ओलंपिक, वृक्षारोपण, प्रदूषण जैसे क्षेत्रों पर भी नजर रखे हुए हैं। विकासशील देशों की पतली हालत और अमरीकी दादागिरी का पर्दाफाश भी करते हैं। विषयों की विविधता से युक्त त्रिभुवन पांडेय के अभिजात लेखन की ताल है 'पम्पापुर की कथा' जो हिन्दी व्यंग्य परम्परा के सन्नाटे में गूंजता एक शास्त्रीय ताल साबित हो सकता है।

•••

त्रिभुवन पांडेय उस दौर के रचनाकार हैं जब हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल इस अंचल में अपने मूल्यों और मान्यताओं की स्थापना के लिए संघर्षरत था। साहित्य के परंपरागत और पांडित्यपूर्ण लेखन से हटकर त्रिभुवन पांडेय ने व्यवहार और यथार्थ के धरातल पर अपनी रचनाओं में सीधे-सीधे वर्तमान से संवाद किया है। कविता और गद्य लेखन का क्षेत्र हो या व्यंग्य और समीक्षा लेखन का, चाहे भाषा और शिल्प की बात हो या फिर विचार व प्रतिबद्धता का सवाल हो। हर कहीं वे पूरी शिद्दत से नजर आते हैं क्योंकि कुछ बातें हैं त्रिभुवन पांडेय में।

•••

त्रिभुवन पाण्डेय एक रेखा चित्र

शरद चंद्र मिश्र

ऐसे लेखक बिरले ही हैं जो आम आदमी की संवेदना को समझते हैं उसकी वेदना को अनुभव करते हैं और जिनके पास आम आदमी की ही भाषा भी होती है। भगवान विष्णु की भारत यात्रा के लेखक श्री त्रिभुवन पांडेय का मानना है कि व्यंग्य को सहज हास्य की दुनिया से निकले हुई वर्षों बीत चुकें हैं और अब इसे अपनी सार्थकता सिद्ध करनी है।

एक रेखा चित्र में यदि त्रिभुवन पाण्डेय के व्यक्तित्व को समेटना चाहे तो वह कुछ ऐसा होगा।

एक शख्स जो धमतरी की सड़कों पर साइकिल चलाते हुए घूमता है जो शासकीय महाविद्यालय के हिन्दी विभाग से लेंकर अपने निवास स्थान सोरिद ग्राम तक के अनपढ़ छोटे किसानों के बीच हंसता बोलता और जीता है।

जिसे हास्य व्यंग्य की प्रतिभा ईश्वर ने घुट्टी में पिला कर दी है। त्रिभुवन पाण्डेय की यह हास्यवृत्ति केवल उनकी रचनाओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि उनके रोजमर्रा के जीवन में भी उतर आई है। अगर किसी महफिल में त्रिभुवन पाण्डेय हों और वहां ठहाके न लग रहे हों तो धमतरी की जनता इसे अनहोनी घटना समझती है। यह त्रिभुवन पाण्डेय की विशेषता है कि जितनी कुशलता से वे अपनी व्यंग्य रचनाओं में हास्य व्यंग्य का सृजन करते हैं उसी अंदाज में सोरिद के अनपढ़ किसानों को भी हंसा सकते हैं। त्रिभुवन पाण्डेय की गतिविधियां भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी गांव के एक अनपढ़ किसान की।

सभ्य संसार की नजरों में त्रिभुवन पाण्डेय एक बेफिक्र आदमी है शायद इसलिये कि उसके पास गंभीरता का मुखौटा नहीं। लोगों की नजरों में वह एक गैर जिम्मेदार आदमी भी है। शायद इसलिये कि वह अपने या अपने परिवार के लिये कम दौड़ धूप करता है और शहर भर के सांस्कृतिक साहित्यिक कार्यक्रमों के लिये अधिक दौड़ धूप करता है।

जिन लोगों को त्रिभुवन पाण्डेय से उनके अतीत के स्मरण सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे जानते है कि कैसे अपने जवानी के दिनों में वे महासमुंद में अपने सहयोगियों के साथ धमा चौकड़ी मचाते रहते थे और शायद इसी धमा चौकड़ी ने उनके व्यक्तित्व में वह उदात्तता भर दी अपनेपन का कोई अहसास भर दिया कि परायेपन का कोई अहसास नहीं होता। इस सिद्धि को प्राप्त करने में शायद किसी योगी को बरसों लगेंगे।

एक ऐसा शख्स है त्रिभुवन पाण्डेय जो धमतरी की सांस्कृतिक आयोजनों का वी.आई.पी. सबसे महत्वपूर्ण आदमी है। जिसके कंधे पर किसी कार्यक्रम के आयोजन की सारी जिम्मेदारी होती है।

लेकिन प्रश्न यह है कि धमतरी ने उसे क्या दिया है?

●●●

साहित्य के वन मैन आर्मी हैं पाण्डेय जी

रंजीत भट्टाचार्य

हर आदमी में होते हैं दस–बीस आदमी
जिसको भी देखना हो, कई बार देखना।

पाण्डेय जी को कई बार देखने का मौका मिला। विविध रूपों में देखने का मौका मिला। कभी वे सामाजिक विद्रुपताओं के बीच मानवीय करूणा के साथ व्यंग्यकार के रूप में दिखे तो कभी संवेदना में संपूर्णतः रचे–बसे गीतकार नजर आये। बौद्धिक गवेषणा करते समीक्षक के तौर पर भी हुए। पांडेय जी ने पहचान बनाई। कभी व्यंग्य उपन्यास लिखा। कभी हास्य नाटककार बने। लेकिन जब लिखा जो लिखा एकदम मौलिक।

चलिये, शुरू से ही शुरू करता हूँ। अपने स्कूलिंग के समय मैंने 'सरिता' में प्रकाशित उनके लोकप्रिय धारावाहिक उपन्यास 'भगवान विष्णु की भारत यात्रा' की कुछ किश्तें पढ़ी। नाम से पहचान हुई लेकिन व्यक्ति से पहला परिचय नूतन कालेज के दिनों में हुआ। हमारे कालेज की हिन्दी साहित्य समिति की पहली काव्य गोष्ठी में नारायण लाल परमार, मुकीम भारती, सुरजीत नवदीप के साथ ही त्रिभुवन पांडेय की चौकड़ी मौजूद थी। एक साहित्यकार के बतौर पांडेय जी के चुटकीले संवादों के साथ उनकी हास्य–व्यंग्य की रचनाओं ने बता दिया कि उनके व्यक्तित्व से सर्जना की अनेक धारायें फूटती हैं।

उन दिनों धमतरी के विनोद होटल में इस चौकड़ी के साथ ही हम नये रचनाकारों का ऐसा जोड़ बैठा कि हर दिन 'साहित्यिक गपशप' की हमें चार लग गई। इसी तरह सनडे को बिना नागा हम

गुरूदेव परमार के यहाँ इकट्ठे होते। धीरे–धीरे पांडेय जी में समाहित विविध रचनाकारों के दर्शन होते चले गए। मैने यह जाना कि पांडेय जी जितना लिखते हैं, उससे कहीं ज्यादा पढ़ते हैं। उनके पास ढेर सी जानकारियाँ रहती थीं। उनके पास ढेर से अनुभव होते थे। बस, इन्हीं संसाधनों से वे अपने व्यंग्य साहित्य को समृद्ध करते रहे। व्यंग्य में उनके प्रगतिशील विचार, विश्लेषण शक्ति और शब्द समूह में हास्य–व्यंग्य भरने की अद्‌भुत कला का प्रदर्शन जारी रहा। लेकिन हृदय की करूणा, संवेदना और भावुकता की निकासी के लिए संभवतः व्यंग्य का फार्म सीमित पड़ता था इसलिए उन्होंने पहले तो नयी कविता लिखी फिर नवगीत में हाथ आजमाया। आश्चर्य ! पहले जहाँ पांडेय जी श्रेष्ठ व्यंग्यकारों में गिने जा रहे थे वहीं वे श्रेष्ठ गीतकार भी माने गए। पांडेय जी रोज पढ़ते रहे और रोज नया लिखते रहे कहानी, ललित निबंध, संस्मरण, हास्य प्रसंग वगैरह–वगैरह।

मुझे याद आ रहा है, अपने साप्ताहिक अपना मोर्चा का जमाना। इस छोटे से साप्ताहिक में पांडेय जी ने 'मेरा मोर्चा' स्तंभ शुरू किया और हर सप्ताह स्थानीय विषयों पर लिखा जाने वाला उनका व्यंग्य काफी लोकप्रिय हुआ। मुझे लगता है कि हिन्दी संसार में हमारे 'सर' इकलौते साहित्यकार हैं जो व्यंग्य, नवगीत और समीक्षा इतनी सफाई से लिखते हैं कि व्यंग्यकार, कवि तथा समीक्षक के रूप में तीन रचनाकार एक साथ नजर आते हैं। व्यंग्य की कई मौलिक शैलियों को पांडेय जी ने जन्म दिया है जो बाद में दूसरे व्यंग्यकारों ने दोहराया है। पांडेय जी का 'रेंज' विशालकाय है। जीवन भर वे एक गंभीर शिक्षक रहे हैं। महासभा में प्रायमरी स्कूल के शिक्षक से धमतरी पीजी कालेज के हिंदी विभाग के पद तक 'सर' की यात्रा भी उन्हें एक अलग पहचान देती है।

अक्सर सुनाई देता है कि पांडेय जी अगर धमतरी में न होकर महानगर में होते तो रचनाएँ ज्यादा पढ़ी जाती उनका नाम ज्यादा होता। पता नहीं, यह सच होता या नहीं लेकिन मैने देखा कि

'सर' कभी नाम के पीछे नहीं दौड़े। पुरस्कार के पीछे भी नहीं। हाँ, पुरस्कार अगर इनके पीछे पड़ा तो विनम्रता से स्वीकार कर लिया।

हाल ही में उनके घर गया तो पता चला कि इन दिनों पांडेय जी गजल लिख रहे हैं। मैने पूछा कि नवगीत से गजल, बात क्या है सर? वे बोले–क्या है पार्टनर, गीतों में दुहराव होने लगा था। गीत 'चुक' रहे थे सो गजल स्टार्ट किया है। यही कोई पैतालिस हो चुकी है मैं उन्हें देखता रह गया। करीब 75 वर्ष के पाण्डेय जी के चेहरे पर फिर एक नयी विधा के प्रति ललक साफ नजर आ रही थी।

बहरहाल, साहित्य के वन मैन आर्मी त्रिभुवन पांडेय हमेशा स्टार्ट रहें, शतायु हों और हमें अपने साहित्य से चौकाते रहे। यही कामना करता हूँ।

•••

तुम कथ्य लिखो मैं कथा लिखूंगा

डुमन लाल ध्रुव

आ गये शब्दों पर। पहरे के दिन। उनके ही नारे हों। उनका ही ध्वज। उनका इतिहास हो। उनके पूर्वज। उनकी ही आस्था पर। ठहरे से दिन। सुप्रसिद्ध साहित्यकार व्यंग्यकार गीतकार श्री त्रिभुवन पाण्डेय का सद्य प्रकाशित गीत संग्रह "कागज की नाव" मेरी समझ में जो कुल एक सौ चौदह पृष्ठों में केन्द्रित है। त्रिभुवन पाण्डे जी, के गीतों में जब कागज की नाव तैरने लगते हैं तब ऐसा लगता है कि गीत अपनी पहचान की जीवंतता की वकालत करते हैं और यह सत्य है कि गीत कभी नष्ट हुआ है और न उसके अस्तित्व पर कोई आंच आई। जब जीवन को वैराग्य और दक्षता से मुक्ति का कोई साधन उपलब्ध नहीं होता तो गीत ही इस दुश्तर काम को करते हैं। इसलिए गीत को हृदय में बसाये रखने वाले लोग इसे एक शाश्वत विधा के रूप में ग्रहण करते हैं। गुनगुनाहट का एक धर्म मनुष्य के साथ उनके जन्म के क्षणों से ही जुड़ा हुआ है। गीत मन को प्रसन्न और सुरभित रखने वाली काव्य विधा है। गीत संगीत का रिश्ता सदियों पुराना है। अगर हम समीक्षा के द्वार पर दस्तक दें तो ज्ञात होता है कि गीत की रचना एक महत्वपूर्ण प्रयोजन से होती हे। शायद इसीलिए वरिष्ठ गीतकार डॉ. जीवन यदु खैरागढ़ से पूरे छत्तीसगढ़ की जमीन में गीत का विरवां सींचते-सींचते उसे वट वृक्ष जैसा बना चुके हैं। और स्वयं त्रिभुवन पांडे जी के गीत संग्रह के संदर्भ में लिखते हैं कि गीत मनुष्य जीवन की अनिवार्यता है। कोई उसके माधुर्य को गुनगुनाता है, तो कोई उसके रागात्मक भाव संसार में स्वयं की स्थितियों परिस्थितियों को पाता है। आप ऐसे आदमी की कल्पना नहीं कर सकते, जिसकी आत्मा को गीत की

किसी पंक्ति ने स्पर्श ही न किया हो । त्रिभुवन पांडे के गीतों में अनुभूति और अनुभव का अनूठा सामंजस्य विद्यमान है और यह सामंजस्य ही पाठकों को गहराई तक डुबोता है। जैसे – स्वप्न देखकर कभी किसी की । आंखें नहीं थकी अनुभव अर्जित करने भर से । यात्रा नहीं रूकी ।

बहरहाल, त्रिभुवन पांडे जी का समग्र गीत अवदान उनको एक प्रतिष्ठित मुकाम तक ले आया है । उनके गीतों में समय और मानवीय संवेदनाएं एक साथ चलती है। उनके गीतों में जो वैशिष्ट्य है उसकी बानगी वह स्वयं देते हैं किन्तु अहम् से अलग रहकर –

तुम पत्र लिखो
मैं पता लिखूंगा
लिखना सच–सच आसपास की
जैसी भी हो राम कहानी
मुस्कानों का विवरण लिखना
कितना है आंखों में पानी
तुम कथ्य लिखो
मैं कथा लिखूंगा ।

●●●

गीतों के बहाने

गीतों के बहाने

नव गीतों का जनबोधी-संदर्भ

नारायणलाल परमार

व्यंग्य विधा के धारदार लेखक और प्रखर साहित्य समीक्षक के रूप में त्रिभुवन पाण्डेय का नाम इस अंचल में परिचय का मुहताज नहीं है। अब तक आपने हिन्दी संसार को एक अछूता व्यंग्य उपन्यास "भगवान विष्णु की भारत यात्रा" एवं एक व्यंग्य संग्रह "पम्पापुर की कथा" भेंट की है साथ ही आपके शताधिक व्यंग्य आलेख आज भी पत्र पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं।

इन दिनों आपने अपने साठ वर्षों की अनुभव सम्पदा के सहारे नव गीत लेखन में प्रवेश किया है। "सुनो सूत्रधार" आपका प्रथम नवगीत संग्रह है।

मेरी अपनी मान्यता है कि गीत आत्म निष्ठा के आग्रही होते हैं। उनकी सफल सार्थकता तभी है जब वे अछूती चारूता का स्वाद दें जिसमें युग चेतना अपने आवेग के साथ मुखरित हो। जो रूढ़ियों के विभ्रम में आबद्ध नहीं। लोक चेतना का उपकरण हो।

वैदिक काल से ही भारत में संगीतात्मक मुक्तकों की एक अजस्र परम्परा चली आई है। वेद हमारे मंत्रद्रष्टा कवियों के गीत हैं। तत्पश्चात बाल्मीकीय रामायण में भी गीति-तत्व मुखर है। बौद्धकाल में थेर और थेरी गाथाओं में गीतों का अस्तित्तव अक्षुण्ण रहा है। कालिदास के मेघदूत में भी गीति-तत्व कम नहीं हैं समष्टि रूप से तो हृदय गत उल्लास अथवा विषाद की तीव्रानुभूति की अभिव्यक्ति को ही गीतों का प्राण धर्म कहा गया है। संगीत्मकता पर आधृत गीत प्राचीन यूनान में भी प्रचलित थे। डोरियन मुक्तकों को भी गीत श्रृंखला में परिगणित किया जा सकता है। कालिदास, जयदेव और विद्यापति के गीतों में जो गीति माधुरी की गहनता

मिलती है यह विस्मृत नहीं की जा सकती। अपभ्रंश में भी पूजा और अर्चना के अनेक पद मिलते हैं जिनका प्रभाव परवर्ती संतों तथा भक्त कवियों के पदों में मिलता है। कबीर, सूर, मीरा तथा तुलसी आदि कवियों के पद निसंदेह गीति काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण है। रीतिकाल में अवश्य स्वतंत्र-भाव चेतना की परवाह किसी को नहीं थी इसलिए गीति-धारा कुछ अवरूध्द रही किन्तु भारतेन्दु हरिशचन्द्र से गीतों की नवीन प्राण प्रतिष्ठा का युग प्रारंभ होता है।

छायावादी गीतों में माधुर्य भाव के साथ वेदना की गहरी अनुभूति मिलती है साथ ही परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासा, प्रकृति के प्रति रागात्मकता, देशप्रेम तथा लाक्षणिकता आदि काव्य तत्वों के दर्शन होते हैं। फिर हमारा मानसिक धरातल कुछ और बदला। शहरी सभ्यता का बोध कुछ अधिक उजागर हुआ। प्रतिदिन के संघर्षों से व्यक्ति कुछ इस तरह टूटने लगा कि इस टूटन का प्रत्येक अंग गीतों में बिम्बित होने लगा। साथ ही पूर्ववर्ती वादों से भिन्न नयी कविता भी अलग भाव बोध लेकर चली। उसकी अपनी भाषा थी, अपना स्थिरता, अपने मुहावरे थे। अचानक गीत प्रतिद्वंद्विता ग्रस्त हुआ और नवगीत बन गया।

नवगीत एक नयी काव्य विधा है, हालांकि इसके विकास में पिछले चार दशकों से अधिक समय व्यतीत हो चुका है। इसका अविर्भाव कोई आकस्मिक घटना नहीं है। बौद्धिक आग्रह के कारण कविता में बढ़ती हुई गद्यात्मक विरसता से नवगीत का जन्म हुआ, जिसमें लोक धर्मिता के साथ सघन रागात्मकता एवं नये शिल्प का विन्यास था। प्रत्यक्ष जीवन के अनुभव जन्य यथार्थ की अभिव्यक्ति के रूप में इसमें अहंवादी एवं बुद्धिवादी हिमायतियों ने अपने पूर्वाग्रह के कारण नवगीत का विरोध किया। नवगीतकारों ने स्वयं इसे एकजुट होकर आन्दोलन का रूप दिया।

अतएव गीतों की मान्यता पुनर्स्थापित करने के लिए यह जरूरी है कि गीतों के फैक्ट्री में भाषा और शब्दों की नई मशीनें

फिट की जाये। इसके पैटर्न बदले जाये और इनके मोल्ड मानवीय हितों की सुरक्षा के लिए तैयार किये जाये। इनके शिल्प को अधुनातन रूप दिया जाय। भाषाई अनुशासन के मापदण्डों और इस्तेमाल के तौर-तरीकों को बदला जाय ताकि गीतों की मान्यताओं, अपेक्षाओं, अतिवादी दुखों, असहमतियों की यथार्थ प्रस्तुति प्रामाणिक एवं प्रभावी ढंग से कर सके, जो दिन-रात आदमी के भीतर बैठकर द्वंद्व पैदा करते रहते हैं और सामाजिक, आर्थिक मूल्यों को जबरदस्त हानि पहुंचाते रहते हैं। त्रिभुवन पाण्डेय के ये नवगीत अपने सही स्वरूप को प्रकट करने में सफल सिद्ध हुए हैं।

शुभकामनाओं सहित !

●●●

शब्द तो अब भी मुखर है

जीवन यदु

गीत मनुष्य–जीवन की अनिवार्यता है। कोई उसके माधुर्य को गुनगुनाता है, तो कोई उसके रागात्मक भाव–संसार में स्वयं की स्थितियों–परिस्थितियों की उपस्थिति को पाता है। आप ऐसे आदमी की कल्पना नहीं कर सकते, जिसकी आत्मा को गीत की किसी पंक्ति ने स्पर्श ही न किया हो। मनुष्य के अंदर, सुख–दुख, प्रेम–घृणा जैसी अनेक विरोधात्मक भावनाएँ होती है। इन भावनाओं के स्वाद को चखने का अवसर मनुष्य को उसकी परिस्थितियाँ जीवन भर देती रहती हैं। वह अपने पास–पड़ोस को भी इन्हीं भावों को जीते हुए देखता है और संवेदित होता है, आन्दोलित होता है। हर मनुष्य इन भावों को लयकारी के साथ शब्द नहीं दे सकता, जो गीतकार शब्द की गहराई में जितना अधिक उतरता है, वह गीतार्थ को उतनी ही गहनता प्रदान करता है। छत्तीसगढ़ में गीतकारों की लम्बी परम्परा है। यदि आप नाम गिनाने बैठे तो कुछ एक नाम छूट जायेंगे। मुकुटधर पांडे, हरिठाकुर, नारायणलाल परमार, भगवान स्वरूप सरस, राम प्रताप सिंह विमल, राम अधीर, नरेन्द्र श्रीवास्तव, विद्याभूषण मिश्र, दानेश्वर शर्मा, इंदिरा परमार, अनिरूद्ध नीरव, जीवन यदु, मुकुन्द कौशल, अजय पाठक ऐसे नए पुराने नाम हैं, जिनसे छत्तीसगढ़ गीत–संसार को रूप मिला है। श्री त्रिभुवन पाण्डेय इन सभी गीतकारों से कुछ अलग स्वर रखते हैं। वे छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ रचनाकार हैं। उनकी अनेक किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। यद्यपि उनके नवगीतों का प्रथम संग्रह 'सूनो सूत्रधार' का प्रकाशन काफी बाद में यानी सन् 2000 में प्रकाश में आया, तथापि उनके गीतों की ताजगी ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया था। 'कागज

की नाव' उनका दूसरा नवगीत संग्रह है। यदि दोनों संग्रहों के गीतों को मिलाकर अध्ययन करें तो आपको यह निश्चित रूप से लगेगा कि उनमें चिंतन की सहज धारा प्रवाहित हो रही है।

श्री त्रिभुवन पाण्डे सिर्फ शब्द-शिल्पी भर नहीं हैं। वे इसके अतिरिक्त भी कुछ हैं। और उनका यह अतिरिक्त होना ही उन्हें अन्य गीतकारों से अलग करता है, विशेष बनाता है। चूंकि हर रचनाकार किसी न किसी रूप में शब्द-शिल्पी होता ही है। शिल्प एक कला है। अतः कला के साथ चिंतन का सहज योग हो जाए तो सोने में सुगंध वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है। फिर भी, मैं इसे त्रिभुवन पाण्डेय के गीतकार को अतिरिक्त नहीं मानता। उनका 'अतिरिक्त जो उन्हें विशेष बनाता है, वह है शब्दों की गहराई में उतर कर अर्थ को गहनता प्रदान करना। उनका गीतकार बार-बार शब्दों की शक्ति को पहचानने की कोशिश करता है। उनके मानस की शब्दमयता का अंदाजा इसी बात से लगा सकते हैं कि स्वयं को भी शब्द के स्थान पर रखकर सोचते हैं -'

"जिसका अर्थ अपरिचित अब तक,
शब्दों का वह अभिन्यास हूँ।"

चाहे "सुनो सूत्रधार" हो अथवा 'कागज की नाव' हो पाठक अनुभव करेंगे कि शब्द - साधना की निष्ठा संग्रह के गीतों को नयी अर्थवत्ता प्रदान कर रही है। यही कारण है कि शब्दों को लेकर अनेक गीतों की रचना हुई है -

"आ गए शब्दों पर / पहरे के दिन"
"लेकर तिलस्म अद्‌भुत/मायावी निकले"
"पता नहीं टूटकर कहाँ गिरे/शब्दों के चमकीले पंख"
"वृत्ताकार शब्दों का चक्रव्यूह/टूटता नहीं है"

त्रिभुवन पाण्डेय का गीतकार शब्दों की अर्थगत सकारात्मक ही नहीं अपितु उसकी अर्थगत नकारात्मकता को भी सामने लाने का प्रयास करता है।

वह अच्छी तरह जानता है, स्थितियाँ ऐसी जटिल है कि एक तरफ शब्द होंठों तक न पहुंच पाने के लिए बाध्य हैं तो दूसरी तरफ शब्दों के साथ खिलवाड़ करने वाले लोग मौजूद हैं। वे बौद्धिकता की चासनी में शब्दों को डुबो-डुबोकर उछाले जा रहे हैं -

"शब्दों में चिनगारी,
बहसों में धार थी।
वाणी में सम्मोहन,
अद्भुत रफ्तार थी।"

शब्दों की कलाकारी दिखाने वाले लोग - 'अर्थहीन शब्दों को रखना है चिरनवीन' के प्रयास में लगे हुए हैं। रचनाकार जगत का वह हिस्सा जो खुद को शब्द शिल्पी मानकर प्रसन्न है, वह भी शब्दों की अर्थगत नकरात्मकता से अछूता नहीं है। उसके मानस में - 'रोटी की यदि बात करो तो/शब्दों का स्तर गिरता है' - का चिंतन गहरे तक धंसा हुआ है।

कुल मिलाकर, छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ नवगीतकार भाई त्रिभुवन पाण्डेय का यह संग्रह "कागज की नाव" आज के मनुष्य के जीवन की जटिलताओं के रू-ब-रू तो है ही साथ ही, वृहत्तर समाज के सुखों-दुखों को पूरी संवेदना के साथ मुखर करता है। निश्चित रूप से यह संग्रह छत्तीसगढ़ के हिन्दी गीत विधा की अगली कड़ी है, अगला अंतरा है - शिल्प और चिंतन दोनों दृष्टियों से।

●●●

कागज की नाव : लक्ष्यबेधी नवगीत

डॉ. गणेश खरे

'सुनो सूत्रधार' के बाद 'कागज की नाव' त्रिभुवन पाण्डेय जी का दूसरा नव गीतों का संग्रह है जिसमें उनकी 104 रचनायें संकलित है, आपके अधिकांश नवगीत 14 पंक्तियों वाले सानेट की शैली में लिखे गए है पर उनमें हाइकू छंद को संक्षिप्तता और नाविक के तीरों जैसी गंभीर घाव करने वाली मारक क्षमता निहित है। आपके अनियंत्रित भावात्मक आवेश के मूल स्रोत हैं – युग जीवन की विभीषिका, भ्रष्टाचार, मुखौटों वाली लोक तंत्र की अप-संस्कृति, शोषण, अपमान और विवशता, रचनाकार की ये युगबोधी चिंतायें कही व्यंग्य के रूप में प्रगट हुई है तो कहीं कटाक्ष के रूप में श्री त्रिभुवन पाण्डेय जी मूलतः व्यंग्यकार है पर नवगीतों में उनके व्यंग्य कुछ शहद में लिपटे हुए हैं, कुछ नये-नये प्रतीकों में छिपे हुए हैं और कुछ ऐसे भी है जो कबीर की कुटी के आसपास खड़े दिखाई दे रहे हैं अर्थात वे सीधे, सपाट और तेज धारदार हैं यहां हम इन सबके कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं –

मांत्रिक जिसको भी छू दो तुम/वह पल में गायब हो जाये
ताला बंद गोदामों से,
गुम हो जाये धान,
देख तुम्हारा अद्‌भुत कौशल
लोग सभी हैरान
जिस ट्रक पर तुम दृष्टि जमा दो
वह पल में गायब हो जाये

यहां मांत्रिक अर्थात् जादूगर है – देश के सेठ, साहूकार, सरकारी अधिकारी, जन सेवक, नेता, मंत्री पुलिस आदि।

भ्रष्टाचारियों पर किया गया यह व्यंग्य कडुवा है पर 'मांत्रिक' शब्द ने इस कडुवाहट को हास्य की कगार तक ला दिया है।

तेजोमय दीप्त लगे
विज्ञापित रूप
देश कहां लगता है
इनके प्रतिरूप

देश के इन जादूगरों का विज्ञापन ही तेजोमय प्रतीत होता है इस देश को तो इन लोगों ने मिलकर खोखला कर दिया है। यह उनके विज्ञापित आदर्शों से जरा भी मेल नहीं खाता। वस्तुतः ये सभी लोग मुखौटों वाली अप-संस्कृति की देन है।

बांट लिया अमृत सब
छोड़ गए विष
काजू-सा दिन इनका
रातें किशमिश

पौराणिक समुद्र मंथन के रूपक के परिप्रेक्ष्य में किया जाने वाला यह प्रतीकात्मक व्यंग्य एकदम स्पष्ट है। छल छद्म से जीवन का सारा वैभव इन भ्रष्टाचारियों ने आपस में बांट लिया है और जनता के हिस्से में केवल विष ही बच पाया है। काजू और किशमिश के दृश्य बिम्बों के द्वारा इनके जीवन का भोग विलास ऐश्वर्य और उच्च पदस्थता बिना कुछ कहे ही व्यंजित हो जाती है।

'डरी हुई कोयल दिखती है कौवे मुदित मगन दिखते, हीरे गुमसुम हैं खदान में, नकली स्वर्णाभूषण बिकते' तथा 'पारिजात की आशा रखते नागफनी के बीच' जैसे प्रतीकों का अर्थ समझने में किसी भी पाठक को असुविधा नहीं हो सकती।

'कागज की नाव' का प्रतीक भी ऐसा ही है जो आधुनिक लोक तंत्र की तथा-कथा स्वतः व्यक्त कर रहा है। इस नाव के सहारे जन तंत्र के महा सागर को पार नहीं किया जा सकता क्योंकि

इसे खेने वाला भी कागजी शेर है, कागज की ही नदी है और कागज की ही धारा है, सब कुछ कागजी है, स्थायित्व कुछ भी नहीं, आज कागजों पर ही सड़कें बन जाती है, कुंए तालाब और नहरें खुद जाती है, यहां तक कि इस देश में कागज पर ही साक्षरता की फसल भी लहलहा उठती है ।

जीवन की विषमता देखिए। एक ओर राजपथ हे और दूसरी ओर पगडंडी, दोनों में कोई समानता नहीं, आज लोक जीवन अभिशप्त है और वे अहो भाग्यशाली बन गए है इसलिए कवि अब लक्ष्य से नहीं राह से शिकायत कर रहा है, दृश्य को नहीं दृष्टि को ही दोषी मान रहा है । यह कैसी विडम्बना है कि आज देश का माली अर्थात् नेता, मंत्री और समाज सेवक, शासकीय कर्मचारी और अधिकारी अपने उपवन को पानी से नहीं कांटो से सींच रहे हैं। ये लोग कदम कदम पर देश की कब्रे खोद रहे हैं जिसके कारण आधुनिक जन जीवन संत्रस्त हे और कवि भी चिंतित है। सीधे सादे शब्दों में देश की दुर्दशा और विवशता का यह एक विराट रूपक भी देखिए –

पृथ्वी है असहाय हिरण सी,
आखेटक है आगे पीछे
मरूथल में बैचेन स्वप्न को
कौन आज पानी से सींचे

उपर्युक्त व्यंग्यों के बाद श्री पाण्डेय जी के नव गीतों में दो स्वर और प्रमुखता से दिखाई देते हैं। प्रथम है देश में खुशहाली लाने एवं नकाबपोशों को अनावृत करने की प्रतिबद्धता तथा दूसरा है युवा पीढ़ी की जन जागृति के लिएं संबोधन का।

बनो प्राचीर उसको लांघकर हम वहां आयेंगे
तिमिर तुम जहां बांटोगे, दीपक हम जलायेंगे और
जैसा तुम दिखोगे, वैसा मैं लिखूंगा
जैसा तुम करोगे, वैसा मैं कहूंगा

इन पंक्तियों में कवि की प्रतिबद्धता देखी जा सकती है और अधोलिखित पंक्तियों में कृतिकार के संबोधनों का स्वर भी देखिए –

पके नहीं, गिरकर क्यों बैठ गए,
चले नहीं, थककर क्यों बैठ गए और
तम के काले पृष्ठों पर ज्योति कथा
लिखने वाले तुम दीपक हो,

इन नव गीतों में 'जागो फिर एक बार' की अनुगूंज सुनाई दे रही है।

श्री पाण्डेय जी के कतिपय नव गीतों में ग्रामीण जीवन की सरलता, शुचिता, व्यस्तता और व्यथा के स्वर भी सुनाई देते हैं, वे देश में बढ़ने वाले प्रदूषण और वृक्षों की बेशुमार कटाई से भी दुखी है, कुछ गीतों में प्राकृतिक सौंदर्य के भी रमणीय दृश्य बिम्ब आपने प्रस्तुत किए हैं। मधु ऋतु और मेघों ने अपने विशेष रूप से अपनी ओर आकृष्ट किया है।

सामान्यतः त्रिभुवन पाण्डेय जी अपनी बातें प्राकृतिक प्रतीकों एवं उपमानों के माध्यम से ही करते हैं पर उनके प्रतीक सर्वथा नये, सरल और अर्थ गर्भित है अतः वे सहज की हृदयग्राही है। किन्तु उनके कुछ गीत ऐसे भी है जिनमें वे आधुनिक युग की विषमता का चित्रण सीधे सादे पर मार्मिक शब्दों में इस प्रकार करते हैं कि उनका ही नहीं सारे जन जीवन का दुख मुखर हो उठता है –

ए सी और गलीचा वाला कमरा उनके लिए सुरक्षित
टूटी बैंच अपाहिज कुर्सी, हम सबकी खातिर आरक्षित
बैठे रहना बरामदे में, किसे भला अच्छा लगता है?
हर पग पर अपमानित होना, किसे भला अच्छा लगता है

इस अभिधामूलक शैली के संदर्भ में कवि का कथन भी है कि आत्म व्यथा को उपमानों के माध्यम से लिखना वस्तुतः कठिन होता है बबूल को देखकर हरसिंगार का हंसना, बिकते उसूलों को देखकर हतप्रभ होना, पेट और पांव की बढ़ती हुई दूरिया और धूप और छांव के संबंध में जारी बातों में भी जीवन का यही संत्रास व्यक्त किया गया है पर प्रतीकों के आवरण ने उसे ढक लिया है, फलतः उनमें वह पैनापन नहीं दिखाई देता जो ए.सी. और गलीचा वाली बात में निहित है।

समग्रतः श्री पाण्डेय जी ने अपनी बात शब्दों पर पहरे के दिनों से प्रारंभ की थी पर पहरे का यह कुहरा उनके नव गीतों में बहुत कम दिखाई देता है और उनका चिंतन का माथा कहीं शरणागत मुद्रा में भी झुका नहीं है। उन्होंने अपने व्यंग्यों का उपवन, प्रतिष्ठान और अनुष्ठान सब कुछ सुरक्षित रखा है। उनके ये गीत उपवन में खिले हुए उन फूलों की तरह है जो पूर्णतः ताजगी से भरे पूरे है, जिन्हें अभी किसी ने अपने हाथ से स्पर्श तक नहीं किया है और जिनमें पुरानेपन की गंध भी नहीं है, यहां तक कि उनके प्रतीकों, अप्रस्तुतों, बिम्बों में एक भी पुनरूक्ति नहीं मिलती।

हिन्दी नवगीतों की धारा 'कागज की नाव' पाकर निःसंदेह समृद्ध हुई है। ऐसे रस सिद्ध और अनाघ्रत नवगीतों के सृजन के लिए पाण्डेय जी को मेरी हार्दिक बधाईयां।

●●●

एक दार्शनिक गीत संग्रह

नथमल झँवर

जीवन के यथार्थ को चित्रित करना गीत संग्रह "कागज की नाव" त्रिभुवन जी का द्वितीय गीत संग्रह है जिसे पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। हमारी जिंदगी एक कागज की नाव ही तो है, जिसे संसार रूपी नदी में अनवरत बहना है और अंत में समा जाना है उस अथाह जलराशि में जिसे सागर कहा जाता है। इस नाव की सार्थकता अपने लक्ष्य को पा लेने में ही है, उसमें समा जाने में ही है, उसमें विलीन हो जाने में ही है और ये तभी संभव है जब वह अपने नाम के स्वरूप हल्की बनी रहे, कोई व्यवधान उत्पन्न न हो, किसी आँधी या तूफान की चपेट में न आ जाए। बंधुपर ! क्या हम भी उस अथाह जल राशि में समाहित हो सकेंगे अथवा बीच मझधार में डूब जाएँगे, चौरासी लाख योनियों में फिर से भटकने के लिए? एक गुरूत्तर प्रश्न है हमारे सामने। गीतकार त्रिभुवन पाण्डेय जी ने यही प्रश्न रखा है हमारे आपके सबके सामने।

पंक्तियाँ देखे –

जीवन बहुत सरल है
जीना बहुत कठिन है

और तब गीतकार भी किं कर्तव्यविमूख हो जाता है, नहीं दे पाता इसका उत्तर। चूंकि मानवीय संवेदनाएं मर चुकी हैं, नहीं रहा स्नेह, सद्भाव, सामंजस्य एक दूजे में। कैसे आशा करें मंजिल हम पा सकेगें। उस परमपिता से साक्षात्कार कर पाएंगे। समहित कर सकेंगे। हम बूंद के सागर में। यही सोचकर व्यथित हो जाता है।

है गीतकार का मन –

पता नहीं क्यों आज रात भर

नींद नहीं आई
जाग रही थी साथ मेरे
बस मेरी परछाईं

क्षण भंगुर जीवन है, सभी जानते हैं। पलक झपकते बीत जाती है सारी उमरिया। और जब अंतिम क्षण आता है तब सोचते हैं, हम तो अपहुंचे ही रह गए। नहीं कर सके कुछ भी। नहीं जानते हम –

पता नहीं किसके खाते में
कितना शेष बचा है

धीरे धीरे उजड़ रहा है
अपना नंदन कानन

पल–पल घट रहा है कुछ। हम निश्चिंत हैं। उन्हीं के लिए गीतकार की ये पंक्तियाँ देखें –

दिशा हीन जो भटकें तम में
दीपक उनको राह दिखाना

ऐसे में जब मनुष्य अपने दायित्वों से बेखबर हो। नहीं कर रहा हो इस बात का चिंतन कि मानव तन ईश्वर ने आखिर दिया क्यों है। कवि का उदास हो जाना स्वाभाविक है।

और अधिक गहराता जाता मन का सूनापन

मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण है यह गीत संग्रह। जितनी गहरी संवेदना होगी जितना संवेदनशील होगा रचनाकार उसके शब्द उतनी ही अन्तस्थल की गहराईयों को छू सकेंगे। वैसे तो त्रिभुवन जी हास्य व्यंग्य के जाने माने हस्ताक्षर हैं। ख्याति नाम व्यंग्यकार हैं ये

परन्तु 'सुनो सूत्रधार' के बाद "कागज की नाव" ने उन्हें एक उत्कृष्ट गीतकार के रूप में स्थापित कर दिया। "सूनो सूत्रधार" को न जाने कितनी बार पढ़ा। "कागज की नाव" ने मुझे दर्शन का दर्शन करा दिया।

गीतकार ने व्यक्ति के केवल मर्म को ही नहीं छुआ है। उसने प्रकृति का भी सुन्दरतम दृश्य उपस्थिति कर दिया है –

पता नहीं सूरज ने क्या कहा
संध्या के गाल हुए लाल

0

कहीं–कहीं उन्हें अपने पिछड़जाने की पीड़ा भी है। आज का युग साम, दाम, दण्ड, भेद का युग है। सीधा साधा सरल व्यक्ति का पीछे हो जाना स्वाभाविक है –

हम मुक्तक ही रहे
वे महाकाव्य हो गए।

गीतकार ने वर्तमान के फैशन, आचार व्यवहार, संस्कृति पर एक करारा व्यंग्य किया है। आज जो नव युवतियों में टॉप लेस बाटम लेस की होड़ चल रही है उस पर गीतकार का दिया निर्देश देखिए –

मत झाँको टहनी के बाहर
पता नहीं कब कोई तोड़ ले

हम चाहते हैं सदैव हँसते रहे, मुस्काते रहें पर आज का वातावरण देखकर हम क्षुब्ध हो जाते हैं, चाहकर भी उन्मुक्त, प्रसन्न नहीं हो पाते। पाण्डेय जी के शब्द –

बहुत कठिन है हर क्षण सब कुछ
मुस्कानों से लिखना

0

"कागज की नाव" पढ़कर पाठक निसंदेह एक यथार्थ की दुनिया में चले जाएगा। परिचित हो जाएगा वह वास्तविकता से, जीवन की सच्चाईयों से, रिश्ते नातों से। परिचित हो जाएगा आदर्शों से परिचित हो जाएगा जीवन के दर्शन से। बस आवश्यकता है इसे तन्मयता से पढ़ने की, आत्मसात करने की, महसूस करने की। और तब महसूस होगा आपको एक एहसास, प्यार का स्नेह का, आत्मीयता का।

ऐसी कृति कालजयी कृति की श्रेणी में आती है। साधु वाद है इस हेतु श्री त्रिभुवन पाण्डेय जी को।

●●●

व्यंग्य विमर्श :
त्रिभुवन पाण्डेय

व्यंग्य विमर्श : त्रिभुवन पाण्डेय

व्यंग्य का सामाजिक सरोकार

त्रिभुवन पाण्डेय

'व्यंग्य' मनुष्य के भीतर पाई जाने वाली स्वाभाविक प्रवृत्ति है। वह जिस सहजभाव से प्रेम करता है, उसी सहज भाव से घृणा करता है। जिन लोगों तथा जीवन मूल्यों से वह प्रेम करता है उसकी अभिवृद्धि करता है तथा उसे संरक्षित रखने के लिये हर संभव प्रयास करता है। उसके विपरीत जिन लोगों तथा जीवन मूल्यों से घृणा करता है, उसे वह जीवन से हटाना चाहता है। सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन में हजारों प्रकार की असंगतियाँ उभरती रहती हे इसलिये उन पर नियंत्रण रखने वाली दृष्टि भी दो चार नहीं अशेष होनी चाहिए। जीवन को श्रेष्ठ तथा सुसंस्कृत स्वरूप देने की शक्ति किसी एक व्यक्ति में नहीं होती। इतिहास में यह चमत्कार कभी-कभी ही संभव होता है कि एक व्यक्ति सम्पूर्ण समाज की विकृतियों को हटाकर उसे श्रेष्ठ जीवनमूल्यों के आभूषित कर देता है वरना यह दायित्व सबको मिलकर बांटना पड़ता है।

सामान्य व्यक्ति में निंदा और 'व्यंग्य' में फर्क करने का साम्‍र्थ्य नहीं होता इसीलिये उसकी निंदा में वह शक्ति नहीं होती जो दूसरे को परिवर्तित कर दे। वह अपनी घृणा को उसके विशुध्द रूप में जाहिर कर देता है। वह नहीं जानता कि सत्य बोलना ही जरूरी नही है, प्रिय सत्य बोलना जरूरी है"। सामान्य व्यक्ति का 'व्यंग्य बोध' गहरे आलोचक का बोध होता है। आलोचना भी इतना कटु कि सुनने वाला तिलमिला उठे और बदले में मरने मारने पर उतारू हो जाय। व्यंग्य घृणा को अभिव्यक्त करने की कला है। यह मानवीय करूणा, सदाशयता तथा सहानुभूति से पूर्ण है। यहां नफरत अपराधी से नहीं, अपराध की प्रकृति से है। घृणा व्यक्ति से नहीं उन

परिस्थितियों से है जो मनुष्य के श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को छीनकर उसे विकृत जीवन मूल्यों की ओर खींच ले जाती है । 'व्यंग्य' बेहद विवेकशील, न्यायबुध्दि तथा निरपेक्ष हृदय की अभिव्यक्ति है । जिसमें थोड़ा भी पूर्वाग्रह है, वैयक्तिक राग-द्वेष है, निजी स्वार्थ है, संकीर्णता है वह और चाहे जो हो श्रेष्ठ व्यंग्यकार नहीं हो सकता ।

जहाँ तक व्यंग्य के सामाजिक सरोकार का सवाल है, साहित्य की श्रेष्ठ विधाओं से उसकी स्थिति भिन्न है । व्यंग्य के सामने आत्म केन्द्रित या अमूर्त होने जैसा कोई संकट कभी उपस्थित नहीं हुआ । हिन्दी व्यंग्य की नींव ही इतनी पुखता पड़ी कि उस पर निर्मित होने वाला व्यंग्य साहित्य का भवन भी उतना ही मजबूत और भव्य दिखलाई पड़ता है । भारतेन्दु, हरिशचंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा बाबू गुलाबराय जैसे श्रेष्ठ रचनाकारों ने हिन्दी व्यंग्य की आधारशिला रखी । उन्होंने व्यंग्य को वैयक्तिक अधिरंचना से निकालकर समाजिक यथार्थ की भूमि पर खड़ा कर दिया । व्यंग्य की जो दृष्टि व्यक्तिगत विकृतियों तथा चरित्रगत कमजोरियों तक ही सीमित थी वह कुछ और व्यापक हुई । ब्रिटीश सरकार से लेकर समकालीन समाज में मौजूद रूढ़ियों, जर्जर परम्पराओं, राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति उपेक्षा बरतने वाली चेष्टाओं की जमकर खबर ली गयी । शिल्प और कथा दोनों ही भावी व्यंग्यकारों के लिये पथप्रदर्शक बन गये ।

कभी-कभी व्यंग्य आत्मकेन्द्रित भी होता है लेकिन तब व्यंग्कार स्वतः को समाज के एक प्रतिनिधि चरित्र के रूप में तब्दील कर लेता है । वह अपनी कमजोरियों, लालसाओं और आवश्यकताओं पर दृष्टि केन्द्रित कर समाज की कमजोरियों लालसाओं और त्रुटियों को जानने की कोशिश करता है । वह अपने भीतर पैठकर समाज को देखता है । जो बुराई या कमजोरी उसे अपने भीतर मिलती है । उन पर व्यंग्य कसने से नहीं चूकता । वह

जीवन नौका को नियति के समुद्र में डालकर यह नहीं कह सकता 'ले चल मुझे बुलावा देकर मेरे नाविक धीरे–धीरे' वह नियति से ज्यादा मनुष्य के कर्म और उसे परिचलित करने वाली शक्तियों पर विश्वास करना है। उसकी इसी भूमिका को दृष्टि में रखकर 'मेरीडिथ' ने कहा–व्यंग्यकार एक समाजिक ठेकेदार होता है, बहुधा वह एक समाजिक सफाई करने वाला है जिसका काम गन्दगी के ढेर को साफ करना है।

आज भारतीय समाज की जो स्थिति है उसे देखकर चेखव के रूस की याद आती है। चेखव ने उन्नीसवी शताब्दी के आखिरी दशक में जो रचनाएं लिखी वें श्रेष्ठतम व्यंग्य कहानियों कही जा सकती है। अकेले चेखव की रंचनाओं को पढ़कर समकालीन रूसी समाज को जाना जा सकता है। 'गिरगिट' का दरोगा आचुमेलोव आज भारत में पाया जाता है। 'ब्रुकिन' को काटने वाला कुत्ता आचुमेलोव को तब तक लावारिस पिल्ला जान पड़ता है जब तक उसे यह जानकारी नहीं मिल जाती कि 'ग्रे हाइंड' नस्ल का वह कुत्ता जनरल जिमालोव के भाई का है। जानकारी मिलते ही दारोगा आचुमेलोव की दृष्टि बदल जाती है। वह कुत्ते को उठाकर गोद में ले लेता है। उसे प्यार करता है और खुक्रिन को यह कहकर भगा देता है कि जनरल के घर का कुत्ता कभी ऐसे ओछी हरकत नहीं कर सकता। क्या भारतीय समाज में यह स्थिति दिखलाई नहीं पड़ती। चेखव की ही एक दूसरी कहानी 'नकाब'। एक सामाजिक संस्था के सहायतार्थ नृत्य का आयोजन किया जाता है जिसमें उस नगर का करोड़पति इज्जतदार नागरिक प्यातिगोरोव भी सम्मिलित होता है। नृत्य के दौरान वह एक युवती के साथ वाचनालय में चला जाता है जहाँ वह बुद्धिजीवियों से अभद्र व्यवहार करता है। बुद्धिजीवी जेस्त्याकोब पुलिस अधिकारी को बुला लेता है। पहले तो पुलिस अधिकारी मेवजात नाराज होता है लेकिन जब करोड़पति प्यातिगोरोव नकाब उतार फेंकता है तो वह क्षमा मांगने लगता है।

बुद्धिजीवी भी उससे क्षमा मांगते हैं और नशे में लड़खड़ाते हुए करोड़पति प्यातिगोरोव को बाहर खड़ी घोड़ागाड़ी तक पहुंचाते हैं। रूस का जो समाज कल था वह भारत में आज है। व्यंग्य यदि पूरी सामाजिक चेतना के साथ लिखा जाय तो उसमें विश्वसमाज प्रतिबिंबित होने लगता है।

क्या हम मर्चेन्ट ऑफ वेनिस के शाइलॉक को भूल सकते हैं? सूद पर लेनदेन करने वाले लोगों की निर्ममता का जैसा सजीव चित्रण शेक्सपीयर ने किया है वह अद्वितीय है। टॉल्स्टाय की व्यंग्य रचना 'मनुष्य को ... कितनी जमीन चाहिये' मनुष्य की असीमित आकांक्षा और उसकी करूण परिणति पर मार्मिक व्यंग्य है। बर्नार्ड शॉ का वह सैनिक युवक नहीं भूलता जो 'आर्म्स एण्ड द मेन' में लड़ने के लिये तैयार होते समय अपने पेंट की जेब में गोलियों की जगह ब्रेड और चाकलेट भर लेता है। मित्र उसका मजाक उड़ाते हैं। वह कोई जवाब नहीं देता। बाद में उनकी टुकड़ी चारों ओर से घिर जाती हे। खाने की सामग्री समाप्त हो जाती है। लोग भूखों मरने लगते हैं। वह युवक मजे में रहता है। लोग तब महसूस करते हैं भूख गोली से नहीं मिटती भोजन से मिटती है।

हिन्दी व्यंग्य को जिस व्यक्ति ने विश्व व्यंग्य साहित्य के समानान्तर खड़ाकर दिया हास्य और विद्रूपता के दायरे से निकालकर उसे सामाजिक चेतना का प्रतिनिधि बनाया, समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा मानवीय असंगतियों की अभिव्यक्ति के लिये सक्षम बनाया, हिन्दी व्यंग्य साहित्य अपने उस निर्माता का सदैव ऋणी रहेगा। जिस तरह चेखव ने समकालीन रूस का यथा रूप चित्रण किया उसी तरह हरिशंकर परसाई ने भारतीय समाज का यथावत चित्रण किया। उनकी व्यंग्य रचनाओं में भारतीय समाज का हर एंगल से लिया गया चित्र मौजूद है। उन्होंने व्यंग्य की रचना प्रक्रिया तथा उसके सामाजिक दायित्व को लेकर बड़ी गंभीरता के साथ विचार किया है। 'व्यंग्य' पर समसामयिकता का जो आरोप

लगाया जाता है परसाई जो ने जवाबी हमला करते हुए लिखा – मैं शाश्वत साहित्य रचने का संकल्प करके लिखने नहीं बैठता। जो अपने युग के प्रति ईमानदार नहीं होता वह अनंतकाल के प्रति कैसे हो लेता है मेरी समझ से परे है। उन्होंने व्यंग्य की प्रहार क्षमता को निरन्तर बनाये रखने पर बल दिया है। वे मानते हैं कि चट्टान सी बुराई पर अगर कोई सुनार के हथौड़े से प्रहार करे तो यह उसकी नासमझी ही कही जायेगी। चट्टान पर तो लुहार के धन का भरपूर हाथ ही पड़ना चाहिये।

परसाई जी का व्यंग्य साहित्य विशाल है। उन्होंने हर स्थिति और अवसर पर भी लिखा है। भोलाराम का जीव, लंका विजय के बाद, सुदामा के चाँवल, अकालोत्सव चूहा और मैं जैसी सैकड़ो रचनाएं भारतीय समाज को उसकी सम्पूर्णता में जानने समझने का प्रयास करती है। उन्होंने सत्य को प्रिय सत्य का रूप देने का यथासंभव प्रयास किया है लेकिन जब कभी स्थिति की माँग हुई उन्होंने निर्मम और बेबाक सत्य लिखा वे इस मामले में कबीरपंथ की सत्य की जलती हुए लुकाठी सदैव साथ लेकर चलते हैं। परसाई के होते हुए किसी झूठ में यह हिम्मत नहीं कि वह चैन से बैठ चुके। मुखौटों से उन्हें चिढ़ है। वे मनुष्य को उसके वास्तविक रूप में देखना तथा जानना चाहते हैं। उनमें व्यंग्य की प्रकृति ओढ़ी हुए नहीं है। उनके व्यंग्य उनके जीवन तथा व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है।

आजादी के बाद भारतीय समाज में आस्था के विपरीत तेजी से गिरावट आती गयी। स्वाधीनता आंदोलन के साथ पलने वाली समाज सुधार की चेष्टा कमजोर पड़ती गयी। श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिये जो उत्साह तथा वातावरण निर्मित हुआ वह धीरे–धीरे ठंडा पड़ता गया। जो चीजें अजादी पाने के रास्ते में व्यवधान मानकर हटा दी गयी थी वे वापस स्थापित होने लगी। भारतीय भाषा तथा मानवीय भूषा के प्रति जो लगाव पैदा हुआ था वह ओझल होने लगा। विदेशी भाषा, विदेशी भूषा, विदेशी आचार

तथा विदेशी विचार के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा। राष्ट्रीयता के बदले अपने दलीय तथा वर्गहित उभर आये। समाजहित का स्थान व्यक्ति हित ने ले लिया। जिस देश के लोगों को बड़ी मुश्किल से राष्ट्रीयता के ध्वज के नीचे एकत्र किया गया था वे फिर विभाजित होने लगे। भाषा, सम्प्रदाय, जाति, वर्ग राजनीति सबने इस विभाजन को उकसाने में मदद की। धार्मिक रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियाँ, मूल्यहीनता जैसी अनेक घातक प्रकृतियों ने भारतीय समाज को अपने दायरे में समेटना प्रारंभ किया। आजादी के पहले जैसी मूल्य हीनता नहीं थी वैसी मूल्यहीनता आज समाज में दिखलायी पड़ रही है।

आज व्यंग्यकारों पर अपेक्षाकृत अधिक बड़ा दायित्व है। सामाजिक जटिलताओं को समझने के लिये आज ज्यादा कुशाग्र बुद्धि की जरूरत है। आज शोषण का रूप भी विश्वव्यापी हो चुका है। विकृतियों की एक अंतहीन श्रृंखला निर्मित होती चली गई है। जिसका आखिरी छोर किन अदृश्य हाथों में है यह समझना तथा उसे अन्वेषित करना काफी प्रयत्न साध्य कार्य है आज सामार्जिक विकृतियों ज्यादा बेजाक रूप में मौजूद है। जो भ्रष्ट है उन्हें इस बात का कोई दुख भी नहीं है। कि वे देश को किस कदर खोखला कर रहे हैं। चरित्रहीन व्यक्तियों की समाज में प्रतिष्ठा है। दहेज के लिये बहुओं को आग में झोंका जा रहा है। समाज में जो गलत हो रहा है उसके विरोध का किसी में साहस नहीं है। पेड़ों और दीवारों पर अश्लील चित्र ऐसे टंगे हैं मानो हमारे पास दिखाने के लिये इससे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं बचा है। सब अपने अपने घरों में बैठकर आश्वस्त है कि आग अभी उनके घर तक पहुंची नहीं है जबकि वह आग दावाग्नि की तरह जीवन को निगलती तेजी के साथ हमारी ओर बढ़ी चली आ रही है। मानवीय संबंधों को आर्थिक अभाव का दैत्य जर्जर बना रहा है। अट्टालिकाएं ऊंची होती जा रही है लेकिन उसमें रहने वाले लोग बौने होते जा रहे हैं। मैथिली भाषा के प्रसिध्द

व्यंग्यकार हरिमोहन झा ने वर्तमान समाज के इस विद्रुप होते हुए रूप को कितने सहज रूप से अभिव्यत किया है अजी, संस्कृत को अंग्रेजी खा गयी, संवत को ईस्वी खा गयी, मंदिर को क्लब खा गया, धर्मशाला को होटल खा गया, रामलीला को सिनेमा खा गया, सेर को किलो खा गया, मन को क्विंटल खा गया, गुरूकुल को कान्वेंट खा गया, पिता को पापा खा गया, माता को मम्मी खा गयी, भोज को पार्टी खा गई प्रणाम को टाटा खा गया।

समकालीन व्यंग्यकार इस बढ़ती हुए मूल्यहीनता की स्थिति का सामना किस प्रकार करेंगे यह तो भविष्य बतायेगा लेकिन आज उनकी रचनाओं को पढ़ते हुए आश्वस्त हुआ जा सकता है कि उन्हें अपने दायित्व की जानकारी है। वे समकालीन समाज के संकट से पूरी तरह भले ही वाकिफ न हो लेकिन 'यथासंभव' उसे जानने के प्रयास में संलग्न है। व्यंग्य लेखन एक ऐसा सामाजिक दायित्व है जिसे समाज ने अपने हितों के संरक्षण के लिये व्यंग्यकारों को सौंपा है। जिस तरह रोगी अपने चिकित्सक को आपरेशन की अनुमति सहर्ष दे देता है क्योंकि वह जानता है कि शल्यचिकित्सा से उसे नया जीवन प्राप्त होगा, व्यंग्यकारों की भी ठीक यही स्थिति है। रही छद्म व्यंग्य लेखकों की बात तो 'नीम हकीम' आखिर कहाँ नहीं पाये जाते ?

●●●

व्यंग्य के आलोचना शास्त्र की खोज

त्रिभुवन पाण्डेय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखते हुए कृपापूर्वक पृष्ठ 522 एवं 523 में हास्य--व्यंग्य का स्मरण करते हुए लिखा – 'यह बात कहनी पड़ती है कि शिष्ट और परिष्कृत हास का जैसा सुंदर विकास पाश्चात्य साहित्य में हुआ है वैसा अपने यहां अभी देखने में नहीं आ रहा है । हास्य का स्वरूप बहुत ठीक सिद्धांत पर प्रतिष्ठित होने पर भी अभी तक उसका ऐसा विस्तृत विकास हमारे साहित्य में नहीं हुआ है जो जीवन के अनेक क्षेत्रों से जैसे – राजनीतिक, धार्मिक, व्यवसायिक आलंबन ले लेकर खड़ा करें ।' सन् 1929 में जब आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह निष्कर्ष सामने आया तब तक भारतेन्दु हरिशचन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, गुलाबराय, जी.पी. श्रीवास्तव और अन्नपूर्णानंद जैसे लेखकों का बहुचर्चित और बहुप्रतिष्ठित हास्य--व्यंग्य प्रकाशित हो चुका था । संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखते हुए बलदेव उपाध्याय ने हास्य के महत्व को 'प्रहसन' के संदर्भ में इन शब्दों में उल्लेखित किया – 'हास्य की लेखनी तलवार से भी अधिक जोरदार हथियार है जिसका आघात तो बाहर से दिखलाई नहीं पड़ता परन्तु उसकी चोट भीतर से मर्म को बद्ध करती है और अपने अभीष्ट की सिद्धि में सफल होती है ।'

इनसाइक्लोपीडिया में सातवीं शताब्दी के रोमन व्यंग्य की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए जुएनल ने लिखा – vicionsness and corrouption so dominate Roman life that for an honest man it is difficult not to write satire.

आस्ट्रियन व्यंग्यकार कार्ल के रूस का कथन भी महत्वपूर्ण है कि - Satire which the censor under stands deserves to be banned. इनसाइक्लोपीडिया में हास्य व्यंग्य के कुछ उदाहरण भी दिये हुए हैं। एक अंग्रेज महिला से जब उसके दिवंगत पति के विषय में पड़ोसी ने पूछा तो महिला ने कहा – मुझे विश्वास है कि मेरे दिवंगत पति को स्वर्ग में सभी सुख प्राप्त होगा लेकिन मेरा निवेदन है कि भविष्य में कृपया ऐसे अप्रिय विषय पर बात न किया करें।

हास्य के विषय में वर्गसाँ का कथन – 'हास्य इस प्रकार का होना चाहये जिसमें सामाजिक की झलक हो। वह मनुष्य को सदैव अपने पारस्परिक आदान–प्रदान के निम्नस्तरीय कार्य़ों के प्रति सचेत रखता है। थेकरे के अनुसार – हास्य प्रिय लेखक आप में प्रीति अनुकम्पा एवं कृपा के भावों को जागृत करता है। असत्य, दम्भ तथा कृत्रिमता के प्रति घृणा और कमजोरों, दरिद्रों, दलितों और दुखी व्यक्तियों के प्रति कोमल भावों के उदय में सहायक होता है। जी.पी. श्रीवास्तव का कथन – बुराई रूपी पापों के लिये इससे बढ़कर कोई दूसरा गंगाजल नहीं है। यह वह हथियार है जो बड़ों बड़ों के मिजाज को ठीक कर देता है। ड्राइडन ने हास्य की आवश्यकता को अपरिहार्य मानते हुए कहा – निरन्तर गम्भीरता, मस्तिष्क को आक्रान्त किये रहती है। हमें अपने मस्तिष्क को कभी कभी उसी तरह स्वस्थ तथा सजीव बना लेना चाहिये जिस प्रकार चलते हुए मार्ग में विश्राम करना।' व्यंग्यकार की भूमिका पर पाश्चात्य समीक्षक होर्स का कथन – I am not a prosecutior and I do not like to give pain, if i laugh at the nonsense i see about one, I am not motivated by malice, the stirist, verse and prose he implies should reflect this attitude, it should be easy and unpretantious sharp when neccessary but therible enough to very

from grave to gay. तथा अलेक्जेंडर पोप का कथन –
Yes i am proud, i must be proud to see
man not afraid of God, afraid of me
safe from the bar the pulpit and the throne
yet touched and shamed by ridicule alone
o, sacred weapon left for truths defence
sole dread of folly, vice and insofarance

'एपिलाग टू द सटायर' शीर्षक यह कविता व्यंग्य के बहु आयामी एवं बहुप्रभावी व्यक्तित्व पर विस्तार से प्रकाश डालती है – 'मुझे व्यंग्य पर गर्व है क्योंकि जो व्यक्ति ईश्वर, कानून, धर्मोपदेशक और सत्ता से भी नहीं डरता वह व्यंग्य से डरता है। व्यंग्य से ही वह लज्जा अनुभव करता है। यह एक पवित्र अस्त्र है जिसे सत्य की रक्षा के लिये निर्मित किया गया है। व्यंग्य के कारण ही व्यक्ति दुष्कर्म करते हुए डरता है।

'व्यंग्य' मनुष्य के भीतर पाई जाने वाली स्वाभाविक प्रवृत्ति है। वह जिस सहजभाव से प्रेम करता है, उसी सहज भाव से घृणा करता है। जिन लोगों तथा जीवन मूल्यों से वह प्रेम करता है उसकी अभिवृद्धि करता है तथा उसे संरक्षित रखने के लिये हर संभव प्रयास करता है। उसके विपरीत जिन लोगों तथा जीवन मूल्यों से घृणा करता है, उसे वह जीवन से हटाना चाहता है। सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन में हजारों प्रकार की असंगतियाँ उभरती रहती हे इसलिये उन पर नियंत्रण रखने वाली दृष्टि भी दो चार नहीं अशेष होनी चाहिए। जीवन को श्रेष्ठ तथा सुसंस्कृत स्वास्थ्य देने की शक्ति किसी एक व्यक्ति में नहीं होती। इतिहास में यह चमत्कार कभी-कभी ही संभव होता है कि एक व्यक्ति सम्पूर्ण समाज की विकृतियों को हटाकर उसे श्रेष्ठ जीवनमूल्यों से आभूषित कर देता हैं वरना यह दायित्व सबको मिलकर बांटना पड़ता है।

सामान्य व्यक्ति में 'व्यंग्य' में फर्क करने और निंदा का सामर्थ्य नहीं होता इसीलिये उसकी निंदा में वह शक्ति नहीं होती जो दूसरे को परिवर्तित कर दे। वह अपनी घृणा को उसके विशुद्ध रूप में जाहिर कर देता है। वह नहीं जानता कि सत्य बोलना ही जरूरी नहीं है, प्रिय सत्य बोलना जरूरी है। सामान्य व्यक्ति का 'व्यंग्य बोध' गहरे आलोचक का बोध होता है। आलोचना भी इतना कटु कि सुनने वाला किलबिला उठे और बदले में मरने मारने पर उतारू हो जाय। व्यंग्य घृणा को अभिव्यत करने की कला है। यह मानवीय करूणा, सदाशयता तथा सहानुभूति से पूर्ण है। यहां नफरत अपराधी से नहीं, अपराध की प्रकृति से है। घृणा व्यक्ति से नहीं उन परिस्थितियों से है जो मनुष्य के श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को छीनकर उसे विकृत जीवन मूल्यों की ओर खींच ले जाती है। 'व्यंग्य' बेहद विवेकशील, न्यायबुध्दि तथा निरपेक्ष हृदय की अभिव्यक्ति है। जिसमें थोड़ा भी पूर्वाग्रह है, वैयक्तिक राग-द्वेष है, निजी स्वार्थ है, संकीर्णता है वह और चाहे जो हो श्रेष्ठ व्यंग्यकार नहीं हो सकता।

व्यंग्य के आलोचना शास्त्र पर इसलिये विचार किया जाना जरूरी है क्योंकि व्यंग्य के मूल्यांकन के संदर्भ में अभी तक कोई विशिष्ट धारणा (विधा सम्मत) निर्धारित नहीं हुई है। हरिशंकर परसाई का परिचय देते हुए उनके एक परिचित ने कहा था - ही राइट्स फनी थिंग्स। यथासंभव के विमोचन के अवसर पर शरद जोशी ने कहा था - 'व्यंग्य साहित्य के मूल्यांकन के लिये समीक्षात्मक शब्दावली हमारे पास नहीं है। आये गये अंदाज़ में तीखा, पैना, चुटीला जैसे शब्दों का इस्तेमाल कर काम चला लिया जाता है। यह स्थिति तब है जब व्यंग्य का आलोचना शास्त्र आचार्य भरत के समय से निर्मित होता आ रहा है। आगे चलकर आचार्य कुंतक और आनंदवर्द्धन ने इस पर पूरी गंभीरता से विचार किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर वर्तमान तक 'व्यंग्य' पर बराबर विचार होता

रहा। विश्लेषण होता रहा। इसकी संभावनाओं और स्वरूप गत विशेषताओं को समझने का प्रयास होता रहा। वस्तुतः व्यंग्य का आलोचना शास्त्र तो उपलब्ध है लेकिन 'व्यग्य' के प्रति पूर्वाग्रह होने के कारण कभी इसके रचना पक्ष का मूल्यांकन गंभीरता पूर्वक नहीं किया गया। व्यंग्यकारों के विषय में यह मान लिया गया 'दे राइट फनी थिंग्स'। वे मनोविनोद के लिये लिखते हैं। पापुलर राइटिंग करते हैं। शरद जोशी ने व्यंग्य के प्रति ऐसी ही फतवेबाजी का विरोध करते हुए लिखा – पिछले वर्षों व्यंग्य ने अपनी सार्थक भूमिका निभाई है। जब आम पाठक को गुलशन नंदा के भरोसे छोड़ हिन्दी का साहित्यकार अपना खूबसूरत चेहरा ढांके था तब वह बदशकल कमजोर व्यंग्य सफलता–असफलता, सार्थकता–निरर्थकता, यश–अपयश की सारी जोखिम से खेलता, जूझता, गिरता उठता खुद को और अपनी दुनिया का समझने की कोशिश में अपने को दुरूस्त और बेहतर करने में लगा था।'

हास्य व्यंग्य की रचना यात्रा विदूषक का धीरे–धीरे क्षत्रिय रूप धारण करने तथा हास्य साहित्य का धीरे–धीरे प्रतिरोधी शक्ति में परिवर्तित होने की शिल्प–यात्रा है। मजे की बात यह है कि विदूषक का स्वरूप बदलकर योद्धा का हो चुका लेकिन व्यंग्य को देखने की विदूषकीय दृष्टि नहीं बदली। आज भी वे व्यंग्य को उसी तरह विदूषक मानते हैं जैसा वह भारतेन्दु पूर्व साहित्य में विद्यमान था। भारतेन्दु से लेकर आज तक जो इसमें परिवर्तन आया उस पर उनकी दृष्टि नहीं गई। यदि वे व्यंग्य की सम्पूर्ण विकास यात्रा को सतर्क दृष्टि से देखते, उसका अध्ययन–मनन करते तो उन्हें यह कहने का साहस नहीं होता – दे राइट फनी थिंग्स। तब वे भी नामवरसिंह की तरह पूरी दृढ़ता के साथ कह सकते – 'यदि स्वतंत्रता के बाद पचास वर्षों के भारतीय जीवन को प्रमाणिक रूप से जानना हो तो हरिशंकर परसाई का साहित्य पढ़ लेना यथेष्ट है।' व्यंग्य के योगदान की इससे बढ़कर और क्या उपलब्धि हो सकती है।

हरिशंकर परसाई ने जब व्यंग्य को 'स्पिरिट' कहा तभी से लेकर अब तक भारत की प्रादेशिक भाषाओं को छोड़कर सिर्फ हिन्दी में इस समय पचास व्यंग्यकार पूरी गंभीरता से व्यंग्य लिख रहे हैं। अब व्यंग्य स्पिरिट नहीं विधा है। डॉ. श्यामसुंदर घोष का इस संदर्भ में कथन है 'व्यंग्य को विधा के रूप में स्वीकृति मिले अरसा हो गया। अब व्यंग्य का कोई जानकार यह सवाल नहीं उठाता कि व्यंग्य विधा है या नहीं। जब व्यंग्य रचना में अंतर्वस्तु के रूप में हुआ करता था तब उसे किसी खास विधा के अंतर्गत माना जाता था जैसे कविता में व्यंग्य है तो व्यंग्य–कविता, कहानी में व्यंग्य हो तो व्यंग्य कहानी। पहले के कुछ लेखक व्यंग्य 'भी' लिखते थे। अब व्यंग्य किसी विधा की अन्तर्वस्तु न रहकर उसका मूल कलेवर बन गया है। ऐसी दशा में उसे विधा होना ही था। इस संदर्भ में डॉ. शंकर पुणतांबेकर का कथन है – 'किसी विधा की स्थापना में उसका अपना अनुशासन और शिल्प होता है जो एक का दूसरे पर नहीं चलता। उपन्यास का कहानी पर नहीं, नाटक का एकांकी पर नहीं, निबंध का एकांकी या नाटक पर नहीं। यही बात व्यंग्य पर लागू होती है व्यंग्य का अपना तन–प्राण है। इसे न समझ पाने के कारण ही व्यंग्य को मात्र किसी विधा का विशेषण मान लिया जाता है जबकि वह स्वंय संज्ञा है एक विधा की।' सुरेश उपाध्याय ने व्यंग्य को मात्र स्पिरिट या आत्मतत्व के रूप में स्वीकृति को अपर्याप्त मानते हुए काफी जोर देकर कहा है – 'जब आप कविता, कहानी, नाटक और निबंध को विधा या साहित्य का एक अंग निरूपित कर सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि आप व्यंग्य को भी साहित्य का एक विशेष अंग या विधा मानने से इनकार करें क्योंकि व्यंग्य इन सबमें विशिष्ट, बेजोड़, वजनदार, और असरकारी है और आज के युग की तमाम साहित्यिक कृतियों को भी हमें मजबूरी में ही सही मगर केंसिल करना पड़े।' नरेन्द्र कोहली का निष्कर्ष है – 'मेरा विचार है कि हमें अब मान ही लेना चाहिये कि विधाओं की संख्या

निश्चित नहीं है । नई विधाओं का जन्म तो होता ही है, कई बार पुरानी शैलियां भी अपना विकास कर पूर्ण विधाओं के रूप में परिणत हो जाती है।' इस संदर्भ में प्रेम जनमेजय ने सचेत करते हुए लिखा – 'व्यंग्य को सही रूप से परखने के लिए आवश्यक है कि उसे हास्य से अलग करके देखा जाए। उसकी प्रकृति और चरित्र को सूक्ष्मता से समझा जाए एवं उस पर चालू, सतही फिकरेबाजी करने से बचा जाए। अन्यथा हम व्यंग्य नाम की माला जपने का कर्मकाण्ड तो करते रह जाएंगे उसके गहरे अभिप्राय तक नहीं पहुंचा पाएंगे। व्यंग्य के महत्व को रेखांकित करने वाला विनोद साव का का यह कथन भी महत्वपूर्ण है – 'आजादी के पहले प्रेमचंद अपने में संपूर्ण लेखक थे तो आजादी के बाद सबसे महत्वपूर्ण लेखक हरिशंकर परसाई । उसी तरह आजादी के पहले सबसे लोकप्रिय महाकाव्यात्मक उपन्यास प्रेमचन्द का 'गोदान' था तो आजादी के बाद का सबसे लोकप्रिय महाकाव्यात्मक उपन्यास श्रीलाल शुक्ल का 'रागदरबारी' है। यह व्यंग्य साहित्य की एक बड़ी उपलब्धि है।'

हरिशंकर परसाई से ज्ञानरंजन ने एक बार पूछा था – 'आपके नाम के साथ व्यंग्य–शिल्पी व्यंग्यकार जैसे शब्द जुड़ गये हैं अर्थात आपका व्यक्तित्व मूल रूप में, या कहें केवल व्यंग्य लेखक का मान लिया गया है । आपने व्यंग्य माध्यम ही अभिव्यक्ति के लिये क्यों चुना उत्तर में परसाई जी ने कहा था – मैने यह तय करके लिखना शुरू नहीं किया कि व्यंग्य नाम की चीज ही लिखूंगा। वास्तव में हर लेखक जीवन की खोज और समीक्षा करता है और जीवन से साक्षात्कार करता है। मैने वही लिखा है जो दूसरे लेखकों ने दूसरे ढंग से लिखा है पर कुछ तो मेरी मानसिक प्रवृत्ति और चेतना तथा सामाजिक जीवन के प्रति मेरी प्रतिबद्धता थी जिसके कारण मैने विसंगतियों, विकृतियों, अन्याय, शोषण, पाखंड, दोमुहापन, ढोंग इत्यादि को पकड़ा। इस पर लेख भी लिखा जा सकता है या अखबारी टिप्पणी भी। पर एक रचनाकार के नाते इन्हें अभिव्यत करने के लिए मुझे व्यंग्य का माध्यम अनुकूल पड़ा।'

सारांश यह कि जिस तरह संवाद के प्रयोग के कारण किसी उपन्यास या कहानी को नाटक नहीं कहा जा सकता, कथा होने से किसी महाकाव्य को उपन्यास नहीं कहा जा सकता उसी तरह व्यंग्य की आंशिक उपस्थिति से किसी रचना को व्यंग्य नहीं कहा जा सकता। व्यंग्यकार व्यंग्य का प्रयोग 'केजुअल' रूप में नहीं करता। व्यंग्य उसकी जीवन दृष्टि में समाहित होकर उसे विसंगतियों को देखने की ऐसी अपूर्व दृष्टि देता है जिसे अभिव्यत करते हुए वह विशेष भाषा कौशल, अभिव्यंजना शैली और अभिव्यक्ति की ऐसी नवीन भंगिमा प्राप्त कर लेता है जिससे पाठक सहज ही उसकी ओर आकर्षित हो उठता है। इसलिये इसे विधा कहने में 'संकोच' की कोई आवश्यकता नहीं हे। व्यंग्य सिर्फ विधा ही है। परसाई के संदर्भ में यदि नामवर सिंह की टिप्पणी को स्मरण करें तो व्यंग्य सही मायने में समाज का दर्पण है। यदि किसी को यह दर्पण नहीं दिखलाई पड़ता तो एक सूक्तिकार के अनुसार यही कहा जा सकता है – 'नेत्राभ्याम विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति।'

जहां तक हास्य और व्यंग्य के अंतर्सबंध का प्रश्न है एक सुप्रसिध्द विचारक ने कहा था – 'जीवन को यदि निकट से देखे तो ट्रेजिडी हे। यदि उसे दूर से देखे तो कामेडी है।' वस्तुतः व्यंग्य हास्य का ही विकसित रूप है। हास्य व्यक्ति केन्द्रित था। व्यंग्य प्रवृत्ति केन्द्रित है। हास्य और व्यंग्य का अनुपात सुनिश्चित करना रचना की आवश्यकता और रचनाकार की अभिव्यक्ति रूचि पर निर्भर है। इस संदर्भ में परसाई जी से जब ज्ञानरंजन ने पूछा था तब परसाई जी ने इसकी जरूरत तथा रचना में इसके अनुपात के संबंध में कहा था – 'हास्य विनोद अच्छी चीजे हैं। हँसना स्वास्थ्य का लक्षण है पर हर बात पर हॅसना गैर जिम्मेदारी और मूर्खता है। जीवन में हर बात पर हँसी नहीं आती। किसी बात पर करूणा पैदा होती है, किसी में घृणा होती है, किसी से क्रोध होता है इसलिये केवल विनोद और हास्य का लहजा गैरजिम्मेदारी का काम है। कोई हास्य–लेखक

पीटने वाले पर भी हँसे कि कैसे मजे से पीट रहा है और पिटने वाले पर भी हँसे कि कैसे मजे से पिट रहा है तो ऐसे लेखक को आप क्या कहेंगे। मेरा मतलब है यह समझना चाहिए कि क्या हँसने लायक है, क्या रोने लायक है अर्थात सहानुभूति तय होनी चाहिए, यहीं से मात्र हास्य-विनोद और सामाजिक चेतना संपन्न व्यंग्य से अलग हो जाता है।'

'व्यंग्य का काव्यशास्त्रीय आधार' पर प्रकाश डालते हुए रामचन्द्र घोष ने लिखा है – 'व्यंग्य एक संश्लिष्ट साहित्य विधा है और इस रूप में यह साहित्य की प्रायः सभी विधाओं से अलग है। साथ ही व्यंग्य भावना अपनी संश्लिष्टता में अतिसूक्ष्म है और उसकी अतिसूक्ष्मता व्यंग्य सीमा रेखांकन में कठिनाईयों को जन्म देती है। गिलबर्ट हाइट ने 'दी एनाटॉमी ऑफ सटायर' में इस समस्या को इन शब्दों में रेखांकित किया है 'यह मानना सरल नहीं होता कि कब व्यंग्यकार पैरोडी लिख रहा है, कब वह दृढ़ता से विडम्बना के उपकरण का सहारा लेता है या कब उसकी मुस्कान भेदभरी और उसका परिहास ठंडा है।' अभिप्राय यह कि किसी भी व्यंग्य रचना के रूपात्मक संदर्भ में कुछ भी घोषणा या भविष्यवाणी करना खतरे से खाली नहीं है। व्यंग्य साहित्य की समीक्षा का कार्य गंभीर सूझ-बूझ और सावधानी की अपेक्षा करता है।

●●●

'व्यंग्य' ने अपनी यात्रा लगातार जारी रखी

त्रिभुवन पाण्डेय

हम इस बात को जानते हैं और स्वीकार करते हैं कि भारतेन्दु हरिशचंद के जमाने से ही एक तरह से लगातार व्यंग्य लिखा जा रहा है और यत्र–तत्र उसके रूपों का अन्वेषण भी होता रहा। जिस आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यंग्य ने लगातार अपनी यात्रा जारी रखी है।

शोध और अन्वेषण के दौरान यह प्रमाणित हो चुका है कि व्यंग्य के विविध रूप हैं और उस आधार पर सौ वर्षों के व्यंग्य लेखन के विकास की आलोचना भी की गई है। फिर यह एक अजीब बात है कि व्यंग्य कोई विधा नहीं है, पता नहीं यह कैसे और क्यों तथा किस आधार पर कहा जाता रहा है। अतः जरूरी हो जाता है कि इस प्रश्न पर गंभीरता पूर्वक विचार किया जाए। उक्त बात जबलपुर से आए हुए व्यंग्य के प्रसिध्द आलोचक डॉ. मलय ने व्यक्त किए। हरिशंकर परसाई की स्मृति में बख्शी सृजनपीठ भिलाई द्वारा आयोजित 'व्यंग्यालोचन' कार्यक्रम में उपस्थित देश के प्रतिष्ठित व्यंग्य लेखकों के बीच डॉ. मलय ने कहा कि 'नौटंकी रूप का व्यवहार तो पदय में ही होता है फिर उसे नाटक क्यों कहा जाता है। यदि व्यंग्य लेखकों को अपनी आन्तरिक शक्ति और सामार्थ्य पर पूरा विश्वास है तो व्यंग्य को विधा होने से कोई भी रोक नहीं सकता। फिर परसाई और शरद जोशी जैसे व्यंग्यकारों ने तो अपने झंडे गाड़ दिए हैं।'

कार्यक्रम में बख्याी सृजनपीठ के अध्यक्ष प्रख्यात समालोचक डॉ. प्रमोद वर्मा ने उपस्थित समालोचकों व लेखकों का स्वागत

करते हुए आह्वान किया कि 'शास्त्र रचना का अनुगमन करते हैं रचनाएं शास्त्र का नही"। शास्त्रज्ञ अपनी सुविधा के अनुसार और अपने ढंग से यह काम चाहे जब करें यह सृजनपीठ व्यंग्य लेखकों को व्यंग्य के आलोचना शास्त्र पर रचना केन्द्रित दृष्टि से विचार करने हेतु आमंत्रित कर रहा है। शहडोल से आए विशिष्ट अतिथि जगत सिंह बिष्ट ने कहा कि 'यह आयोजन अपने आप में विशिष्ट इएलिए है क्योंकि इसमें व्यंग्य की आलोचना पर बहस की गुंजाईश रखी गई है।' इस नए प्रयास के लिए डॉ. प्रमोद वर्मा के प्रति व्यंग्य बिरादरी की ओर से मैं आभारी हूँ। वरिष्ठ समीक्षक धमतरी के त्रिभुवन पाण्डे ने 'व्यंग्य के आलोचना शास्त्र की खोज' विषयक अपने आलेख का पाठ करते हुए कहा कि 'जिस तरह संवाद के प्रयोग के कारण किसी उपन्यास या कहानी की नाटक नहीं कहा जा सकता, कथा होने से किसी महाकाव्य को उपन्यास नहीं कहा जा सकता। उसी तरह व्यंग्य की आंशिक उपस्थिति से किसी रचना को व्यंग्य नहीं कहा जा सकता।' व्यंग्यकार व्यंग्य का प्रयोग 'केजुअल' रूप में नहीं करता।

आलेख पर केन्द्रित बहस में जहां अनेक आलोचकों ने व्यंग्य को साहित्य की एक स्वतंत्र विधा मानने से इंकार किया, वहीं अनेक लोगों ने इसे विधागत मान्यता देने के अपने ठोस तर्क प्रस्तुत किए। महासमुंद से आए वरिष्ठ व्यंग्य लेखक ईश्वर शर्मा ने चर्चा का आरंभ करते हुए कहा कि 'व्यंग्य के प्रमुख लेखक भी यह कहते हैं कि व्यंग्य एक विधा नहीं है तो उसे मानक वक्तव्य नहीं माना जा सकता।' आज व्यंग्य के नाम पर इतना विपुल साहित्य लिखा जा रहा है कि वह एक स्वतंत्र विधा के अंतर्गत आ जाता है। उन्होंने बताया कि 'जामिया-मीलिया विश्वविद्यालय दिल्ली की हिन्दी विभागाध्यक्ष डीन डॉ. मासदा असद ने कहानी उपन्यास के अतिरिक्त साहित्य की चौदह विधाए और बता दी है उनमें व्यंग्य भी है।' रायपुर के प्रसिध्द व्यंग्य लेखक प्रभाकर चौबे ने कहा कि साहित्य में जब कोई नई

प्रवृत्ति जन्म लेती है तो उसे अपनी स्थापना के लिए संघर्ष करना होता है। फिर जब कोई बात जनता द्वारा स्वीकार किए जाने पर उसे स्थापित होने से कोई रोक नहीं सकता। एक समय में कबीर उपेक्षित थे आज वे स्थापना के शीर्ष पर है, तकरीबन यही व्यंग्य के साथ हो रहा है। आज व्यंग्य साहित्य में सबसे लोकप्रिय लेखन को मान्यता प्राप्त हो रहा है तो निःसंदेह कोई रास्ता निकल आवेगा। देश की अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी में व्यंग्य आज आगे निकल चुका है। दुर्ग के व्यंग्य कथाकार गुलबीर सिंह भाटिया ने कहा कि 'व्यंग्य साहित्य आज सबसे ज्यादा पढ़ा जा रहा है। सापेक्ष के संपादक महावीर अग्रवाल ने कहा कि 'प्रसिध्द आलोचक नामवर सिंह ने यह माना है कि परसाई जी के व्यंग्य साहत्य का मूल्यांकन करने के लिए हमें एक नया आलोचना शास्त्र गढ़ना होगा।रायपुर के अश्विनी कुमार दुबे ने कहा कि 'साहित्य के नौ रसों में पहले वात्सल्य रस नहीं था लेकिन अकेले सूरदास ने ही वात्सल्य रस में इतनी रचनाएं लिखी कि आचार्यों को और एक नए रस की मान्यता देनी पड़ी' इन्हीं स्थितियों में आज व्यंग्य है। बागबाहरा से आए लेखक गजेन्द्र तिवारी ने कहा कि 'व्यंग्य साहित्य की सभी विधाओं के अंतर्गत है वह अलग विधा नहीं है, यह केवल एक स्पिरिट है। पिथौरा के अंतर्यामी प्रधान ने हास्य और व्यंग्य को अपने ढंग से परिभाषित किया वहीं रायपुर के डॉ. महेन्द्र ठाकुर ने कहा कि 'व्यंग्य को व्यंग्य रहने दिए जाए उसे साहित्य का ठप्पा लगने से बचाना होगा, ताकि वह जनता के बीच बना रहे।' अपने उद्‌बोधन में रायपुर के विनोद शंकर शुक्ल ने कहा कि 'साहित्य में कहानी, कविता और उपन्यास के अतिरिक्त इतर विधाओं पर भी बातें होनी चाहिए। साहित्य की ज्यादातर विधाएं इस बात से अछूती है। व्यंग्य ने लंबी संघर्ष यात्रा की है। कवि एवं समीक्षक अशोक सिंघई ने अपने ओजस्वी वक्तव्य में कहा कि 'व्यंग्य विधा नहीं है, यह एक छवि है, इमेज है' और उसके हिसाब से आप लिखते हैं। व्यंग्य में पांच छह नामों के बाद सूची समाप्त होने लग जाती है तब आलोचना की आलोचना

करके अपना दामन किस तरह से बचा सकते हैं। यदि व्यंग्य का आलोचना शास्त्र जरूरी है तो इसे व्यंग्य लेखकों को ही लिखना होगा।

प्रखर वक्ता कनक तिवारी ने कहा कि 'हम यहां व्यंग्य के आलोचना शास्त्र की दुर्गति करने नहीं बैठे है" कभी–कभी साहित्येतर व्यक्ति अच्छी टिप्पणी करते हैं। साहित्य में व्यंग्य एकमात्र लेखन है, जो बुराईयों से लड़ रहा है। व्यंग्यकार सर्जरी करता है इसलिए बुरा लगता है जबकि वह समाज के हित के लिए है। परसाई जी की रूह से समलोचक कांपते हैं। व्यंग्यकार हंसाता नहीं रूलाता है। दर असल व्यंग्य करूणा की ही उपज है। रायपुर के पत्रकार गिरीश पंकज ने कहा कि पाठक पढ़कर बता देते हैं कि अमुक रचना व्यंग्य रचना है तब फिर व्यंग्य को विधा बताने के मार्ग पर यदि आलोचकगण रोड़ा बनते हैं तब यह हिन्दी आलोचना का दुर्भाग्य है। भिलाई के रवि श्रीवास्तव ने कहा कि 'केवल परसाई को ही याद कर हम विधा की दावा ना करें। अभी और इंतजार हम करें। व्यंग्य आज हर जगह मौजूद है इसलिए हमें लड़ने की जरूरत नहीं है। बिलासपुर के डॉ. बीरेन्द्र कुमार वर्मा ने कहा कि 'ये हमारा दुर्भाग्य है कि आलोचना में हम पश्चिमी सिद्धांतों का सहारा लेते हैं, जबकि हमें अपने दम पर खड़ा होना चाहिए।'

कार्यक्रम के आरंभ में बख्शीजी और परसाई के चित्रों पर माल्यार्पण किया गया, उसके बाद विभिन्न संस्थाध्यक्षों परदेशीराम वर्मा, अशोक सिंघई, रवि श्रीवास्तव, जमुनाप्रसाद कसार, रामेश्वर वैष्णव, महेश शर्मा ने अतिथियों का स्वागत किया। इस अवसर पर सर्वश्री विनोद शंकर शुक्ल, सतीशचंद्र शर्मा, प्रभाकर चौबे, विनोद साव, शरद कोकाश, डॉ. चितरंजन कर, प्रदीप मेहता, प्रफुल्ल भांगे तथा अनेक प्रबुद्ध जन एवं महिला साहित्यकार उपस्थित थे।

●●●

कहाँ गई व्यंग्य की परसाई पीढ़ी वाली प्राहारात्मकता

त्रिभुवन पाण्डेय

व्यंग्य रूद्र की तीसरी आँख की तरह भाषा की तीसरी शक्ति है। यह आँख जब खुलती है तब इसकी तीक्ष्ण और प्रहारक दृष्टि से बचना कठिन हो जाता है। जीवन की सुंदर संरचना को विकृत और कमजोर करने वाली शक्तियों पर यह जिस तेजी से प्रहार करने में समर्थ है वह बड़े से बड़े शत्रु को हतप्रभ कर देता है। परसाई जी ने गर्दिश के दिन में लिखा भी है 'मेरा अनुमान है मैने लेखन को दुनियां से लड़ने के लिये एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। मैने सोचा होगा – रोना नहीं है, लड़ना है। जो हथियार हाथ में है, उसी से लड़ना है।' विद्रूप और विसंगति के खिलाफ इस जंग के ऐलान के बाद व्यंग्यकार की दशा और दिशा प्रहार के लिये समर्थ हो जाती है। कभी-कभी यह प्रहार चौतरफा होता है। ठीक उस सैनिक की तरह जो अपने अस्त्र का प्रहार चारों ओर करता है। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक, छद्म धार्मिक, शोषक, उत्पीड़िक सभी पर यह प्रहारक दृष्टि केन्द्रित होती है। उसी तरह के मुखौटे को नोचकर वास्तविक व्यक्ति से साक्षात्कार करने की कोशिश में व्यंग्य की क्षिप्रता, निपुणता और सतर्कता देखते ही बनती है। परसाई जी के सामने कोई चेहरा अपना मुखौटा सुरक्षित नहीं रख सकता। देश का बड़ा नेता हो या छोटा, बड़ा शोषक हो या छोटा, बड़ा उत्पीड़िक हो या छोटा, करीबी हो या दूर का, अपना हो या गैर वे जब प्रहार करना शुरू करते हैं तो उनके सामने सिर्फ वह पात्र होता है जिसे अक्ष-विक्षत कर देने का कोई अवसर हाथ से वे

जाने नहीं देते । सापेक्ष के परसाई खंड में उनके गद्य की विशेषता को रेखांकित करते हुए विनोद शंकर शुक्ल ने ठीक ही लिखा है 'परसाई की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने इस साहसिक गद्य का अभूतपूर्व विकास किया । आजादी के बाद के राजनीतिक व्यंग्य लेखन और सामाजिक सांस्कृतिक पाखंड पर जमकर प्रहार किया । उनके नश्तर तेज थे कि व्यंग्य एक स्वतंत्र विधा की तरह स्थापित हो गया ।'

हरिशंकर परसाई के समकालीन व्यंग्यकारों में वह प्रहारात्मकता नहीं है जो परसाई जी की व्यंग्य रचनाओं में मौजूद है । श्रीलाल शुक्ल, शरदजोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी सभी उस भाषा का प्रयोग नहीं करते जो तिलमिला दे । ये व्यंग्य के साथ हास्य का ऐसा आनुपातिक संतुलन बनाये रखते हैं जो व्यंग्य को तीखा और मार्मिक होने नहीं देता । परसाई जितनी तेजी से टूटते हैं, जितनी मार्मिकता और सहानुभूति के साथ शोषित के पक्ष में खड़े होकर ललकारते हैं, जटिल से जटिल विसंगति को चीर फाड़ कर सामने धर देते हैं वह अन्य किसी भी व्यंग्यकार के पास नहीं है । प्रहार के मामले में वे अकेले हैं । उनका आत्मविश्वास, उनकी निर्भीकता, चीजों को जानने समझने की उनकी क्षमता, व्यक्ति को पहचानकर उसके वास्तविक स्वरूप को देख लेने की उनकी पारदर्शिता उनके समकालीनों में किसी के पास नहीं है । परसाई इस मामले में अप्रतिम और अकेले हैं ।

व्यंग्यकार में संकट से जूझने की जितनी क्षमता होगी, विरोध की जितनी शक्ति होगी व्यवस्था से टकराने की जितनी प्रतिबद्धता होगी, विसंगतियों को पहचानने की जितनी पारदर्शी दृष्टि होगी उसके व्यंग्य में उतनी ही प्रहारक क्षमता होगी । अपने समय की प्रतिभायें शक्तियों से लड़ने का सदैव जोखिम उठा रही है । परसाई बनने के लिये वैसा ही जोखिम उठाने का साहस चाहिये । ऐसा हर समय संभव है । परसाई इस दिशा में चलने के लिये सदैव आवाज

देते रहेंगे। लड़ने के कितने ही तरीके हैं। एक सुरक्षित तरीका होता है जिसे कलापूर्ण व्यंग्य कहते हैं। ऐसे ललित व्यंग्य लिखने वाले व्यंग्यकारों की संख्या इधर तेजी से बढ़ती जा रही है।

•••

साहित्य में हास्य-व्यंग्य की भूमिका

त्रिभुवन पांडेय

प्रारंभ से ही हमारे यहां धारणा रही है कि 'हास्य' का उद्देश्य मनोरंजन है जबकि 'व्यंग्य' का प्रयोजन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक धार्मिक विसंगतियों को उद्‌घाटित कर पाठक को समकालीन वास्तविकता से परिचित कराने का। यही वजह है कि हमारे यहां जितनी गंभीरता से व्यंग्यकारों को लिया जाता है उतनी गंभीरता से हास्य लेखकों या कवियों को नहीं लिया जाता। संस्कृत नाटकों में हास्य उत्पन्न करने का दायित्व विदूषक पर था जो नाटक की गंभीरता के बीच हल्के-फुलके मनोरंजन के लिए उपस्थित हो जाता था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हास्य लिखने वाले हिन्दी के प्रारंभिक लेखकों में भी एक तरह का वैसा ही मसखरापन दिखलाई पड़ता है जैसा संस्कृत नाटक के विदूषक में मौजूद था। वे व्यंग्य करते हैं लेकिन यह व्यंग्य हास्य के गगनभेदी अट्टहास में अनसुना ही रह जाता है। इस हास्य को पढ़ते हुए कहीं भी आजादी के आंदोलन के दौरान आंदोलित देश की यातना का आभास नहीं मिलता। ले देकर सामाजिक कुरीतियों और अंग्रेजी सभ्यता पर परिहास पूर्ण व्यंग्यात्मक टिप्पणी मिलती है लेकिन वह भी हास्य के नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह अनसुनी रह जाती है। इसके विपरीत पाश्चात्य साहित्य में हास्य और व्यंग्य के बीच इतनी गहरी विभाजक रेखा नहीं मिलती। प्रसिध्द समालोचक थेकरे और निकॉल की हास्य व्यंग्य संबंधी परिभाषा को इस संबंध में देखा जा सकता है। थेकरे हास्य के संबधं में लिखते हैं हास्यप्रिय लेखक आप में प्रीत, अनुकम्पा एवं कृपा के भावों को जागृत करता है। असत्य और दम्भ तथा कृत्रिमता के प्रति घृणा और कमजोरों, दरिद्रों, दलितों और

दुखी पुरूषों के प्रति कोमल भावों को उदय करने में सहायक होता है। व्यंग्य के संदर्भ में निकाल का कथन है – 'व्यंग्य' में आक्रोश होता है। व्यंग्य की भाषा में गुदगुदी कम विकटता अधिक रहती है। पश्चिम के विचारकों ने हास्य और व्यंग्य को केवल शिल्प के स्तर पर अलग माना है। जहां तक उद्देश्य का सवाल है दोनों का लक्ष्य लगभग एक है। असत्य, दम्भ तथा कृत्रिमता के प्रति घृणा। हास्य का जो प्रयोजन थेकरे ने बताया है वही प्रयोजन व्यंग्य का भी है। यही कारण है कि प्रसिध्द फिल्मकार चार्ली चेपलिन में हास्य और व्यंग्य का अद्भुत संतुलन मिलता है। फ्रेम दर फ्रेम व्यक्ति हंसता हुआ जीवन की विकट समस्याओं से लगातार साक्षात्कार करने का अवसर प्राप्त करता है। यही स्थिति जार्ज बर्नाड शॉ की भी है।

हास्य यदि व्यंग्य रहित हो तो वह समुद्र के विराट सौन्दर्य की तरह केवल दर्शनीय है उसे देख सकते हैं लेकिन हंसते हुए किसी जीवन सत्य को पा लेना सार्थक अभिव्यक्ति रूप है। व्यंग्य हास्य का आश्रय पाकर स्वीकार्य हो जाता है। वह कटु सत्य के बदले प्रिय सत्य का रूप ले लेता है। हास्य व्यंग्य का आश्रय पाकर सोद्देश्य और प्रासंगिक बन जाता है। हास्य का सतही स्वरूप व्यंग्य की जीवन दृष्टि पाकर नीलकंठ की तरह विषपायी बन जाता है। सत्य–शिव और सुन्दर तीनों ही रचना के अभिन्न अंग है। व्यंग्य यदि सत्य और शिव का आलम्बन है तो हास्य सुन्दर का। दोनों के बीच अनुपातिक संतुलन और सामंजस्य जरूरी है।

●●●

समकालीन जीवन संदर्भ और व्यंग्य साहित्य

त्रिभुवन पाण्डेय

व्यंग्य साहित्यकार सदैव दो अतिशय छोरों से बचता है। अतिशय भावुक मनः स्थितियां उसके लिये उपयोगी नहीं है। स्वप्न वह भी देखता है लेकिन आँखे मूंदकर नहीं। दृष्टि तब भी सचेत होती है। वह हवा में घुले हुए उन जहरीले जीवाणुओं का पता लगाता है जो सामान्य आंखों को नहीं दिखलाई पड़ते। वह समसामयिक जीवन के प्रत्येक स्पन्दन से परिचित होता है। प्रत्येक अमानवीय घटना उसे चिंतन के एकान्त में पहुंचा देती है जहां पृष्ठभूमि से जुड़े प्रत्येक संभावित तथ्य पर उसे घण्टों सोचना पड़ता है। वह केवल प्रतिक्रिया व्यक्त करके ही मुक्ति नहीं पा सकता। यदि वह शिल्प के घने जंगल में छुपना चाहे तो कथ्य की दीवार उसका रास्ता रोकती है। प्रत्येक समस्या से साक्षात्कार ही उसकी नियति है। व्यंग्य साहित्य पर यह भी आरोप है कि उसमें केवल सम-सामयिकता होती है। उसमें वह जीवन्तता नहीं होती जो व्यक्ति के हृदय को आगामी अनेक दशकों तक उद्वेलित कर सके। जहां तक व्यंग्य साहित्य के सम-सामयिक होने का प्रश्न है वह निरन्तर गतिशील होते जाने का प्रमाण है। जीवन के बदले हुए संकट और विकृतियाँ उसे विवश करती है कि वह प्रतिक्षण जो घटित हो रहा हैं उसे रेखांकित करें। एक ओर शेष साहित्य रूढ़िबद्ध होकर नवीनता की तलाश में निरर्थक हाथ-पाँव मारता दिखलाई देता है तो दूसरी ओर जीवन के गतिशील चरण के साथ गतिवान व्यंग्य साहित्य कभी

रूढ़ि नहीं होता। वह समसामयिक जीवन का ऐसा संकलन है जिसका प्रत्येक पृष्ठ व्यतीत होती हुई असफल जिंदगी की कथा से परिपूर्ण है। जितनी भी महान रचनायें व्यक्ति के हृदय को अनेक शताब्दियों या दशकों तक उद्धेलित करने में समर्थ हुई उनमें अधिकांश रचनाओं का कथ्य मनुष्य की यातना और पीड़ा है। यदि पीड़ा से व्यंग्य ध्वनित न हो तो वह मनुष्य को कभी प्रभावित नहीं कर सकती। गोदान का होरी जिस असहाय स्थिति में टूटता है उसमें पीड़ा तो है लेकिन व्यंग्य कहीं अधिक तीव्र है। होरी की मौत पर पाठक आँसू नहीं बहाता वरन सम्पूर्ण सामाजिक ढांचे पर आक्रोश प्रकट करता है। उसके मन में शोषण और आर्थिक व्यवस्था के खिलाफ घृणा उत्पन्न होती है। व्यंग्यहीन दुख व्यक्ति को केवल कुछ क्षणों के लिऐ उदास कर सकता है। विचलित नहीं कर सकता। तटस्थ सहानुभूति की भावना वह जागृत कर सकता है लेकिन लम्बे समय तक सोचने के लिए विवश नहीं कर सकता।

नई कहानी हो या नई कविता, अकहानी हो या अकविता, सचेतन कहानी हो या अचेतन कथा रचना, समग्र वर्तमान साहित्य धारा ही व्यंग्य के कगारों के बीच बह रही है। आज केवल वही रचना प्रभावित करने में समर्थ होती है जिसमें व्यंग्य किसी न किसी स्तर पर ध्वनित होता हो। जितनी भी मार्मिक गद्य या काव्य पंक्तियां मर्म को झकझोरती हे उनमें व्यंग्य सन्निहित होता है। जीवन में बढ़ते हुए अन्तर्विरोधों और षड़यंत्रों के साथ व्यंग्य साहित्य में निरन्तर वृद्वि होती जायेगी। वर्तमान राजनैति कुचक्र, शोषण, अगम्भीर जीवन दृष्टि व्यंग साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देगी

वर्तमान साहित्य सृजन से जुड़े अनेक प्रश्न व्यंग्य साहित्यकारों के लिय निरर्थक है। प्रतिबद्धता, भाषा की तलाश, मूल्यों की खोज, विद्रोह की सार्थकता, आदि अनेक कृत्रिम प्रश्न जिनसे नई पीढ़ी टकरा रही है व्यंग्य साहित्यकारों के समक्ष अर्थहीन है। यह सब वर्तमान जीवन की विसंगतियों से उत्पन्न तनाव से दूर

होने का बहाना है। शिल्प की आड़ लेकर कथ्य से भागने का प्रयत्न है। भाषा की तलाश साहित्यकार की तीव्र अनुभूति से जुड़ी होती है। सर्जनाकाल का आवेग कथ्य के अनुरूप भाषा भी प्राप्त कर लेता है। इस दशक के पूर्व कभी भी साहित्यकारों के सामने भाषा की समस्या नहीं आई थी। विद्रोह की सार्थकता का प्रश्न भी अर्थहीन है। पहले तो विद्रोह कहीं हुआ ही नहीं। क्रांति शब्द का हजार बार प्रयोग कर लेना ही क्रांति नहीं है। क्रांति की कसमसाहट जहां है उसे जानना जरूरी है। साहित्य में वह नारेबाजी के रूप में नहीं, एक जीवन दर्शन के रूप में जुड़ सकती है।

इसके पूर्व यह भी निर्णय करना जरूरी है कि आक्रोश की कितनी मात्रा विद्रोही मन की रचना के लिए जरूरी है। कितनी गाली या आक्रामक शब्द किस अनुपात में हों कि उसे क्रांतिकारी साहित्य कहा जाय? क्या उसमें भी व्यंग्य नहीं कि कुछ समालोचक मुक्तिबोध को जन कवि नहीं मानते। उनके मूल्यांकन के अनुसार मुक्तिबोध में केवल घुटता हुआ आक्रोश है जो प्रकट नहीं हो पाता। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि जो ज्यादा गालियों का प्रयोग करे वह जन-कवि और जो आक्रोश की अभिव्यक्ति ऐसी भाषा में करे जिससे मन में दशहत उत्पन्न होकर कालान्तर में सम्पूर्ण व्यवस्था के खिलाफ घृणा जागृत हो और व्यक्ति, परिवर्तन के लिये मन को क्रमशः तैयार करें। मुक्तिबोध की रचना उन लोगों पर प्रभाव डालती है जिनके कंधों पर नये युग को परिचालन करने का भार है।

यह भी निश्चित है कि राजनीति के निर्मम शिकंजे में छटपटाता हुआ जीवन उपेक्षा का पात्र नहीं हो सकता। राजनीति ने आज जितने स्तरों पर व्यक्ति के जीवन को प्रभावित किया है वह पूर्व की अपेक्षा कहीं ज्यादा चिंताजनक है। राजनीति आज विशुद्ध व्यवसाय का रूप लेती जा रही है। सिद्धांतों और कार्यक्रमों की बात केवल सामान्य जन को आकर्षित करने का आसान नुस्खा है।

राजनीति उन पर भी हावी हुई है जो राजनैतिक प्रतिबद्धता के नाम पर नाक भौं सिकोड़ते थे। आज की अधिकांश समस्या सतही राजनीतिक दृष्टि की ही उपज है। समूची राजनीति सिंहासन के चारों ओर चक्कर काट रही है। ऐसी स्थिति में यह दायित्व भी ओढ़ना आवश्यक जान पड़ता है कि राजनीति की निर्मम राजनीति का पर्दाफाश किया जाए। एक ओर जहां शेष साहित्यकारों के बीच राजनीति एक अस्पृश्य वस्तु है वहीं व्यंग्य साहित्यकार प्रारंभ से ही राजनीति के निर्मम दानव के साथ युद्धरत है। हरिशंकर परसाई की कथा 'विधायक की आत्मा' हो या शरद जोशी का व्यंग्य राजनीतिक हलचल : नगर संस्करण, लतीफ घोंघी के तीसरे बंदर का किस्सा हो या प्रभाकर चौबे की "आधुनिक विषकन्या" सभी रचनायें राजनीति की भीतरी कुरूपता का अनावरण करती है। राजनीति का अन्तर्विरोध व्यंग्य साहित्यकारों की दृष्टि से कभी ओझल नहीं हो पाया।

व्यंग्य साहित्यकार को निरंन्तर दोहरे दबाव का सामना करना पड़ता है। पहला दबाव रचनात्मक स्तर पर उसे झेलना पड़ता है और दूसरा दबाव उसके व्यक्तिगत जीवन पर पड़ता है। कभी कभी वह व्यक्तिगत जीवन पर पड़ने वाला दबाव अपना प्रभाव रचनात्मक स्तर पर भी डालता है। ऐसी स्थिति में व्यंग्य साहित्य भी शिल्प के ऐसे कुहासे में जा छुपता है। जहां कथ्य या तो अस्पष्ट रह जाता है या प्रहार की तीव्रता में कमी आ जाती है। यही कारण है कि व्यंग्य साहित्यकारों की संख्या अत्यंन्त सीमित दिखलाई पड़ती है। सुविधाजीवी साहित्यकार अन्य विधाओं में ज्यादा सुरक्षा देखता है। वह क्रांति धर्मी होना चाहता है और वातानुकूलित कक्ष का सुख भी चाहता है। एक हाथ में विद्रोह का ध्वज और दूसरे हाथ में संधिपत्र लेकर ही वह साहित्य के क्षेत्र में अवतरित होता है। संधिपत्र लिया हुआ हाथ ही ज्यादा ऊंचा होता है जो दूर दूर तक स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। व्यंग्य साहित्यकारों के जीवन में यह दोहरी प्रतिबद्धता कहीं नहीं दिखलाई पड़ती है।

सम–सामयिक जीवन की निरन्तर व्याख्या करते रहने के कारण व्यंग्य रचनाओं में शिथिलता भी दिखलाई पड़ती है । कभी–कभी शिल्प के प्रति बरती हुई असावधानी भी रचना को प्रभावहीनता के कगार पर खड़ी कर देती है । यही कारण है कि कभी–कभी परसाई या शरद जोशी की रचना या लतीफ या प्रभाकर के व्यंग्य हृदय के भीतर गहरे उतरने के बदले दिमाग से टकराकर ही बिखर जाते हैं । यद्यपि ऐसी रचनाओं की संख्या कम है लेकिन इस ओर ध्यानकर्षण जरूरी है । ज्यादा गतिवान होने का यह अर्थ भी नहीं रचनायें निष्प्राण हो उठें ।

मैं समीक्षकों के इस बात से भी सहमत नहीं कि व्यंग्य और हास्य का अनुपात ऐसा हो कि पाठक व्यंग्य किये जाने के बाद भी हंसता रहे । सबसे पहली बात तो यह कि हास्य उत्पन्न करने के लिये अतिरंजित स्थितियों की कल्पना करनी पड़ती है । अतिरंजना सदैव साहित्यकार को यथार्थ से दूर ले जाती है । यदि व्यंग्य का उद्देय विनोद है तो व्यंग्य कथाकारों का काम विदूषकों का कार्य बन जायेगा । यद्यपि यह कटु सत्य है कि औसत आदमी आलोचना सुनकर बेवकूफों की तरह मुस्कुराता है । उसमें इतनी भी गंभीरता नहीं कि आलोचना को चुपचाप झेल ले । व्यक्ति शायद समग्र जीवन की हताशा से इस कदर टूट चुका है कि उसकी स्वाभविक मानवीय उत्तेजना भी समाप्त होती जा रही है ? वह अत्याचार को देखकर क्रोधित नहीं होता, आनन्द के क्षणों में उल्लासित नहीं दिखता और पीड़ा के क्षणों में उसकी आंखें आर्द्र तक नहीं होती । ऐसी स्थिति में हास्य के भीतर अन्तर्निहित व्यंग्य प्रभावशाली असर डालने में समर्थ नहीं हो सकेगा । व्यक्ति के मन पर वही शब्द चोट कर सकते हैं जिनमें पूरी आक्रामकता हो ।

व्यक्ति का 'निज' और उसका 'पर' दो विरोधी दिशा में चलने वाले व्यक्ति के भिन्न रूप है । 'निजता' के साथ व्यक्तिगत हित, झूठ मक्कारी, स्वार्थपरता, पदलिप्सा आदि अनेक विकृत

अवगुण सम्बद्ध है। 'पर' के साथ त्याग, दया, सेवा, धर्म, राष्ट्रप्रेम, सहिष्णुता, भाईचारा, उदारता आदि गुण सम्बद्ध है। वह जीवन भर व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन–मूल्यों को एक–दूसरे से छुपाकर रखता है। उसके भीतर का वास्तविक व्यक्ति अनेक आवरणों के भीतर छुपा रहता है। यह व्यक्ति सदैव इस बात के लिये सतर्क रहता है कि कोई उन आवरणों को उघाड़कर नंगा न कर दे। व्यंग्य साहित्यकार निरंतर इस व्यक्ति से साक्षात्कार के लिये प्रयत्नशील रहता है। यह व्यक्ति अनेक महत्वपूर्ण जगहों में मिलता है। कभी नेता के रूप में, कभी अफसर के रूप में, कभी महन्तों के रूप में, कभी समाजसेवकों के रूप में, कभी तथाकथित राष्ट्रवादियों के रूप में। व्यंग्य साहित्यकार निरंतर इस व्यक्ति की तलाश करता है। क्रमशः उन पर्तों को उझाड़ता है जिसके भीतर वह हिंस्र पशु छिपा रहता है जिसके विषय में अधिकांश लोगों को कुछ भी जानकारी नहीं होती।

सामान्यतः यह माना जाता है कि यह देश उच्चतर मानव मूल्यों के लिये संघर्षरत है। सत्य, अहिंसा, शांति, भाईचारा, सद्भावना, प्रेम आदि शब्दों का हम उसी तरह प्रयोग करते हैं जैसे साहित्यिक गोष्ठियों में लोग संश्लिष्ट, प्रतिबद्धता, विद्रोह, भंगिमा, बिम्ब आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। इन शब्दों के साथ संलग्न अर्थगत गरिमा चूंकि समाप्त हो चुकी है इसलिये चमगादड़ की तरह लटके इन शब्द समूहों से भयावहता और भी बढ़ती है। भौतिकता और पूंजी के विशाल दैत्यों के बाहुपाश में जकड़े सम्पूर्ण मानव मूल्य की घुटती हुई साँस क्रमशः डूबती जा रही है। जहां पत्थर की मूर्ति की साज–सज्जा पर करोड़ों रूपये व्यय किये जाते हैं लेकिन अस्पतालों, धर्मशालाओं और यात्री विश्रामगृहों में जानवर की तरह कराहते व्यक्ति की आवाज हमें सुनाई नहीं पड़ती। प्रश्न अब यह भी नहीं है कि मनुष्य को कब हम सम्पन्नता के स्वर्णिम शिखर पर सुशोभित करेंगे। उससे भी पूर्व जो प्रश्न हमारे सम्मुख है पहले से

भी महत्वपूर्ण है कि हम मनुष्य को वास्तविक मनुष्य के रूप में संबोधित करना कब प्रारंभ करेंगे।

इसी संदर्भ में 'लोकतंत्र' के 'परलोकतन्त्रीय' स्वरूप की जांच पड़ताल भी जरूरी है। लोकतंत्र मनुष्य भी भौतिक आकांक्षा की पूर्ति के लिये शांतिपूर्ण परिवर्तन का पक्षधर है। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण 'व्यक्ति के निजत्व' की सुरक्षा के संदर्भ में उसकी भूमिका है। यदि उपरोक्त मान्यता की कसौटी में अपने लोकतंत्र को कसे तो वह तन्त्र ही नहीं जान पड़ता। शासन के स्तर पर राजतंत्र, पूंजी के स्तर पर पूंजी तंत्र, साहबों के स्तर पर अय्याशतन्त्र, जनता के स्तर पर भीड़ तंत्र, उत्सव के स्तर पर गणतंत्र तो है लेकिन लोकतंत्र कहीं नहीं है। आज भी व्यक्ति नहीं है बल्कि समूह है जिसके भाग्य का निर्णय उन लोगों के हाथों में है जो मालिक हैं, मंत्री हैं, मनसबदार हैं, मठाधीश हैं। इनके पास राजदण्ड है, भारी-भरकम शरीर है, सिक्कों की ढेरी है, गुलामों का झुण्ड है और राजमुहर है जिसे उन फरमानों पर अंकित किया जाता है। जो सुबह भव्य शब्दावली के साथ जारी होते हैं और शाम आफिसों के तहखानें में गुम हो जाते हैं। अभिनय कुशल राजनीतिज्ञों की राजनैतिक नौटंकी के शोर में व्यक्ति, उसकी गरिमा, उसकी आकांक्षा, उसके स्वप्न, उसकी चीख क्रमशः डूबते जा रहे हैं। यह चीख कभी परसाई की व्यंग्य कथा 'भोलाराम का जीव' में उभरती है और कभी शरद जोशी के उन कथा-पात्रों में जो जातिहीन, व्यक्तिहीन, नामहीन टूटता हुआ भारतीय मनुष्य है।

युगोस्लाव कहानी लेखक मिलोवान जिलास की कहानी 'मृत्युदण्ड' युद्धरत मनुष्य के नियति की कथा है। किस तरह एक व्यक्ति की जिंदगी से ज्यादा मूल्यवान वह गोली बन जाती है जिसके साथ निर्मम मृत्यु जुड़ी हुई है। दो सैनिक और मृत्यु के लिये तैयार किसान जो अपनी कब्र स्वंय तैयार करता है युद्ध के संदर्भ में संपूर्ण यातना का भयावह दृश्य है। बर्नार्ड-शॉ का वह पात्र भी इस संदर्भ

में स्मरणीय है जिसकी जेबों में गोलियों की जगह चाकलेट है, जो गोली की तुलना में चाकलेट के ज्यादा महत्व देता है। छठवें और सातवें दशक में तीन बार हम भी युद्ध के मैदान में जाने के लिये बाध्य किये गये। इसी अवसर पर हमने यह भी देखा कि सीमा पर एक व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण निष्ठा के साथ अपने राष्ट्र के लिये युद्धरत था और दूसरा व्यक्ति सुरक्षाकोष की राशि को निजी कोष के रूप में परिवर्तित कर रहा था। सीमा पर लोग जब जाति, धर्म और भाषा का आवरण उतार कंधे से कंधा मिलाकर मोर्चा ले रहे थे तब देश के भीतर साम्प्रदायिक तनाव का वातावरण पैदा किया जा रहा था। इस देश का लाडला जब मातृभूमि के लिए शहीद हो रहा था तब राष्ट्र के अधिकांश लोग अपने स्वार्थों में लिप्त थे। शेष साहित्य में युद्ध के संदर्भ में लिखा गया साहित्य निहायत सतही और कृत्रिम मनः स्थितियों से उत्पन्न प्रभावहीन प्रतिक्रिया का शब्दजाल था। कवियों में उन्माद था और वे शत्रुदेश का नाम नक्शे से मिटाने के लिये व्याकुल थे। काफी हाऊस में उन्होंने काफी दिनों तक युद्ध को अपनी भीतर अनुभूत किया और काफी की चुस्कियों के साथ-साथ वे मशीनगन की गोलियों से क्षत विक्षत होते रहे। ऐसी ही स्थिति में व्यंग्य कथाकारों ने उन लोगों को कटघरे में खड़ा किया जो इस राष्ट्र को शांति और अहिंसा का इतना डोज पिलायाकि वह बर्फ की तरह ठण्डा पड़ गया।

व्यंग्य साहित्य की निरंतर बढ़ती हुई लोकप्रियता यह प्रमाणित करती है कि सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, वैचारिक यातना गृह में कैद सामान्य व्यक्ति की करूणा, पीड़ा, ऊब, असहायता, छटपहाहट की सटीक अभिव्यक्ति उसमें मिलती हैं। व्यंग्य साहित्य के पात्र वास्तविक मनुष्य के हमशकल ही नहीं, हाड़, मास, मज्जा, रक्त सहित वे उसके अभिन्न प्रतिरूप है। हरिशंकर परसाई की कहानी का वह नेता जो बेकार नवयुवती को चरित्रिक प्रमाणपत्र देने के पूर्व बिस्तर तक जाने के लिए विवश कर देता है,

इस देश की मिट्टी से जन्म लिया हुआ नर रत्न? ही है। उनकी ही दूसरी कहानी इन्स्पेक्टर मातादीन चांद पर उस महान सेवक की कथा है जिसे देखकर शोहदे खिल उठते हैं और शरीफों के चेहरों पर हवाईयों उड़ने लगती है। शरद जोशी के 'श्रीपथाले' हर शहर में जीप दौड़ाते हुए दिखेंगे। कभी अप्सरा तो कभी किन्नर, कभी गंधर्व तो कभी मेनकायें इन जीपों पर आरूढ़ नजर आयेंगी। विकास के इन देवदूतों का गंतव्य है सिनेमा, होटल, क्लब या शापिंग।

जब तक राजनीति उद्देश्य प्रेरित कर्मनीति से नहीं जुड़ जाती, जब तक व्यक्ति मुखौटाहीन होकर जीना नहीं सीख लेता, जब तक पूंजीपति श्रम और रोटी का मूल्यांकन करना नहीं सीख जाता, जब तक सौ करोड़ लोगों को वास्तविक मानवीय गरिमा प्राप्त नहीं हो जाती तब तक व्यंग्य साहित्यकार के लिये कहीं कोई पड़ाव नहीं।

●●●

आमने सामने

आमने सामने

पूछते हैं वो कि गालिब 'कौन है/कोई' बतलाओ कि हम बतलायें क्या

त्रिभुवन पांडेय

15 अगस्त 1947 के दिन घनघोर बारिश में तिरंगा लेकर जिस स्कूल से भीगता हुआ लेकिन उत्साह से भरा गाँधी चौक पहुंचा उस स्कूल के विषय में बाद में पता चला कि सन् 1933 में गाँधी जी जब हरिजन उद्धार संबंधी देशव्यापी दौरे में निकले थे तब उनकी आमसभा ए.व्ही.एम. वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल के प्रांगण में हुई थी। सन् 1947 में मैं इस स्कूल का छात्र था और स्वतंत्रता जब मिली तब चौथी हिन्दी में पढ़ रहा था। बाद में यह भी पता चला कि छत्तीसगढ़ी के प्रथम व्याकरण लेखक काव्योपाध्याय हीरालाल सन् 1882 से 1890 तक इस स्कूल के हेडमास्टर रहे। उन की किताब का अनुवाद ग्रियर्सन ने किया और उसे जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल के जिल्द 30 भाग 1 में सन् 1890 में प्रकाशित कराया। हीरालाल काव्योपाध्याय की लिखी कविताओं का इतालबी भाषा में अनुवाद किया गया। मजे की बात यह है कि जब तक हम उस स्कूल के छात्र रहे हमें यह जानकारी किसी ने नहीं दी। संभव है यह जानकारी हमारे पूज्य शिक्षकों को भी न रही हो क्योंकि यदि उन्हें जानकारी होती तो कभी न कभी वे जरूर इसका उल्लेख करते। आगे चलकर इस स्कूल का स्तर बढ़ा और मेट्रिक तक शिक्षा यहां दी जाने लगी। इसी स्कूल के छात्र मुकीम भारती रहे जिनका लिखा एक गीत म.प्र. एवं छत्तीसगढ़ के अनेक स्कूलों के साथ यहां भी प्रार्थना के रूप में गाया जाता है।

कक्षा में हम 'बेक बेंचर' थे। सामने वही छात्र बैठते जो अध्यापक के पूछे हुए प्रश्न का उत्तर दे सकते थे। हम सब ऐसे छात्र थे जो घर में ठीक से खाना नहीं बनने या उधारी वाले से तंगाये जाने या अधिकारी द्वारा धौंस जमाने के बाद 'गुरूजी' के कुपित क्रोध को शांत करने के काम आते। हम सबकी पीठ पर, हथलियों पर शहादत की लकीरें खिंचती। सरजी पीटकर शाँत हो जाते और हम सब शिक्षा प्रणाली से लेकर पुस्तक तक सबको जी भर कर कोसते। आखिरी बेंच पर बैठने का इतना गहरा असर मुझ पर हुआ कि आज भी किसी समारोह में सामने बैठने की हिम्मत नहीं होती। पीछे बैठने से लगता है अपनी बिरादरी के साथ अपने लिये निर्धारित स्थान पर बैठे है।

प्रारंभ में अध्यापकों ने यह घोषित कर दिया था कि हम लोगों को कोई भविष्य नहीं है। हम ले देकर परीक्षा उत्तीर्ण कर लें यही बंहुत बड़ी उपलब्धि होगी। पता नहीं हमारे एक प्राचार्य श्री के.इ. बेडगे को कैसे अंदाजा लगा कि हम लोगों में कुछ न कुछ प्रतिभा है और प्रयास करें तो कवि या लेखक हो सकते हैं। 1955 में लगाया हुआ अनुमान सन् 1957 में जाकर सत्य होता लगा जब एक उपन्यास, कुछ कविताएं और व्यंग्य लेखन का पहला दौर समाप्त हुआ। उस समय मेट्रिक में इतने कम छात्र होते थे कि समाचार पत्र में जब परीक्षा परिणाम छपता तब छात्र का रोल नम्बर, छात्र का नाम, पिता का नाम और श्रेणी सबका उल्लेख होता। अब तो लाखों की संख्या में छात्र उत्तीर्ण होते हैं तो सिर्फ रोल नम्बर छपता है।

शिक्षक प्रशिक्षण के बाद सन् 1957 में एक साथ पाँच नियुक्तियां मिली। यह भारत वर्ष में नौकरी का स्वर्णकाल था। लोग कम थे और नौकरी ज्यादा थी। अब तो स्थिति यह है कि एक चपरासी के के पद के लिए पोस्टग्रेजुएट सहित हजारों ग्रेजुएट आवेदन करते हैं। बस्तर बी.टी.आई. में सर्विस का मैने निर्णय लिया। तब बस्तर केवल नाम का जिला मुख्यालय था। असली

मुख्यालय जगदलपुर था। महाराज प्रवीरचंद तब जीवित थे और राजमहल में काफी चहल पहल रहती थी। मैं सप्ताह में दो बार साइकिल से जगदलपुर जाया करता। सामान खरीदने के बाद सिनेमा देखकर जब वापस लौटते तब रात्रि बारह से एक के बीच का समय होता। इन्द्रावती पारकर जब आसना के जंगल में प्रवेश करते तो सघन अंधकार में कुछ भी दिखलाए नहीं पड़ता। साइकिल की रफ्तार स्वतः बढ़ जाती। जंगली जानवरों का भय तो साथ लगा ही रहता। आसना का जंगल पारकर जब मैदानी हिस्से में आ जाते तब जाकर सांस स्वाभाविक होती। साइकिल से चित्रकूट की यात्रा, उड़ीसा यात्रा, आदिवासी गांवों में जाकर लोकनृत्य का अवलोकन, तीरथगढ़ कुटुम्बसर की यात्रा। नौकरी का पहला ही वर्ष विविधताओं से भरा, अनुभवों का समृध्द करने वाला महत्वपूर्ण सिध्द हुआ।

लेकिन साहित्य यात्रा की तैयारी तब प्रारंभ हुई जब मैं बस्तर से महासमुन्द पहुंचा। तब महासमुन्द में मनोहर शर्मा, जयशंकर नीरव और विश्वेन्द्र ठाकुर पहले से मौजूद थे। मनोहर भाई कवि थे। जयशंकर नीरव कथाकार और विश्वेन्द्र ठाकुर कवि और उपन्यासकार दोनों। मेरे जाने के बाद इस तिकड़ी ने चौकड़ी भरना शुरू किया। कुछ दिनों बाद श्री नारायण लाल परमार बागबाहरा से आकर महासमुन्द में सप्ताहांत व्यतीत करने लगे। उस समय दो साहित्यकार और थे। एक जटाशंकर शर्मा और दूसरे मनमोहनसिंह ठाकुर। जटाशंकर शर्मा वयोवृद्ध थे इसलिये उन्हें गोष्ठी की अध्यक्षता का दायित्व सौंप दिया जाता। परमार जी तब 'धर्मयुग' में छपते।

जयशंकर 'नीरव' कथा मासिक 'विनोद' में। मनमोहनसिंह ठाकुर ब्रजराज स्कूल के हेडमास्टर थे। जयशंकर 'नीरव' उसी स्कूल में सहायक अध्यापक थे। और विश्वेन्द्र ठाकुर शासकीय उच्चत्तर माध्यमिक शाला महासमुन्द में अध्यापक थे। मनमोहनसिंह ठाकुर का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों अद्भुत था। वे पान की गिलौरी मुंह में दबाये, मोटी कापी लिये हँसते हुए मनोहर होटल में

धमकते। महासमुन्द के पुराने स्टेण्ड के समीप स्थित 'मनोहर होटल' तब दिल्ली के काफी हाऊस या भोपाल के भारत भवन की तरह साहित्य संगोष्ठी का महत्वपूर्ण केन्द्र था। संध्या 6 बजे यह गोष्ठी प्रांरभ होती और तब तक चलती जब तक मनोहर भाई होटल बंद करने की धमकी नहीं देते। मनमोहनसिंह ठाकुर नई कविता का मजाक उड़ाते। 'कल्पना' में प्रकाशित कविताओं की वे पेरोडी करते। हम सबको वे अपनी लेखकीय प्रतिभा के सामने कीट पतंगा मानते और जमकर मजाक उड़ाते। उन्हें अपनी सेहत पर गर्व था और हम सबको वे तिनका के समान एक फूंक से उड़ा देने की प्रायः धमकी दिया करते। मैने उनके व्यक्तित्व पर केन्द्रित एक धारावाहिक व्यक्ति चित्र 'नोक झोंक' में प्रारंभ किया जो आगरा से प्रकाशित विख्यात हास्य व्यंग्य की पत्रिका थी। आगे चलकर लतीफ घोंघी भी उनसे प्रभावित हुए।

कविताओं के साथ हास्य व्यंग्य लिखने का यह प्रारंभिक दौर था। परमार जी के गीत तब तक प्रसिद्ध हो रहे थे। विश्वेन्द्र ठाकुर नई कविता लिखते और नई कविता की पैरवी करते। उनकी नई कविता कई बार हम लोगों को दुखद लगती। मनमोहनसिंह ठाकुर उन्हें आता देख भागने की तैयारी शुरू कर देते। प्रायः वे कहा करते कि बाबू नई कविता लिखने में कौन सी प्रतिभा की जरूरत है। मैं ऐसी कविताएं एक दिन में पचासों लिख सकता हूँ। वो तो अच्छा हुआ एक दिन इंधन संकट के कारण लकड़ी की जगह उन कविताओं की डायरी भोजन पकाने के काम आ गई नहीं तो हिन्दी साहित्य को उनके व्यक्तित्व के साथ-साथ कृतित्व का भी बोझ उठाना पड़ता।

जिस तरह हिन्दी साहित्य का प्रथम प्रामाणिक इतिहास लिखने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है वही श्रेय महासमुन्द में साहित्य गोष्ठियां आयोजित करने का हम लोगों को है। चौक के पास स्थित कांग्रेस भवन के सभाकक्ष में हम काव्य गोष्ठी आयोजित करते। मुश्किल से पैसे जुटाकर दरी, स्पीकर और नाश्ता की व्यवस्था करने,

साढ़े आठ बजे से दस बजे तक गोष्ठी में भाग लेने वाले कविताओं की उद्घोषणा करते मगर मजाल है कि कोई उधर आँख उठाकर देखता, सभाकक्ष में आना तो दूर की बात है अंततः सात आठ कवि काव्य पाठ करते, नाश्ता करते, चाय पीते, दरी समेटते, स्पीकर निकालते और आधीरात के समय एक असफल गोष्ठी के सफल आयोजन की चर्चा करते हुए घर लौट आते। ऐसा हर पन्द्रह दिन के बाद होता। लोग यह तय किये बैठे थे कि वे हमें कवि नहीं बनने देंगे कम से कम अपनी ओर से कोई प्रयास नहीं करेंगे और हम लोग तय किये बैठे थे कि बगैर संघर्ष के कोई कवि नहीं बन सकता इसलिये हम रवीन्द्र नाथ ठाकुर के बताये मार्ग पर बढ़ते रहेंगे। उन्होंने जैसे हम लोगों के लिये ही कहा था कोई नहीं हो साथ तो एकला चलो रे।

महासमुन्द में छोटे छोटे कवि सम्मेलन के आयोजन का सिलसिला तब प्रारंभ हो चुका था। स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, बसंत पंचमी, होली जैसे खास पर्वों पर उसी कांग्रेस भवन के बाहर तखत बिछाकर कवि सम्मेलन का आयोजन करते जिसके भीतर हमारी काव्य गोष्ठियां होती। पचीस पचास लोग दरी पर बैठकर कविताएं सुनते बाकी चौक की दुकानों के आसपास खड़े होकर यह जानने की कोशिश करते कि छोटे से शहर में अचानक इतने कवि कहां से प्रकट हो गये। लोग वीरोचित मुद्रा में काव्य पाठ करते और जब कवि सम्मेलन का अंत होता श्रोता दरियों पर सोये हुए मिलते। जिस तरह देश को जगाने में गांधी जी को काफी वक्त लगा वही स्थिति यहां भी थी। काफी हिलाने डुलाने और झककोरने के बाद वे उठते।

कवि सम्मेलन का प्रथम आमंत्रण भी महासमुन्द में रहते हुए मिला। आरंग के सुप्रसिध्द छविगृह में कवि सम्मेलन का आयोजन था। नंदू लाल चोटिया कवि सम्मेलन के संचालक थे। बागबाहरा से परमार जी और महासमुन्द से विश्वेन्द्र ठाकुर और मुझे आमंत्रित

किया गया था। हम सब ट्रेन से आरंग पहुंचे। स्टेशन से दो किलोमीटर चलकर आरंग बस्ती पहुंचे। भोजन वगैरह के बाद कवि सम्मेलन प्रारंभ हुआ। सिनेमाहाल भरा हुआ था। लोगों ने कवि सम्मेलन का भरपूर आनंद लिया। सफल सम्मेलन से उत्साहित कवि एक दूसरे को काफी देर तक बधाई देते रहे। एक दूसरे की प्रशंसा करते रहे। तभी संयोजक लपका हुआ आया और परमार जी से बोला दुवन्नी दीजिये। कहते ही सुदीर्घ जेब से दुअन्नी निकालकर परमार जी ने दुअन्नी संयोजक की फैली हुए हथेली पर रख दी। संयोजक ने परमार जी के हाथों में दो रूपये का नोट थमाते हुए कहा आपका मार्ग व्यय। परमार जी खिसियाये हुए देखते रहे और संयोजक आगे बढ़ गया। बाद में परमार जी ने बताया बागबाहरा से आरंग का मार्ग व्यय एक रूपये चौदह आना होता था। पत्र पुष्प के रूप में मार्ग व्यय देने का उल्लेख आमंत्रण में था। संयोजक उसी के अनुसार राशि देकर जा चुका था। हम सबके लिये यह एक दिलचस्प अनुभव था।

उन्हीं दिनों महासमुन्द से एक साप्ताहिक अखबार का प्रकाशन शुरू हुआ। अखबार के सम्पादक जनपद सदस्य थे। उन्होंने आग्रह किया कि मैं उनके अखबार में एक व्यंग्य कॉलम प्रति सप्ताह लिखूं। जिस समय यह आमंत्रण मिला मैं कृष्णचंदर के व्यंग्य उपन्यास 'एक गधे की आत्मकथा' पढ़कर मुग्ध था। सोचा उसी शैली में व्यंग्य कॉलम लिखा जाय। कॉलम का प्रकाशन शुरू हो गया। 6–7 अंक तक सब ठीक चलता रहा। फिर अचानक एक दिन सम्पादक जी से मुलाकात हुई। मिलते ही वे मुझ पर टूट पड़े। बोले आपने तो मुझे बर्बाद कर दिया। पता है जो व्यंग्य आपने लिखा वह सम्पादक के मालिक पर था। उन्होंने पढ़ते ही अखबार का प्रकाशन बंद कर दिया और मुझे सम्पादक की नौकरी से अलग कर दिया। वे मुझसे काफी दिनों नाराज रहे और शहर भर उस व्यंग्य के कारण नौकरी से निकाले जाने की चर्चा करते रहे। मुझे दुःख तो जरूर हुआ मगर यह भी लगा कि व्यंग्य का असर ज्यादा तीव्रता के साथ

होता है । 'हास्य व्यंग्य' लिखने की प्रारंभिक तैयारी धीरे धीरे इस विधा को 'आत्मसात' करने की कोशिश में बदल गई । आगे चलकर फिर चाहे कितनी ही विधाओं में लिखता रहा लेकिन कहलाया व्यंग्यकार ही ।

इसी बीच महासमुन्द में छत्तीसगढ़ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संयोजन में विशाल अधिवेशन हुआ । पदुमलाल पन्नालाल बख्शी गजानन माधव मुक्तिबोध, आचार्य विनय मोहन शर्मा सहित सैकड़ों साहित्यकार आमंत्रित किये गये । गुरूदेव कश्यप, हरिठाकुर, बच्चू जांजगीरी, नारायण लाल परमार, लाला जगदलपुरी, गजेन्द्र तिवारी, प्रभंजन शास्त्री, जयशंकर 'नीरव', विश्वेन्द्र ठाकुर सभी आयोजन समिति में थे । हम सब आतिथ्य में जुटे हुए थे । काफी चर्चा हुई । कवि सम्मेलन हुआ । इसी अधिवेशन के अवसर पर रात्रि के समय साहित्यकारों को जहां ठहराया गया था उस हॉल में मुक्तिबोध से उनकी सुप्रसिध्द कविता 'अंधेरे में' सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ । मुक्तिबोध जी ने जिस तल्लीनता से उस कविता का पाठ किया उस तल्लीनता का प्रभाव सभी के भीतर मौजूद था । बाद में जब मैं उन्हें विदा करने के लिये स्टेशन गया तब प्रथम श्रेणी के डिब्बे में यात्रा करने से मुक्तिबोध जी ने मना कर दिया । वे तृतीय श्रेणी के सामान्य डिब्बे में ही बैठकर गये ।

मनोहर शर्मा तब वेदों को काव्य रूप देने में जुटे हुए थे । बड़ी महत्वाकांक्षी योजना थी । विश्वेन्द्र ठाकुर 'बहराम चोट्रा का किस्सा' लिखकर सबको चौंका चुके थे । उन्होंने एक व्यंग्य उपन्यास के बाद फिर कोई व्यंग्य नहीं लिखा। नारायण लाल परमार जी का उपन्यास 'पूजामयी' चिंगारी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ । इसी प्रकाशन से कुशवाहा कांत के उपन्यास प्रकाशित हो रहे थे जो देवकीनंदन खत्री के उपन्यास चन्द्रकांता संतत्ति के बाद सर्वाधिक पढ़े गये । परमार जी ने यह उपन्यास मुझे समीक्षा के लिये दिया और सन् 1960 के आसपास पूजामयी उपन्यास की समीक्षा छपी । जिस

तरह कोलम्बस भारत के धोखे में अमेरिका जा पहुंचा वही स्थिति मेरी हुई। 'समीक्षा' लिखने का सिलसिला अचानक शुरू हो गया जो अभी तक जारी है।

सन् 1962 के वर्षान्त में चीन ने भारत पर आक्रमण किया। मैं सेकण्ड लेफ्टिनन्ट की ट्रेनिंग में चला गया। प्रशिक्षण में उत्तीर्ण होने के बाद मैं बेसिक ट्रेनिंग कालेज बस्तर में बकायदा अध्यापक प्रशिक्षार्थियों को ट्रेनिंग देने लगा। कुछ दिन इसमें रहने के बाद स्वतः इससे अलग हो गया। आफिसर्स ट्रेनिंग स्कूल कामठी में धनंजय वर्मा और हनुमंत नायडू राजदीप भी थे। उन्हें युनिफार्म में परेड करते हुए देखकर मुझे प्रसन्नता होती थी। कांकेर आने के बाद मुझे अपने जीवन का प्रथम कवि सम्मेलन आयोजित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। सातवें दशक के सभी महत्वपूर्ण कवियों को आमंत्रित किया। रियासत के रिटायर्ड जेलर साहब अच्छे कवि थे। उन्होंने कांकेर महाराजा से मिलकर उन्हें मुख्य अतिथि बनने के लिये तैयार कर लिया। महाराजा की ओर से सभी आमंत्रित कवियों को राजमहल में 'भोज' पर बुलाया गया। मेरी जानकारी में छत्तीसगढ़ में ऐसा राजकीय भोज कभी कवियों के लिये आयोजित नहीं किया गया। कोमलदेव क्लब के प्रांगण में आयोजित यह कवि सम्मेलन सबके लिये स्मरणीय बन गया।

कांकेर में रहते हुए मेरा पहला प्रसिद्ध व्यंग्य 'किस्सा पांच किलो गेहू का' देशबन्धु में प्रकाशित हुआ। इसे पढ़कर लतीफ घोंघी ने पहली बार प्रशंसा करते हुए पत्र लिखा। इस व्यंग्य के बाद व्यंग्य लिखने का जो सिलसिला शुरू हुआ। वह आज तक जारी है। सन् 1970 में 'भगवान विष्णु की भारत यात्रा' का धारावाहिक प्रकाशन सरिता में प्रारंभ हुआ। सन् 1972 में विश्व पाकेट बुक के पहल सेट में यह उपन्यास प्रकाशित हुआ। पाठकों ने इसे दिलचस्पी से पढ़ा और पत्रों के जरिये हौसला बढ़ाया।

प्रत्येक लेखक के जीवन में कभी कभी ऐसे लोग मिल जाते हैं जो लिखने के औचित्य के द्वंद्व से लेखक को मुक्त कर जाते हैं। मेरे साथ भी एक बार ऐसा हुआ। एक नेत्रहीन व्यक्ति मेरा पता पूछता रिक्शे से द्वार पर उतरा। मैं उसे सहारा देकर भीतर ले आया। बैठने के बाद उसने बताया कि वह एक नेत्रहीन स्कूल का छात्र है। मुझे आकाशवाणी में काफी दिनों से सुन रहा है। इच्छा हुई तो मिलने चला आया। मैं कृतज्ञ भाव से उसकी ओर देख रहा था यद्यपि मेरे किसी भी भाव को जानने की क्षमता उसमें नहीं थी। भोजन के बाद मैं उसे बस स्टैण्ड छोड़ना चाहता था लेकिन उसने मनाकर दिया। केवल रिक्शा बुला देने के लिये कहा। उसके जाने के बाद मुझे विश्वास हो गया कि लिखना कितना महत्वपूर्ण और जरूरी है। उस दिन से मन में फिर लिखने के औचित्य को लेकर कोई सवाल नहीं उठा?

●●●

व्यंग्यकार की भाषा ज्यादा प्रभावी और मारक होती है

त्रिभुवन पाण्डेय

महावीर अग्रवाल – विसंगतियों और विद्रूपताओं के उद्घाटित करने में क्या व्यंग्य लेखन सबसे अधिक समर्थ है ? यदि हाँ, तो कैसे ?

त्रिभुवन पाण्डेय : व्यंग्य प्रारंभ से ही इसी उद्देश्य के लिए लिखा जाता रहा। भारतेन्दु हरीशचन्द्र का सुप्रसिद्ध नाटक 'अंधेरनगरी चौपटराजा' आज भी अपने इसी सामर्थ्य के कारण प्रासंगिक है। यह नाटक आज से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व लिखा गया था। तब जैसा समाज और जैसी विसंगतियाँ थी आज भी वही समाज और वैसी ही विसंगतियाँ है। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, जी.पी. श्रीवास्तव से लेकर समकालीन व्यंग्यकार तक व्यंग्य के केन्द्र में विसंगतियों और विद्रूपताओं का प्रभावी तथा मार्मिक चित्रण रहा है। भविष्य में भी व्यंग्य अपने इस दायित्व का निर्वाह करता रहेगा। व्यंग्य का महत्व, उसकी प्रासंगिकता, उसका व्यक्तित्व इसीलिए शेष विधाओं से एकदम अलग है।

महावीर अग्रवाल – हास्य और व्यंग्य में आप क्या अंतर मानते हैं ? क्या व्यंग्य के लिए हास्य का होना आपकी दृष्टि में जरूरी है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : सन् 1950–60 में 'नोकझोंक' पत्रिका में मेरी जो प्रारंभिक रचनाएं प्रकाशित हुई उनमें हास्य प्रमुख था। बाद में हास्य की मात्रा कम होती गई और उसका स्थान

व्यंग्य लेता गया। चार्ली चेपलिन ने अपनी आत्मकथा में एक जगह लिखा है कि जिन्दगी को जब दूर से देखो तो वह हास्य (कामेडी) है और जब उसे निकट से देखे तो उसमें पीड़ा (ट्रेजडी) है। व्यंग्यकारों की यात्रा हास्य से प्रारंभ होकर व्यंग्य की ओर प्रस्थित होती है। जीवन को देखने की दृष्टि जैसे जैसे ् ुभव संपन्न होती जाती है व्यंग्य में हास्य कम होता जाता है। जीवन की मार्मिक आलोचनात्मक अभिव्यक्ति की एक खास शैली है व्यंग्य। हास्य और व्यंग्य का आनुपातिक उपयोग किया जाता है। व्यंग्य के लिए हास्य अनिवार्य नहीं है।

महावीर अग्रवाल – व्यंग्य को अभी तक एक पृथक विधा के रूप में नहीं माना जाता बल्कि रचना में अंतर्भूत 'स्पिरिट' माना जाता है। आपका इस संबंध में क्या विचार है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : बख्शी सृजन पीठ में प्रस्तुत अपने आलेख 'व्यंग्य के आलोचना शास्त्र की खोज' में मैने कहा था कि जिस तरह 'संवाद' के प्रयोग के कारण किसी उपन्यास या कहानी को नाटक नहीं कहा जा सकता, कथा होने से किसी महाकाव्य को उपन्यास नहीं कहा जा सकता उसी तरह व्यंग्य की आंशिक उपस्थिति से किसी रचना को व्यंग्य नहीं कहा जा सकता है। व्यंग्यकार व्यंग्य का उपयोग 'केजुअल' रूप में नहीं करता। व्यंग्य उसकी जीवन दृष्टि में समाहित होकर उसे विसंगतियों को देखने की ऐसी अपूर्व दृष्टि देता है जिसे अभिव्यक्त करते हुए वह विशेष भाषा कौशल, अभिव्यंजना शैली और अभिव्यक्ति की ऐसी नवीन भंगिमा प्राप्त कर लेता है जिससे पाठक सहज ही उसकी ओर आकर्षित हो उठता है। इसलिए 'व्यंग्य' को विधा कहने में 'संकोच' की आवश्यकता नहीं है। डॉ. श्यामसुंदर घोष का इस संदर्भ में कथन है, 'पहले के कुछ लेखक' 'व्यंग्य' भी लिखते थे। अब व्यंग्य किसी विधा में न रहकर उसका मूल कलेवर बन गया है। ऐसी स्थिति

में उसे विधा होना ही था। डॉ शंकर पुणतांबेकर का कथन है – किसी विधा की स्थापना में उसका अपना अनुशासन और शिल्प होता है। यही बात व्यंग्य पर भी लागू होती है। व्यंग्य का अपना तन प्राण है। इसे नहीं समझ पाने के कारण ही व्यंग्य को मात्र किसी विधाका विशेषण मान लिया जाता है जबकि वह स्वयं संज्ञा है एक विधा की। सुरेश उपाध्याय, नरेन्द्र कोहली और प्रेम जनमेजय जैसे महत्वपूर्ण रचनाकारों का भी यही कथन है।

महावीर अग्रवाल – व्यंग्य के छोटे कैन्वस में सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्थितियों की अभिव्यक्ति कहां तक संभव है ? क्या आपको इन स्थितियों को स्पष्ट करने में विधागत परेशानी का सामना करना पड़ता है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : व्यंग्य का कैनवास छोटा नहीं है। आप जीवन के सूक्ष्मतम से लेकर वृहत्तर अनुभव की अभिव्यक्ति व्यंग्य के जरिए कर सकते हैं। श्री हरिशंकर परसाई इसके सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य उपन्यास 'रागदरबारी' दूसरा उदाहरण है। शरद जोशी, रविन्द्रनाथ त्यागी, प्रभाकर चौबे, लतीफ घोंघी, विनोद साव, अश्विनी दुबे, विनोद शंकर शुक्ल का व्यंग्य साहित्य जीवन के बहुआयामी संदर्भों को छूता है। जीवन का शायद ही कोई पक्ष हो जो व्यंग्यकार की पैनी दृष्टि से बच सके। इसके विधा होने का यह भी एक प्रमाण है।

महावीर अग्रवाल – साहित्य की अन्य विधाओं से व्यंग्य की भाषा को आप किस तरह अलग करते हैं, और व्यंग्य के लिए कैसी भाषा को जरूरी मानते हैं ?

त्रिभुवन पाण्डेय : भाषा की तीसरी आँख 'व्यंजना' है। अमिधा और लक्षणा उसकी प्रकट दो आँखे हैं। यह तीसरी आँख जब किसी को अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्राप्त होती है तब वह

व्यंग्य लिखना प्रारंभ करता है। व्यंग्य की भाषा सबसे ज्यादा आम आदमी के निकट की भाषा होती है। भारतेन्दु का व्यंग्य इसका प्रमाण है। एक तरफ भाषा का जीवंत रूप और दूसरी तरफ उसकी व्यंजना शक्ति का कौशल, दोनों मिलकर व्यंग्य की भाषा निर्मित करते हैं। स्वाभाविक है व्यंग्यकार की भाषा ज्यादा प्रभावी और मार्मिक होती है। वह भाषा की शक्ति का उसी तरह अन्वेषण करता है जैसे वैज्ञानिक 'अणु' का। बिहारी की कविता के लिए कभी कहा जाता था 'सत सैया के दोह रे ज्यों नावक केतीर देखन में छोटे लगे, घाव करें गंभीर' यह बात सभी अच्छी व्यंग्य रचना के संदर्भ में कही जा सकती है।

महावीर अग्रवाल – आपकी पहली व्यंग्य रचना कब और किस पत्रिका में छपी ? उसका विषय क्या था ?

त्रिभुवन पाण्डेय : मेरी पहली रचना सन् 1958 में रायपुर के एक समाचार पत्र में छपी थी। विषय था 'आलू'। 'आलू' महीने के रोज की सब्जी थी। खाते खाते ऊब हो गई थी। इसी ऊब की अभिव्यक्ति व्यंग्य के रूप में इस पहली रचना में हुई थी। आलू 'चमचो' की तरह बड़ा मिलनसार होता है। वह सभी सब्जी के साथ घुल मिल जाता है। मध्य वर्ग और निम्न वर्ग 'आलू' से बच नहीं सकता। अभिजात्य वर्ग भी 'चिप्स' के रूप में उसका उपयोग करता है। आलू की स्थिति शाश्वत है। उसमें कोई फर्क नहीं होता।

महावीर अग्रवाल – क्या आपने ऐसी भी रचना लिखी है जिसमें व्यंग्य ना हो लेकिन प्रकारांतर से वह समाज की स्थितियों को सामने रखने वाले हों ? यदि हाँ, तो उस लेखन का आपके सामने क्या कारण रहा है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : मेरा एक गीत संग्रह 'सूनो सूत्रधार' पिछले वर्ष प्रकाशित हुआ। कविता व्यंग्य के साथ-साथ प्रारंभ से लिखता रहा हूँ। रिपोर्ताज भी लिखा है। विधा का परिवर्तन

कई बार ताजगी देता है। अभिव्यक्ति की नयी दिशा देता है। उद्देश्य मगर वही होता है कि वह समाज सापेक्ष हो। प्रसांगिक हो। आत्ममुग्ध होने के लिए ना लिखा जाए। लेकिन अलग–अलग दिशाओं में जाकर हर बार नवीन शक्ति के साथ व्यंग्य की ओर वापस लौट आया हूँ।

महावीर अग्रवाल –क्या व्यंग्य लेखन के कारण आपको व्यक्तिगत जीवन में कभी संघर्ष का सामना करना पड़ा ? कोई अविस्मरणीय घटना ?

त्रिभुवन पाण्डेय : व्यंग्य लेखन कभी सुरक्षित नहीं होता। उसे ज्ञात अज्ञात रूप में अनेक छोरों से आघात का सामना करना पड़ता है। सत्य कहना, बोलना यालिखना कभी लोगों को स्वीकार्य नहीं हुआ। कबीर हो या परसाई लक्ष्मीकांत वैष्णव हो या शरद जोशी सबको आहत करने वाली स्थितियों से गुजरना पड़ा है। "भगवान विष्णु की भारत यात्रा" उपन्यास के प्रकाशन के बाद प्रतिक्रियावादी शक्ति केन्द्रों द्वारा मेरी भी जाँच पड़ताल हुई थी। सभी प्रभावी रचनाकारों के साथ ऐसा होता रहा है।

महावीर अग्रवाल – आप व्यंग्य क्यों लिखते हैं ?

त्रिभुवन पाण्डेय : व्यंग्य मेरी प्रकृति है। अब तो मेरा व्यक्तित्व ही उससे रचा बुना लगता है। प्रारंभ में ऐसा कुछ नहीं था। किसी की प्रवृत्ति का मजाक उड़ाना, किसी घटना को इस तरह प्रस्तुत करना कि वह रोचक बन जाए। प्रारंभ में 'व्यंग्य' को लेकर कोई खास गंभीरता नहीं थी लेकिन धीरे–धीरे जब इसकी शक्ति का अंदाजा लगा, इसकी अभिव्यक्ति क्षमता के भीतर मौजूद मार्मिकता और करूणा का असर हुआ तब 'व्यंग्य' का वास्तविक लेखन प्रारंभ हुआ। अब तो लगता है इसका कोई और छोर नहीं है। हर बार जीवन की विसंगति नवीन रूप में उपस्थित हो जाती है। व्यंग्य भी नवीन मुद्रा के साथ विश्लेषण व प्रहार में जुट जाता है।

महावीर अग्रवाल –आप किस राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध व्यंग्यकार से अधिक प्रभावित हैं ? उनकी किसी एक रचना का सार बताइए जिसमें जनमानस को प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता हो या जिससे आपकी दिशा निर्मित हुई हो ?

त्रिभुवन पाण्डेय : प्रारंभ में मैं कृष्ण चंदर से प्रभावित रहा। 'एक गधे की आत्मकथा' का व्यंग्य अद्भुत था। फिर परसाई जी से मुलाकात की। उन्हें पढ़कर मैं अभिभूत हो उठा। उनके कहने पर चेखव को पढ़ा। बर्नाड शॉ को भी पढ़ा। शेक्सपीयर का 'जैसा तुम चाहो' चार्ली चैप्लिन की जीवन कथा फिर उनकी फिल्में, शरद जोशी के साथ दुर्ग में मुलाकात। फिर उनकी रचनाओं को प्रारंभ से अंत तक पढ़ गया। 'रागदरबारी' और 'यथासंभव' 'हिन्दी व्यंग्य' के दो महत्वपूर्ण नक्षत्र हैं। इधर छत्तीसगढ़ के व्यंग्यकारों को गहरी दिलचस्पी से पढ़ता रहा हूँ। नोबल पुरस्कार प्राप्त एक नाट्य लेखन का व्यंग्य पढ़कर बेहद प्रभावित हुआ था। एक अंधा और लंगड़ा भीख मांगने निकलते हैं। रास्ते में उन्हें पता चलता है। कोई संत लोगों की रूग्णता दूर कर रहा है। लोग उन्हें उसके पास जाने का सुझाव देते हैं। इस पर वे गंभीरता पूर्वक विचार करते हैं। फिर निर्णय लेते हैं कि वे किसी के पास नहीं जाएंगे। यदि वे स्वस्थ हो गए तो वे बेरोजगार हो जाएंगे। उन्हें कोई भीख नहीं देगा। बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य था।

महावीर अग्रवाल – क्या व्यंग्यकार के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता का होना आप जरूरी मानते हैं ? यदि हां, तो क्यों ? यदि नहीं, तो क्यों ?

त्रिभुवन पाण्डेय : व्यंग्यकार के लिए यह प्रश्न ही अप्रासंगिक है। व्यंग्यकार सदैव पीड़ितों और शोषितों का पक्षधर होता है। अन्याय का प्रतिरोध उसका मूल स्वर होता है। वह व्यंग्य के जरिए किसी कला मूल्य या जीवन दर्शन की खोज नहीं

करता। वह 'दुष्ट' तत्वों की खोज करता है। जीवन विरोधी व्यवस्था की पड़ताल करता है और बेबाकी के साथ उसके खिलाफ लिखता है। प्रतिबद्धता व्यंग्यकार का अभिन्न हिस्सा है। उसे किसी प्रतिबद्धता की अलग से आवश्यकता नहीं पड़ती।

महावीर अग्रवाल – रचनाकार के लिए सामाजिक दायित्व का बोध जरूरी माना जाता है। अतः व्यंग्यकार की हैसियत से आप बताइए कि लेखक का क्या कुछ भी निजी नहीं रह जाता ?

त्रिभुवन पाण्डेय : लेखक की निजता या उसका आत्मसत्य की उसकी पहचान है। सामाजिक दायित्व का एक लेखक के रूप में निर्वाह करते हुए कहीं ना कहीं पर अपनी व्यक्तिगत रूचि-अरूचि को व्यक्त करता चलता है। लेखन, लेखक का आत्मविस्तार है। उसकी शैली ही उसका व्यक्तित्व फिर उसके विचार है। इन सब में वह दूसरे व्यंग्यकारों से कहीं ना कहीं अलग दिखता है। व्यंग्यकार सभी है लेकिन जो परसाई है ठीक शरद जोशी वैसे नहीं है। जैसे प्रभाकर चौबे हैं, लतीफ घोंघी ठीक वैसे ही नहीं है। इस निजत्व के बगैर लेखक की अपनी पहचान बन ही नहीं सकती।

महावीर अग्रवाल –व्यंग्यकार के अंदर व्यक्ति और समाज के हितों के बीच का द्वंद क्या किसी सार्थक लेखन की भूमिका बनाता है।

त्रिभुवन पाण्डेय : लेखक व्यक्ति भी होता है। वह नागरिक के रूप में समाज की इकाई होता है। और सामाजिक निर्देशों का पालन करता है। लेकिन जब लिखने बैठता है तब उसका उसी तरह स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्मित हो जाता है जैसे किसी विचारक या चिंतक का। वह लिखते समय सभी सीमाओं को अतिक्रमित करने का प्रयास करता है जिससे वह सत्य के अधिक

से अधिक निकट पहुंच सके। आरोपित जीवन मूल्य लेखन की अवधि मे तुच्छ होते हैं। वो वहीं लिखता है जो वह लिखना चाहता है।

महावीर अग्रवाल – व्यंग्य लेखन में वस्तु और शिल्प में आप किसे प्रमुखता देते हैं ? और क्यों ?

त्रिभुवन पाण्डेय : वस्तु यदि प्राण है तो शिल्प शरीर। दोनों अभिन्न है। दोनों प्रमुख है। लेखक दोनों में से किसी को गौण नहीं मान सकता। वह वस्तु के प्रति जितना सचेत होता है, उतना ही सचेत वह शिल्प के प्रति भी होता है। बढ़िया से बढ़िया विचार के बगैर श्रेष्ठ शिल्प प्रभाव डालने में असमर्थ लगेगा। इसी तरह श्रेष्ठ शिल्प ही मगर वस्तु निष्प्राण हो तब भी रचना का प्रभाव सीमित होगा। श्रेष्ठ रचनाकार दोनों के प्रति सचेत होता है।

महावीर अग्रवाल – व्यंग्य में बिम्ब, प्रतीक और मिथकों का उपयोग किस तरह हो ?

त्रिभुवन पाण्डेय : लेखक अपने 'फार्म' की तलाश स्वयं करता है। वह किस तरह अपने कथ्य को प्रभावी रूप से सम्प्रेषित कर सके यही उसकी चिंता होती है। शिल्पगत विविधता इसी खोज में उपलब्ध होती है। कोई रचनाकार पूर्व निर्धारित शैली के फ्रेम से नहीं निकलता। लेखन का कभी कोई अभिव्यक्ति रूप नहीं तैयार किया जा सकता। यह कोई 'रेडीमेड' कपड़ा बनाने का काम नहीं है। प्रत्येक लेखक अपनी अभिव्यक्ति के लिए नए 'फार्म' की खोज करता है।

महावीर अग्रवाल – आप अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में कुछ बताइए। आप विषय वस्तु का चुनाव किस आधार पर करते हैं ?

त्रिभुवन पाण्डेय : पहले सब कुछ अनायास था। लिखना कोई बहुत सतर्क कार्य प्रारंभ में नहीं था। हास्य प्रमुख था। व्यंग्य

का स्वरूप भी कुछ बहुत मार्मिक नहीं होता था। जैसे–जैसे लेखन का विकास होता गया शिल्प और वस्तु का विन्यास और चयन सतर्क होकर किया जाने लगा। अब उद्देश्य केवल मनोरंजन या थोड़ी बहुत टीस उत्पन्न करना नहीं रह गया था। व्यंग्य का प्रयोजन ज्यादा प्रभावी और मानवीय जीवन के मंगल के लिए अनिष्टकारी तत्वों के विरूध्द संघर्ष का माध्यम बनता गया। अपना सुख–दुख धीरे–धीरे वृहत्तर रूप लेने लगा। एक बात तो सुनिश्चित है व्यंग्य कभी बिला वजह नहीं लिखा गया। संकीर्णता के दायरे में रहकर भी नहीं लिखा गया। अतिशयोक्ति और अतिरंजित रूप में भी नहीं लिखा गया। व्यंग्य प्रारंभ से जीवन का 'सतर्क प्रहरी' रहा है। आज भी उसकी यह भूमिका है। भविष्य में भी यह कोशिश जारी रहेगी।

महावीर अग्रवाल – वर्तमान में क्या व्यंग्य लेखन से सामाजिक बदलाव संभव है ? यदि हाँ तो वह समाज को किस तरह बदलाव की दिशा में प्रेरित करता है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : साहित्य समाज को सदैव बदलता आ रहा है। टाल्सटॉय हो या गोर्की, निराला हो या रवीन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त हों या दिनकर, भारतेन्दु हरिशचन्द्र हों या परसाई सभी ने अपने समय के चिंतन के प्रभावित किया। प्रबुद्ध लोगों के साथ–साथ सामान्य लोगों के भीतर नई जीवन दृष्टि निर्मित करने का प्रयत्न किया। आज भी वह प्रयास जारी है। भविष्य में भी साहित्यकार ऐसा प्रयास करते रहेंगे। व्यंग्य की भूमिका इस संदर्भ में और ज्यादा स्पष्ट है। व्यंग्य कभी अमूर्त नहीं होता। केवल चमत्कार के लिएकभी कोई व्यंग्य नहीं लिखा जाता। व्यंग्यकार सबसे ज्यादा समाज को प्रभावित करता है। सबसे ज्यादा पाठकों के निकट होता है। एक तरह से व्यंग्य समाज का प्रवक्ता है। समाज का सम्पूर्ण संघर्ष व्यंग्य के जरिए

अभिव्यक्त होता है । समाज में होने वाला परिवर्तन सदैव बहुत मद्धम लय में होता है इसलिए साफ तौर पर उसके परिवर्तन में जुटी शक्तियाँ प्रकट रूप में दिखलाई नहीं पड़ती ।

महावीर अग्रवाल –व्यंग्य के विकास और सार्थक फैलाव में रेडियो, दूरदर्शन और सम्मेलनीय मंचों की भूमिका पर आपके क्या विचार हैं ?

त्रिभुवन पाण्डेय : साहित्य के प्रारंभ में दो ही रूप थे – श्रव्य और दृश्य। लिखित रूप बाद में सामने आया जब मुद्रण सुविधा का विकास हुआ। लोगों को सुनने और देखने में ज्यादा आनंद आता था । आज भी यह दोनों रूप लोकप्रिय है । किताबें मँहगी होने के बाद लोगों के पास यही विकल्प रह गया है । सरकार यदि श्रेष्ठ साहित्य सस्ती कीमत पर उपलब्ध कराती तो आज पाठकों की संख्या करोड़ों में होती । रेडियो तो अभी भी अपनी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति परम्परा का निर्वाह कर रहा है लेकिन दूरदर्शन और मंच, बिकाऊ चीजें, लाभप्रद, पैसा बटोरनेवाले, लोकप्रिय कार्यक्रमों तक सीमित है । जब किसी संस्था का उद्देश्य ही मुनाफा कमाने तक सीमित रह जाए तब उसे सामाजिक प्रयोजनों से भला कितना सरोकार रह जाएगा ?

महावीर अग्रवाल – समकालीन आलोचक व्यंग्य लेखन पर क्या विचार रखते हैं ? आप उनकी आलोचनाओं पर किस हद तक सहमत हैं ?

त्रिभुवन पाण्डेय : आलोचक व्यंग्य की परवाह नहीं करते । व्यंग्यकार आलोचक की परवाह नहीं करते । वस्तुतः किसी भी व्यंग्य को समझने के लिए किसी तीसरे व्यक्ति की जरूरत ही नहीं पड़ती । व्यंग्य अपने को सम्प्रेषित करने के लिए स्वतः सक्षम है । जिस व्यंग्य को आलोचक की जरूरत पड़े वह व्यंग्य ही नहीं है । आलोचक रचना में 'शास्त्र' खोजता है जबकि

व्यंग्य 'शास्त्र' की खोज हे जिससे समाज की विसंगतियों पर सांघातिक प्रहार किया जा सके।

महावीर अग्रवाल – व्यंग्य का भविष्य आपके विचार में क्या हो सकता है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : व्यंग्य का भविष्य तब तक महत्वपूर्ण है जब तक समाज में एक भी अन्याय या अन्याय करने वाले व्यक्ति का अस्तित्व शेष है। जिस दिन समाज पूर्ण रूप से उत्पीड़न और शोषण से मुक्त हो जाएगा उस दिन व्यंग्य की भूमिका भी समाप्त हो जाएगी। भारतवर्ष में व्यंग्यकारों को कभी विश्राम मिलेगा उसकी संभावना अभी दूर तक नहीं दिखलाई पड़ रही है।

●●●

अंतर्यामी प्रधान द्वारा लिखा गया साक्षात्कार

त्रिभुवन पाण्डेय

1. मेरी पहली व्यंग्य रचना सन् 1958 में रायपुर के एक दैनिक में प्रकाशित हुए। बाद में आगरा से प्रकाशित होनेवाली 'नोकझोंक' पत्रिका में भी रचनाएँ उसी समय से प्रकाशित हुई।
2. व्यंग्य लिखने का मूल उद्देश्य है जीवन को कुरूप और दयनीय बनाने वाली शक्तियों के खिलाफ एक प्रतिरोधी वातावरण तैयार करना। जब तक ऐसी षड़यंत्रकारी जीवनविरोधी ताकते मौजूद है व्यंग्यकारों का सजग और सक्रिय रहना जरूरी है।
3. किसी भी व्यंग्यकार के लिये कथ्य का सतर्क चयन और प्रभावी शिल्प की खोज जरूरी है। पति–पत्नी, जीजा साली, मरीज डॉक्टर, प्रेमी–प्रेमिका जैसे लोकप्रिय कथ्य को दोहराते रहना अपना और पाठक का समय बरबाद करना है। उसी तरह साहित्यकार, शिक्षक जैसे लोगों पर व्यंग्य लिखना स्वयं का उपहास उड़ाना है। व्यंग्यकार को आज ज्यादा गहरी छानबीन करने की जरूरत है जिससे वह आर्थिक, राजनैतिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक वाणिज्यिक विसंगतियों को जान सके और पाठक का ध्यान उस ओर आकर्षित कर सके। हिन्दी व्यंग्य को 'यस मिनिस्टर' जैसे गहरे और सूक्ष्म व्यंग्य की आज जरूरत है।
4. व्यंग्यकार का दायित्व है समाज के सजग हिस्से को उन

स्थितियों से अवगत करा देना जो समाज के लिये चिंताजनक और विरोधी है। आगे समाज के सजग और परिवर्तशील शक्तियों का दायित्व है कि वे उन स्थितियों के खिलाफ संघर्ष करें। यह व्यवस्था का भी दायित्व है कि वह गंभीर, घातक, संक्रामक समाज विरोधी रूढ़ियों तथा ताकतों को नियंत्रित करें।

5. हास्य किसी भी समाज के स्वस्थ मन की सूचना है। जो स्वयं पर हँस सकता है वह सबसे ज्यादा स्वस्थ्य होता है। व्यंग्य आलोचकीय बुद्धि है। कभी-कभी व्यंग्य को ग्राहय और प्रियं ब्रुवात बनाने के लिये हास्य का सहारा लेना पड़ता है। हास्य भी उत्कृष्ट व्यंग्य हो सकता है लेकिन इसके लिये चार्ली चेपलीन जैसे मार्मिक और सूक्ष्म दृष्टि चाहिये। हिन्दी में हास्य अभी अभिव्यक्ति के बहुत प्राथमिक स्तर पर है।

6. स्तम्भ लेखन का उद्‌देश्य सामयिक ज्वलंत समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करना होता है। व्यंग्य स्तम्भ भी इसी उद्‌देश्य से लिखा जाता है। शाश्वत साहित्य लिखने के लिये ज्यादा समय, चिंतन, व्यापक अनुभव, श्रेष्ठ शिल्प और धैर्य चाहिए। इनका संबंध भी गहरे जीवन मूल्यों से होता है। दोनों ही अपनी-अपनी भूमिका में अलग और महत्वपूर्ण है।

7. छत्तीसगढ़ में पिछले वर्ष तक 18 व्यंग्यकार थे। अब 20 हैं। इनमें से अधिकांश ने प्रासंगिक और पठनीय लिखा है। अखिल भारतीय व्यंग्य पत्रिकाओं में तीन चौथाई स्थान छत्तीसगढ़ के व्यंग्यकारों का होता है। यह किसी भी विधा के रचनाकारों के लिये संतोष की बात हो सकती है। चिंता केवल यही है कि छत्तीसगढ़ के व्यंग्यकार अपने सामर्थ्य का पूर्ण प्रदर्शन नहीं कर रहे हैं। कुछ संतुष्ट हैं, कुछ कथ्य के मामले में निश्चिंत हैं। देखना यही है कि व्यंग्य को और ज्यादा ताकतवर तथा श्रेष्ठ स्वस्थ देने में आगे कौन कितना

योगदान देता है। अभी तो हालत यही है कि सबकी दुकानें सजी है जबकि पाठक केवल आसपास उपस्थित महसूस होता है। संतोष की बात केवल यही है कि छत्तीसगढ़ के व्यंग्य साहित्य में जितनी विविधता है वह इस अंचल के व्यंग्कारों के व्यापक जीवन अनुभवों का प्रमाण है।

8. हिन्दी के व्यंग्यकारों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्री लाल शुक्ल, रविन्द्रनाथ त्यागी की रचनाओं का मैं प्रशंसक हूँ।

9. 'रिलेक्स' करने के लिये फिल्में देखा करता था। गप्पे मारना भी मेरा प्रिय टाइम पास रहा है। अब दोनों से वंचित हूँ। आज कल एकमात्र शौक है पढ़ना।

10. व्यंग्य लेखन के कारण सीधे तौर पर संकट का सामना नहीं करना पड़ा क्योंकि जो कुछ लिखा वह काफी सोच समझकर, छानबीन के बाद ही लिखा।

11. आलोचक भी उसी व्यवस्था का एक अंग है जो सम्पूर्ण जीवनस्थिति को अमूर्त बनाये रखने के लिये कृतसंकल्प है। आप यदि कलात्मक और अमूर्त है, तो आलोचक आपकी प्रशंसा करेगा। आलोचक शिल्प प्रेमी होता है। वह अभिव्यक्ति सौंदर्य में डूबा रहता है। वह ऐसे रचनाकारों का प्रशंसक होता है। जिसका समाज से आगामी 50 वर्षों तक कोई सरोकार नहीं होता। कृति और आलोचना का ऐसा सामाजिक सरोकार रहित गठबंधन जब तक है तब तक प्रासंगिक और जीवनोपयोगी रचनाएं आलोचक बुद्धि की पकड़ से दूर रहेंगी फिर चाहे वह व्यंग्य हो या कोई और साहित्य।

12. व्यंग्य का विकास गद्य और पद्य दोनों में हुआ है। यद्यपि कबीर से प्रारंभ व्यंग्य कविता आज उतनी प्रखर नहीं है लेकिन व्यंग्य कविताओं में समकालीन जीवन की विद्रुपताओं का

प्रामाणिक विवरण मिलता है। गद्य ज्यादा तेजी से विकसित हुआ क्योंकि गद्य में पाठक की कमी नहीं है साथ ही जीवन की बहुआयामी जटिल विसंगतियों की अभिव्यक्ति कविता के जरिये संभव भी नहीं है।

13. व्यंग्य विधा है। जिस तरह नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध सबकी अपनी विशिष्ट रचना प्रक्रिया है। वही व्यंग्य की भी है। व्यंग्य लेखन का अपना विशिष्ट स्वरूप है जो शेष साहित्य में नहीं है। सभी अन्य विधाओं की तरह यह भी एक विधा है।

14. अच्छा व्यंग्यकार वही हो सकता है जिसके पास गहन आत्मावलोकन, सजग चिंतन, सूक्ष्म दृष्टि, गहरी मानवीय सहानुभूति तथा नये ज्ञान के प्रति सदैव उत्सुक दृष्टि हो।

●●●

स्वाभाविक अभिव्यक्ति है कविता

त्रिभुवन पाण्डेय

महावीर अग्रवाल – कविता लिखना आपने कब शुरू किया ? यदि स्मरण हो तो यह भी बताइए कि आपकी प्रथम कविता का विषय क्या था ? साथ ही यह भी बताइए कि आपकी प्रथम कविता किस पत्रिका में और कब छपी थी?

त्रिभुवन पाण्डेय : काव्य लेखन लगभग सन् 1958–59 के आसपास प्रांरभ हुआ। पहली कविता उसी वर्ष 'महाकोशल' में प्रकाशित हुई। कविता का शीर्षक था 'अंतर्द्वंद' । मैं महासमुन्द में तब अध्यापक था। एक दिन किसी बात पर नाराज होकर एक छात्र को मैं ने दंडित किया। बाद में उसकी डबडबायी हुई आंखों को देखकर गहरा क्षोभ हुआ। यही पीड़ा काव्य अभिव्यक्ति में परिवर्तित हो गई। इस घटना के बाद मैने कभी किसी छात्र को प्रताड़ित नहीं किया। आज भी उस छात्र का चेहरा जेहन में उभर आता है। इसके पहले भी 1955 में कविता लिखने की कोशिश की थी, वह पूरी तरह स्मरण नहीं है।

महावीर अग्रवाल – आप कविता क्यों लिखते हैं ?

त्रिभुवन पाण्डेय : दरअसल लेखन के प्रारंभिक दिनों में कविता लिखने का कोई खास उद्देश्य नहीं था। प्यार–व्यार से लेकर प्रकृति, दोस्त, सामाजिक, ऊंच–नीच जैसे विविध विषयों पर कविता लिखकर आत्मसंतुष्टि मिलती थी। कुछ खास बात बनती नहीं थी। बस कविता जैसी कुछ पंक्तियां कागज पर उतर आती थीं। मगर तब इन्हीं टूटी–फूटी पंक्तियों को काव्य उपलब्धि मानकर गर्व से सबको सुनाया करते। दरअसल आज से 30 साल पहले कवि कहलाने में गौरव का अनुभव होता

था। लोग कवियों को आदर और विस्मय की नजरों से देखते थे। उन्हें कोमल संवेदनशील, कल्पना लोक में विचरण करने वाला, रहस्मय व्यक्ति समझा जाता था। उन दिनों की तुलना में आज कवि और कविता दोनों को लोग गंभीरता से नहीं लेते।

महावीर अग्रवाल – आप अपनी रचना प्रक्रिया के विषय में कुछ बताइये।

त्रिभुवन पाण्डेय : कविता बड़ी ही स्वभाविक अभिव्यक्ति है। कविता गढ़ी नहीं जा सकती। कविता गद्य की तरह योजना बनाकर नहीं लिखी जा सकती। कविता लिखने के लिए बेहद गहरे उतरना होता है। बाहर की तमाम आवाजों से पीछा छुड़ाकर अपने निपट एकांत में ही कविता लिखी जा सकती है। कविता का प्रारंभिक पंक्तियाँ सायास लिखी जाती है। लेकिन अच्छी कविता रचनाकार को स्वतः परिचालित करने लगती है। कविता बाद के रास्ते खुद तय करती है।

महावीर अग्रवाल – वस्तु और शिल्प में आप किसे प्रमुखता देते हैं और क्यों ?

त्रिभुवन पाण्डेय : वस्तु और शिल्प कविता के लिए दोनों महत्वपूर्ण है। श्रेष्ठ रचनाकार दोनों के प्रति सचेत होता है। शिल्प की नवीनता पाठक का ध्यान तुरन्त अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। नये प्रतीक और बिम्ब कविता को ज्यादा पुरअसर और मार्मिक बनाते हैं। वस्तु यदि समकालीन जीवन और द्वंद्व को अभिव्यक्त करने में निष्प्रभ है तो कविता का असर भी नहीं पड़ता। कभी–कभी वस्तु के अभाव को छुपाने के लिए भी शिल्प का इस्तेमाल किया जाता है लेकिन यह पच्चीकारी साफ–साफ नजर आती है। अंततः कविता अपने वस्तु के लिए ही स्मरण की जाती है।

महावीर अग्रवाल – कविता में बिम्ब, प्रतीक और मिथकों का उपयोग किस तरह हो ?

त्रिभुवन पाण्डेय : कविता में बड़े ही जटिल तथा अमूर्त कल्पनाओं को संप्रेषमीय बनाना पड़ता है । यही वजह हे कि कविता में प्रतीक तथा बिम्ब बड़े महत्वपूर्ण उपकरण बन जाते हैं। वस्तुतः नये बिम्ब कविता को चिरस्मरणीय बनाते हैं। शर्त यही है कि बिम्ब पूरे हों । आधे, अधूरे, एक दूसरे में उलझे बिम्ब कोई प्रभाव नहीं छोड़ते । उल्टे वे कविता को दुरूह बनाते हैं। कभी–कभी मिथक के प्रयोग से भी कविता प्रभावशाली हो उठती है । कभी–कभी वर्तमान को समझने के लिए अतीत की ओर वापस लौटना पड़ता है । इस यात्रा में भी मिथकों की सहायता जरूरी हो जाती है ।

महावीर अग्रवाल – कविता की भाषा को लकर अक्सर प्रश्न खड़ा किया जाता है । आप बताइए कि कविता की भाषा कैसी होनी चाहिए ?

त्रिभुवन पाण्डेय : कविता के लिए बड़ी ही जीवन्त, संवेदनशील तथा पारदर्शी भाषा की आवश्यकता पड़ती है अर्थ खो चुके शब्दों को तराशकर अलग कर देना पड़ता है। रहस्यवादी काव्य से नयी कविता तक भाषा निरंतर बदलती रही है । जैसे–जैसे कविता के सामने उपस्थित प्रश्न बदलते गये, जीवन संदर्भ बदलते गये, वैसे–वैसे कविता की भाषा भी बदलती गयी । कभी–कभी एक ही कवि की काव्य रचनाओं में अनेक भाषा रूप मिलते हैं। पंत, निराला, बच्चन इसके उदाहरण हैं। निराला की 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'कुकुरमुत्ता' दो अलग–अलग भाषा रूपों की कविता है । राम की शक्ति पूजा में भाषा का पैटर्न क्लासिक है जबकि कुकुरमुत्ता एकदम बोलचाल की भाषा में लिखी गयी है । पल्लव और ग्राम्या में यही अंतर मौजूद है । कविता के सामने जीवन के नये सवाल जब–जब

उपस्थित होंगे, भाषा का स्वरूप भी परिवर्तित होगा। नया युग नये शब्दों को अभिव्यक्ति को माध्यम बनाता है। नये मुहावरों में स्वयं को अभिव्यक्त करता है। जो रचनाकार अपने युग की भाषा और उसके मुहावरे को पकड़ पाते हैं वही कवि के रूप में सफल होते हैं। विनोद कुमार शुक्ल, श्रीकांत, धूमिल, मुक्तिबोध और दुष्यंत कुमार इसके कुछ उदाहरण है।

महावीर अग्रवाल – पाठक वर्ग की आम शिकायत है कि कविताएं दिन–ब–दिन दुरूह होती जा रही है, इसलिए लोग कविताओं से जुड़ नहीं पा रहे हैं, इस पर आपके क्या विचार है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : कविता के संदर्भ में इस तरह की शिकायत आम पाठक प्रायः करते रहते हैं। काफी हद तक उनकी शिकायत सही भी है। दरअसल कविता जितनी आसान होती है उतनी ही लोकप्रिय होती है। लेकिन कई बार जटिल मनोभावों तथा वैचारिक द्वंदों को अभिव्यक्त करने की कोशिश में कविता स्वाभाविक रूप में जटिल हो उठती है। इसे टाला भी नहीं जा सकता। लेकिन कई बार प्रभावहीन कथ्य को या स्पष्ट कथ्य को प्रभावशाली रूप देने की कोशिश में कविता की जान बूझकर बनावट की जाती है। यही कविता निष्प्राण तथा बोझिल हो जाती है। श्रेष्ठ कवि महानतम विचारों को सरलतम रूप में लिखने का सामर्थ्य रखते हैं इसलिये शिल्प का रौब जमाना उचित नहीं कहा जा सकता। आम पाठकों की शिकायत कुछ हद तक सही भी है लेकिन यह भी हकीकत है कि जीवन को समझने के लिए पाठक में भी वही दिलचस्पी, गंभीरता और व्यग्रता होनी चाहिए जो रचनाकार के पास है। कविता अपनी निष्पत्तियों में फिल्म की तरह तर्कहीन और आसान, अविश्वसनीय और दयनीय नहीं हो सकती।

महावीर अग्रवाल – लेखन एक सामाजिक दायित्व है । अतः आप बताइए कि लेखक का क्या कुछ भी निजी नहीं रह जाता?

त्रिभुवन पाण्डेय : जो रचनाकार सामाजिक दायित्व को स्वीकार करते हैं उनके पास निजी या आत्म तथा सामाजिक संसारों जैसा द्वेत नहीं रह जाता । उनका निजत्व भी समाज का अंश बन जाता है । यदि मेरा निजी संसार विलक्षण, एकाकी तथा आत्मकेन्द्रित नहीं है तो उसे अभिव्यत करते हुए कहीं भी सामाजिक दायित्व से भागने की बात नहीं आती । प्रेम एक हद तक निजी अनुभव होते हुए भी कविता में अभिव्यत होकर जीवन के लिए स्फूर्ति तथा सौन्दर्य प्रदान करने का श्रेष्ठ माध्यम बन जाता है तुलसी का स्वान्तः सुखाय ऊपरी तौर पर आत्मकेन्द्रित दिखते हुए भी सामाजिक प्रयोजन के संदर्भ में सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है । श्रेष्ठ रचनाकार के लिए इस तह कोई अलग–अलग विभाजित संसार नहीं होता ।

महावीर अग्रवाल – कवि के अंदर व्यक्ति और समाज के बीच हितों का द्वंद क्या किसी सार्थक लेखन की भूमिका बनाता है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं । दोनों एक दूसरे को प्रभावित तथा निर्मित करते हैं । कई बार दोनों के हित एक जैसे होते हैं लेकिन कई बार दोनों के बीच द्वंद की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है । धर्म को ही लें । धर्म नितांत निजी मामला है । इस पर किसी तरह के सामाजिक दबाव की कोई गुंजाइश नहीं है । लेकिन धर्म के नाम पर अब मजहबी कट्टरपंथ की शुरूआत होती है तब धर्म का खुला दुरूपयोग होता है । ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति के हैसियत से समाज की मजहबी मान्यताओं के खिलाफ खड़ा होना जरूरी हो जाता है । इस द्वंद्व से भी श्रेष्ठ रचना जन्म लेती है । अपने वक्त में सुकरात, कबीर, सार्त्र समाज की संकीर्ण विचारधारा

के खिलाफ थे । सुकरात ने मजहबी संकीर्णता के खिलाफ कठोरतम शब्दों में प्रहार किये । सार्त्र ने मनुष्य की स्वतंत्रता तथा उसकी उन्मुक्त चेतना को किसी भी व्यवस्था के दबाव से मुक्त बताया । व्यक्ति और समाज का द्वंद्व निरंतर चलता रहेगा जब तक श्रेष्ठतम समाज की रूपरेखा भविष्य में निर्मित नहीं हो जाती ।

महावीर अग्रवाल – लेखन के कारण आपको व्यक्तिगत जीवन में कभी किसी संघर्ष का सामना करना पड़ा ?

त्रिभुवन पाण्डेय : संघर्ष तो जीवन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । लेखन ने मुझे संघर्ष करने की शक्ति दी और मैं बेहतर जीवन मूल्यों के लिए संघर्ष करता रहा । जीवन मूल्य शाश्वत होते हैं । रचनाकार जीवन के लिए जरूरी मूल्यों की रक्षा करता है और अनावश्यक, जीवन विरोधी, हानिकारक मूल्यों को उखाड़ फेंकने तथा नष्ट करने के लिए संघर्ष करता है । मैं धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, समानता, जातिविहीनता, सेवा, सहयोग, शांति, प्रगतिशीलता जैसे मूल्यों की रक्षा के लिए लिखता हूँ । मनुष्य को पीड़ा पहुंचाने वाले सभी लोग, सभी रास्ते घातक हैं । इनकी पहचान और इनको समय समय पर आघात पहुंचाने की लगातार कोशिश सृजन का दायित्व है । नये मूल्य प्रेमचंद, कबीर, तुलसी और टालस्टॉय से लेकर भारतेन्दु, निराला, बख्शी जी, मुक्तिबोध जेसे महान लेखक कवि निर्मित करते हैं । हम सब तो उनके मार्ग के ही सहयात्री हैं ।

महावीर अग्रवाल – क्या, रचनाकार के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता का होना आप जरूरी मानते हैं ? यदि हां तो क्यों ? यदि नहीं तो क्यों ?

त्रिभुवन पाण्डेय : रचनाकार के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता जरूरी है । देश में चल रहे वामपंथी तथा दक्षिणपंथी विचारधारा में

से किसी एक को चुनना पड़ेगा। दक्षिणपंथी विचारधारा एक वैज्ञानिक, धर्मनिरपेक्ष तथा समाजवादी समाज के लिए किस कदर घातक है यह हम सब अपने सामने देख रहे हैं। किसी बुद्धिजीवी के लिए दक्षिणपंथ को स्वीकार करना संभव नहीं है। वामपंथी तथा प्रगतिशील विचार किसी भी रचनाकार के लिए आज अस्तित्व का अनिवार्य हिस्सा है। यदि वैचारिक प्रतिबद्धता की अपनी प्रगतिशील दिशा नहीं होगी तो ऐसी स्थिति में बुर्जुआ, संकीर्ण, पूंजीवादी दलाल दिशाहीनता की ओर परिचालित करने में कोई कसर नहीं छोड़ेगे।

महावीर अग्रवाल – वर्तमान में क्या लेखन के द्वारा सामाजिक बदलाव संभव है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : श्रेष्ठ रचनाओं का गहरा प्रभाव समाज पर पड़ता रहा है। तुलसी, कबीर, रवीन्द्र, बंकित, शरत, प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध सबने समय–समय पर गहरा प्रभाव डाला है। रचनाएं आज भी समाज को प्रभावित कर सकती है। उसे वैचारिक रूप से बदल सकती हैं बशर्तें आज के रचनाकारों के भीतर वैसी ही ईमानदारी निष्ठा हो जैसी निष्ठा रचनाकार के रूप में प्रेमचंद, निराला या कबीर में रही।

महावीर अग्रवाल – आप किस कवि से अधिक प्रभावित हैं या रहे हैं ? उनकी कुछ उल्लेखनीय रचनाएं जिनसे आपके लेखन को गति या दिशा मिली ?

त्रिभुवन पाण्डेय : विगत चालीस वर्षों में अनेक कवियों के समीप रहने, उन्हें जानने, समझने, पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जहाँ तक गति और दिशा का प्रश्न है, मैं यह मानता हूँ कि प्रत्येक रचनाकार के पीछे उसकी समूची धरोहर और परम्परा रहती है। मैने भी अपनी परम्परा और समकालीनों से सीखा है, पर मुझे भी किसी एक रचनाकार से दिशा नहीं मिली है। महासमुंद में रहते हुए नारायणलाल परमार, विश्वेन्द्र ठाकुर

तथा मनोहर शर्मा के साथ कविता पर बहस से लेकर कविता लिखने तथा सुनाने की प्रक्रिया चलती रही। रायपुर में तब गुरूदेव कश्यप, बच्चू जांजगीरी, हरिठाकुर, ललित मोहन श्रीवास्तव छत्तीसगढ़ की काव्यचेतना का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

महावीर अग्रवाल – कविता भी एक यात्रा है। आप अपने समकालीनों में किन कवियों को अपना सहयात्री पाते हैं ? अपनी पसंद की कुछ कविताओं और उनके कवियों के बारे में बताइए।

त्रिभुवन पाण्डेय : धमतरी में मुकीम भारती, स्व. भगवती सेन तथा सुरजीत नवदीप काव्य लेखन के सहयात्री रहे। कवि विनोद कुमार शुक्ल, ललित सुरजन, रवि श्रीवास्तव, पवन दीवान, लाला जगदलपुरी, रणजीत भट्टाचार्य जैसे अनेक कवि मित्रों ने समय-समय पर मुझे अपनी अभिव्यक्ति से आकर्षित किया है। इन सभी कवियों की ढेर सारी कविताएं मुझे पसंद है। कविताओं परविस्तारपूर्वक बात करने के लिए अलग से समय निकालना होगा। रामेश्वर वैष्णव, लक्ष्मण मस्तूरिहा, डॉ. सुरेन्द्र दुबे, मुकुन्द कौशल, जीवन यदु, जयप्रकाश साव को भी मैने प्रशंसा की दृष्टि से देखा है।

महावीर अग्रवाल – कविता के विकास और सार्थक फैलाव में रेडियो, दूरदर्शन और कवि सम्मेलनों पर आपके क्या विचार हैं ?

त्रिभुवन पाण्डेय : कविता का आनंद पढ़ने की अपेक्षा सुनने में ज्यादा है। कवि सम्मेलन कविता को लोकप्रिय रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। कवि सम्मेलन में कविता का तत्काल मूल्यांकन हो जाता है। लोग तल्लीनता से कविता का आनंद लेते हैं। रेडियो सुनना अब बहुत कम कर दिया गया है, लेकिन कभी रेडियो पर भी कविताएं ध्यानपूर्वक सुनी जाती

थीं। दूरदर्शन में भी काव्यपाठ अत्यंत लोकप्रिय है। कविता का जादू कम नहीं हुआ है, लेकिन प्रत्येक चैनल में अश्लीलता और विज्ञापन की भरमार है। कविता का सार्थक विकास टी.वी. पर नजर नहीं आता। इन माध्यमों का कारगर इस्तेमाल करना रचनाकारों पर निर्भर है।

महावीर अग्रवाल – कविता पोस्टर्स को आप किस रूप में देखते है ? क्या कविता को लोकप्रिय बनाने और चेतना के विकास में इनकी कोई सार्थक भूमिका बन सकती है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : कविता और चित्र की जुगलबंदी को ही हम कविता पोस्टर्स के नाम से जानते हैं। साहित्यिक आयोजनों में कविता पोस्टर्स बनवाने और उसकी प्रदर्शनी लगाने का सिलसिला काफी आगे बढ़ गया है। मैंने यह देखा है कि जिनकी कविता पढ़ने में रूचि नहीं रहती वे लोग भी कविता पोस्टर्स ध्यान से देखते हैं और कविताएं पढ़ते हैं। इस संदर्भ में कविता पोस्टर्स भी महत्वपूर्ण माध्यम बन चुके हैं। कविता की चित्रात्मक प्रस्तुति उसके कथ्य को ज्यादा जीवन्त और प्रभावी बनाती है।

महावीर अग्रवाल – कविता के अतिरिक्त और किस विधा में लिखना अच्छा लगता है ? क्या अन्य विधा में लेखन करने का भी कोई कारण है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : कविता के अलावे मैं व्यंग्य, समीक्षा, उपन्यास आदि लिखता रहा हूँ। आठ दस नाटक भी लिखे हैं। एक समीक्षा की किताब प्रकाशनाधीन है। व्यंग्य उपन्यास ''भगवान विष्णु की भारत यात्रा'' सन 1972 में दिल्ली से प्रकाशित हुआ। व्यंग्य रचनाएं विगत तीस वर्षों से प्रकाशित हो रही है। मित्रों और पाठकों से समय–समय पर सराहना भी मिली है।

महावीर अग्रवाल – और अंत में कविता की आलोचना और उसके आलोचकों के विषय में आपकी क्या राय है ?

त्रिभुवन पाण्डेय : आलोचना की शैली निष्प्राण होती जा रही है। आलोचना की भाषा में यदि ताजगी नहीं आए तो लोग आलोचना पढ़ना ही छोड़ देंगे। किसी रचनाकार को पूरी गहराई के साथ जानने समझने के लिए धैर्य चाहिए। तभी सही आलोचना लिखी जा सकती है। कविता और गीतों के साथ-साथ मैंने अपनी सीमाओं में आलोचना लिखी है। समीक्षा पर काफी काम करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि समीक्षा प्रभावशाली तभी बनेगी जब उसमें शिल्प की नवीनता होगी। घिसी पिटी भाषा अब पाठक को प्रभावित नहीं कर सकती। 'साक्षात्कार' और 'पहल' में मेरी जो समीक्षाएं प्रकाशित हुई हैं, उन्हें काफी प्रशंसा मिली। लोग आलोचना की भाषा से ऊब रहे हैं। इस संदर्भ में गहरे आत्म मंथन की जरूरत है।

•••

अपनी बात अपनों के साथ

त्रिभुवन पाण्डेय

1. आप अपने जीवन की प्रारम्भिक एवं रोचक घटनाओं का वर्णन कीजिए तथा वह सुखद पल जिसमें आपने लेखन के प्रति रूचि जागृत हुई ।

लेखन की शुरूआत कविता से हुई । मेट्रिक में पढ़ते हुए छोटी-छोटी कविताओं में अपनी अनुभूति को लिखने की कोशिश थी । बात सन् 1955 की हे । इसके पीछे न कोई प्रेरणा थी । न कोई उद्देश्य । लगभग दो वर्ष बाद जब मैं अध्यापक हुआ और मेरा स्थानान्तरण बस्तर से महासमुन्द हुआ तब मेरा व्यवस्थित लेखन प्रारंभ हुआ । सभी तरह की कविताएं लिखता रहा । पहली कविता यहीं रहते हुए सन् 1959 में 'अग्रदूत' में प्रकाशित हुई । फिर महाकोशल, नयाखून वगैरह में कविताएं छपी । महासमुन्द में तब नारायण लाल परमार (बागबाहरा) विश्वेन्द्र ठाकुर जयशंकर शर्मा 'नीरव' मनोहर शर्मा और आगे चलकर लतीफ घोंघी से मुलाकात हुई । इससे प्रारंभिक लेखन को संशोधित करने, दिशा तय करने में काफी सुविधा हुई । व्यंग्य लेखन भी यहीं प्रारंभ हुआ । सन् 1959 में आगरा से प्रकाशित नोकझोंक में काफी कुछ छपा । युगधर्म रायपुर फिर नई दुनिया (अब देशबन्धु) में व्यंग्य प्रकाशित होता रहा । परमार जी ने पहली समीक्षा लिखने के लिये कहा । 'पूजामयी' पर लिखी समीक्षा सबको अच्छी लगी तो आगे चलकर समीक्षा भी लिखने लगा । व्यंग्य उपन्यास 'भगवान विष्णु की भारत यात्रा' सन् 1970-71 में 'सरिता' में धारावाहिक प्रकाशित होने के बाद विश्वविजय

प्रकाशन दिल्ली द्वारा पॉकेट बुक योजना के अंतर्गत पहले सेट में पांच पुस्तकों के साथ प्रकाशित हुआ । इस व्यंग्य उपन्यास से देशव्यापी प्रसिद्धि और पहचान दोनों मिली । व्यंग्य नाटक का संग्रह है । इधर नवगीत लिख रहा हूँ । अभी तक 'सुनो सूत्रधार' और 'कागज की नाव' संग्रह प्रकाशित हो चुका है।

जन्मतिथि 21 नवम्बर 1938 । शिक्षा एम.ए. (हिन्दी) पहले अध्यापक, फिर तीन वर्ष प्राचार्य अंत में 31 वर्ष उच्च शिक्षा विभाग में अध्यापन । शास. स्नातकोत्तर महाविद्यालय धमतरी से सन् 2000 में सेवानिवृत्त । मेट्रिक तक कोई चिंता नहीं । कोई उद्देश्य नहीं । अध्ययन मनन में कोई रूचि नहीं लेकिन अध्यापक बनने के बाद पढ़ने की ओर ध्यान आकर्षित हुआ । यह अध्ययन आज भी जारी है बल्कि ज्यादा गहरी समझ और रूचि के साथ । धमतरी में साहित्य की श्रेष्ठ परम्परा थी । छत्तीसगढ़ी के प्रथम वैयाकरण हीरालाल काव्योपाध्याय कृष्णायन के रचयिता बिसाहू राम हेडमास्टर, अनेक कृतियों के रचनाकार शिवप्रसाद पांडेय, यशस्वी कवि नारायण लाल परमार, सुप्रसिध्द गीतकार मुकीम भारती, छत्तीसगढ़ी के जनकवि भगवती लाल सेन, सुरजीत नवदीप, रमेश अधीर और रणजीत भट्टाचार्य, डुमन लाल ध्रुव जैसे रचनाकारों की यह सृजन भूमि थी । काफी कुछ देखा, पाया, अनुभव किया ।

2. साहित्य जगत में आपने किस-किन मूल्यों को स्थापित किया। जीवन मूल्य शाश्वत होते हैं । रचनाकार जीवन के लिये जरूरी मूल्यों की रक्षा करता है और अनावश्यक, जीवन विरोधी, हानिकारक मूल्यों को उखाड़ फेंकने तथा नष्ट करने के लिये संघर्ष करता है । मैं धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, समानता, जातिविहीनता, सेवा, सहयोग, शांति, प्रगतिशीलता जैसे

रास्ते पर चलता रहा हैं। इनकी पहचान और इनको समय समय पर आघात पहुंचाने के विरूद्ध लगातार कोशिश सृजन का दायित्व है नये मूल्य प्रेमचंद, कबीर, तुलसी और टॉलस्टॉय से लेकर भारतेन्दु, निराला, बख्शी जी, मुक्तिबोध जैसे महान लेखक कवि निर्मित करते हैं। हम सब तो उनके मार्ग के ही सहयात्री हैं।

3. सृजन के लिये कौन सा समय चुनते हैं या कभी भी जब मन में विचार उपस्थित हो।

■ सृजन में विपरीत परिस्थितियाँ कितनी बाधक है ? लेखन के लिये कभी समय निर्धारित नहीं रहा। यहां हो भी नहीं सकता। कविता तो कभी भी लिखी जा सकती है। चौबीस घंटों में कभी भी। कविता विद्युत की तरह कौंधती है फिर ओझल हो जाती है ठीक उसी समय लिखकर ही उसे पाया जा सकता है। गद्य में थोड़ी योजना और थोड़े धैर्य की जरूरत होती है। समीक्षा परिश्रमसाध्य कार्य है। व्यंग्य लिखने के लिये विसंगतियों पर सदैव गहरी दृष्टि रखनी पड़ती है। यह सब दिन रात का काम है। लेखक एक मिनट अपने लेखन कर्म से अलग नहीं होता। या तो वह अध्ययन करता है, विचार करता है, जीवन के द्वंद्व और उसके प्रभाव को समझने की चेष्टा करता है, चारों ओर जो घटित हो रहा है उसे देखता है, समझता है फिर उसे लिखता है। लेखक के लिये उसका सम्पूर्ण जीवन ही लेखन समय है। लिखे भले ही वह कम या ज्यादा। सृजन में विपरीत परिस्थितयाँ दो ही होती है। कभी-कभी लेखन की ओर ध्यान आकर्षित नहीं हो पाने की हताशा और समाज में साहित्य के प्रति बढ़ती उपेक्षा। बाकी संघर्ष तो चलता ही रहता है। लेखक सदैव इन संघर्षों से मजबूत होता है।

4. वर्तमान समय में साहित्य जगत में दलवाद, गुटवाद, हावी होता जा रहा है। क्या आप इसे मानते हैं ? यदि हां तो यह कहां तक उचित है। क्या इसका समाधान संभव है तब जब हम यह कहते हैं साहित्य समाज का दर्पण है।

0 मैं किसी गुट वगैरह को नहीं मानता। मैं साहित्यकारों को उनकी रचना के गुणवत्ता के आधार पर जानने की कोशिश करता हूँ। अच्छे रचनाकारों की मैं प्रशंसा करता हूँ। नकली, उथले और मूल्यहीन रचनाकारों को मैं महत्व नहीं देता। अच्छा लेखक कभी किसी गुट में नहीं होता। आखिर सृजन में इन सबका महत्व क्या है ?

5. छत्तीसगढ़ी राजभाषा बनने के बाद छत्तीसगढ़ी भाषा की दशा और दिशा ।

■ छत्तीसगढ़ी राजभाषा बनने के बाद छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का यह दायित्व है कि वे छत्तीसगढ़ी के मानकीकरण के लिये काम करें, छत्तीसगढ़ी पाठ्यपुस्तकों के लिये विविध विषय की रचना लिखें, पारिभाषिक शब्दावली निर्मित करें जिससे कार्यालय, विज्ञान कानून, चिकित्सा जैस क्षेत्र में छत्तीसगढ़ी का उपयोग हो, छत्तीसगढ़ी पुस्तकों के अध्ययन के लिये पंचायत स्तर तक ग्रंथालय खुले और प्रयोग के तौर पर पंचायत स्तर पर छत्तीसगढ़ी में कार्यालयीन पत्र व्यवहार प्रारंभ हो। छत्तीसगढ़ी को संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित करने के लिये प्रयास तेज हो।

6. सम्मान या पुरस्कार साहित्य सृजन में कितने सहायक होते हां तब जबकि कहा जाता है कि आजकल सम्मान खरीदे जाते हैं।

■ यदि सम्मान और पुरस्कार श्रेष्ठ कृति और श्रेष्ठ रचनाकार को दिया जाता है यह ठीक है। इससे श्रेष्ठ रचनाकारों की ओर सबका ध्यान आकर्षित होता है लेकिन जब सम्मान और

पुरस्कार अपात्र लोगों को दिया जाता है तब इसकी प्रतिष्ठा गिर जाती है। आजकल सम्मान पाने के लिये जिस तरह लालयित लोगों की भीड़ जुट जाती हे उसे देखकर दुःख होता है। ऐसे में स्वतः समाज की नजरों से गिरने लगते हैं।

7. वरिष्ठ साहित्यकार होने के नाते लम्बे साहित्य सेवा के दौरान आपने क्या खोया क्या पाया ?

■ साहित्य मुझे सदैव शक्ति देता रहा है। संवेदना जीवन की बहुत बड़ी पूंजी है। जितनी बची है वह अमृत तुल्य है। संवेदना ही हमें 'स्व' से निकालकर सब तक पहुंचाती हे। हम साहित्य को पाकर ही एक से अनेक होते हैं। एकोंह बहुस्यामि। साहित्य स्वतः निस्सीम है। उसे जानना उसे पाना, उसमें रहना सब कुछ अपूर्व है। साहित्य में पाया ही पाया है। खोया कुछ भी नहीं है। मैं एक इतने बड़े लेखक समूह का सदस्य हूँ कि मुझे सोचकर ही गर्व होता है। संस्कृत विद्वानों की तरह मैं भी मानता हूँ

नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा
ज्ञानं दुर्लभं तत्र, काव्यं तत्र सुदुर्लभा
अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापति
यथस्मै रोचते विश्वं तथइदं परिवर्तिते

■ नारायणलाल परमार जी से जीवन भर विमर्श होता रहा। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों का मैं अध्येता रहा। हरिशंकर परसाई को समीप से जानने का अवसर मिला। तब पता चला वे कितने बड़े लेखक हैं। व्यंग्य लेखन की दिशा तय करने में बड़ी सुविधा हुई। विश्व के सुप्रसिद्ध रचनाकारों से लेकर भारतवर्ष और छत्तीसगढ़ के जिस महत्वपूर्ण लेखक कवि को पढ़ा कहीं न कहीं उनके सम्मोहित कर देने वाली लेखनी से प्रभावित हुआ। आज भी यही स्थिति है। पता नहीं कितने आत्मीय मित्र मुझे मिले और मेरी स्मृतियों से

ठहर गये। लगभग पाँच दशक की सृजन यात्रा में कितने ही लोग मिले, और उनसे प्रभावित हुआ। यह लगभग उसी तरह है जैसे धूप मे चलते हुए कोई छाँव मिल जाये और आप ठहर जायें। लगभग एक जैसी घनी छाँव।

9. क्या नई कविता का सृजन प्रगतिशीलता है ?

■ प्रगतिशीलता का संबंध विचार से है विधा से नहीं है। किसी शैली से नहीं हैं। छंदमुक्त कवि अपने विचारों में पुरातन भी हो सकता है। नयी कविता लिखने का अर्थ प्रगतिशील होना नहीं होता। प्रगतिशीलता एक विशिष्ट विचार है जो मनुष्य के सभी तरह शोषण के विरूध्द संघर्ष के दौरान निर्मित हुए।

10. मंचीय साहित्यकारों के बारे में आपका दृष्टिकोण। पहले और अब में ? क्या आप मंचों में भी जाते हैं।

■ कवि सम्मेलन में छत्तीसगढ़ से लेकर अखिल भारतीय स्तर के कवियों के साथ काव्य पाठ करने का अवसर मिला। पहले काव्य मंच बहुत प्रतिष्ठत था। लोग कवियों को बहुत सम्मान देते थे। कविताएं श्रेष्ठ होती थी। कवितांए लोगों को याद रहती थी। धीरे धीरे काव्य मंच मनोरंजक कार्यक्रम जैसा होता गया। कविता गायब होती गई। अभिनय, मंचीय कौशल आदि प्रमुख होते गये। अब यह शुद्ध व्यवसाय है और कविता से इसका कुछ लेना देना नहीं है। काव्य पाठ करते हुए अब कुछ वैसा गौरव अनुभव नहीं होता जैसे आज से चार दशक पूर्व होता था।

11. समसमायिक साहित्य लेखन में आपकी दृष्टि में उल्लेखनीय साहित्यकार किसे मानते हैं ?

■ जो समाज को ज्यादा से ज्यादा प्रभावित करें वही श्रेष्ठ साहित्य है। ऐसे साहित्यकार पहले भी थे, आज भी हैं, भविष्य में भी रहेंगे। उल्लेखनीय होना काफी बड़े योगदान के

बादसंभव हो पाता है। हम और आप सभी इस दिशा में प्रयत्न करते रहते हैं।

12. नवोदित रचनाकारों के लिये संदेश।

■ साहित्य में पाने के लिये न आये। यदि पाना भी चाहते हों तो जल्दीबाजी न करें। जीवन संघर्ष को आवाज देने की शक्ति हो तो आयें। लड़ते हुए लोगों के साथ रम सके तो आयें। असहाय और बुझती हुई आवाज को शब्द दे सके तो आयें। खूब पढ़े, देखें, सुने, समझे तब लिखें। नया जब भी आता है साहित्य को कुछ न कुछ नया जरूर मिलता है।

●●●

मूल्यांकन

मूल्यांकन

बीमार व्यवस्था पर पारदर्शी टिप्पणियां

विनोद शंकर शुक्ल

अनियतकालीन पत्रिका 'सापेक्ष' के सम्पादक महावीर अग्रवाल पत्रिका के स्थूलकाय विशेषांकों (800–1000 पृष्ठ) के लिए चर्चा का विषय रहे हैं। साथ ही शताधिक साक्षात्कारों के लिए परिचर्चा (कोई है और मुकाबले में?) का भी। पिछले 25–30 वर्षों से उनकी सम्पादन और साक्षात्कार साधना व विश्राम चल रही है। विभिन्न साहित्यिक विधाओं के महत्वपूर्ण रचनाकारों के पास महावीर जी लम्बी–चौड़ी प्रश्नावली (लगभग 30 प्रश्न) लेकर या तो खुद उपस्थित हो गए हैं या पोस्ट द्वारा उत्तर मंगा लिया है। जब तक रचनाकार का साक्षात्कार नहीं आ जाता महावीर जी को चैन नहीं मिलता। वे फोन द्वारा उनका अनथक पीछा करते हैं। किसी प्रकार घेरघार कर साक्षात्कार जुटा ही लेते हैं। हिन्दी जगत में मुहावरा ही प्रचलित हो गया है कि 'मौत पीछा छोड़ सकती है पर महावीर नही"। दरअसल साक्षात्कार के लिए उनकी जीवटता और समर्पण देखकर नामवर से नामवर लेखक को घुटने टेकने पड़े हैं। उनके साहस और लगन की प्रशंसा करनी चाहिए कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे निरूत्साहित नहीं होते और प्रयोजन सिद्ध होने पर ही दम लेते हैं।

महावीर जी कई बार गलत ट्रेक पर भी चले जाते हैं। कथाकार को आलोचक और आलोचक को कथाकार समझ लेते हैं। कथाकार कमलेश्वर को उन्होंने आलोचक की सूची में डाल दिया था और आलोचना संबंधी प्रश्न पूछ डाले थे। (सापेक्ष 50, आलोचक और आलोचना विशेषांक)। महावीर जी की प्रश्नावली भी सामान्य नहीं होती। एक ही सवाल में वे पांच सवालों के उत्तर निकलवा लेते हैं। जैसे 'अपनी रचना प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए बताएं कि आपकी लेखन के क्षेत्र में रूचि कैसे जागृत हुई? आप कब से लेखन कार्य कर रहे हैं? इस क्षेत्र को आपने क्यों चुना? क्या आपने दूसरी विधाओं के लिए भी लिखा है?'

महावीर जी की एक खासीयत यह भी है कि वृहतकाय विशेषांकों के अंत में वे खुद को स्थान देना नहीं भूलते। वहां महावीर अग्रवाल खुद महावीर अग्रवाल से साक्षात्कार लेता पाया जाता है। कम से कम व्यंग्य और आलोचना के महाविशेषांकों में उनकी मौजूदगी का मुझे अच्छे से स्मरण है। इतनी कमरतोड़ और सिरफोड़ मेहनत के बाद यदि वे अपने लिए थोड़ी गुंजाइश निकाल लेते हैं तो आत्म प्रचार के आरोप से उन्हें छूट दी जा सकती है। इसमें किंचित संदेह नहीं कि महत्वपूर्ण महाविशेषांकों का सम्पादन और शताधिक साहित्यकारों का साक्षात्कार लेकर उन्होंने कमाल का काम किया है। लेखकों के विचार और उपलब्धियों को सामने लाने के कारण, हर विधा के वार्ड और गलियों में वे अच्छे से पहचाने जाते हैं। वे महावीर अग्रवाल 'सापेक्ष वाले' के नाम से साहित्य के भूगोल में प्रसिध्द है।

सापेक्ष के अलावा महावीर जी ने लेखकों पर केन्द्रित कुछ पुस्तकों का भी सम्पादन किया है। 'छत्तीसगढ़ के नक्षत्र' पुस्तक में कवि–व्यंग्यकार–समीक्षक त्रिभुवन पाण्डेय से उन्होंने साक्षात्कार में पूछा था – 'आपके सृजन का प्रयोजन क्या है?' त्रिभुवन पाण्डेय ने उत्तर में जो कहा था, वह उनके समूचे लेखन के सरोकार को स्पष्ट करता है। उन्होंने कहा था – "रचनाकार जीवन के जरूरी मूल्यों की रक्षा करता है। उसे अनावश्यक, जीवन विरोधी हानिकारक मूल्यों को उखाड़ फेंकने तथा नष्ट करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। मैं धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, समानता, जाति विहीनता, सेवा, सहयोग, शांति, प्रगतिशीलता जैसे मूल्यों की रक्षा के लिए सिखता हूँ।" (पृष्ठ 149)

व्यंग्येतर विधाओं में भी महत्वपूर्ण सृजन के बावजूद त्रिभुवन जी की पहचान व्यंग्यकार के रूप में ज्यादा है। उनकी पहली व्यंग्य रचना सातवें दशक में दैनिक 'देशबन्धु' रायपुर में प्रकाशित हुई थी। शीर्षक था – 'किस्सा पांच किलो गेहूँ का' व्यंग्य रचनाओं से मिले प्रोत्साहन ने उनसे व्यंग्य उपन्यास 'भगवान विष्णु का भारत यात्रा' लिखा लिया था। यह सरिता में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होने के बाद पॉकेट बुक में भी प्रकाशित हुआ। अब तक उनके तीन

व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हैं – पम्पापुर की कथा, ब्यूटी पार्लर में भालू और विश्व बैंक वसति लक्ष्मी। त्रिभुवन पाण्डेय ने समाज के सभी कोनों से व्यंग्य उठाए हैं। राजनीति, अर्थनीति, साहित्य, प्रशासन, धर्म, पत्रकारिता, चिकित्सा, खेल उन्होंने सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों की व्यंग्य की धारदार कैंची से शल्यक्रिया की है।

वर्तमान में राजनीति का सबसे बेशर्म दौर चल रहा है। संसद हो, विधान सभाएं हों, सार्वजनिक या व्यक्तिगत स्थल हो, राजनीति सभी जगह आइटम सांग की नर्तकी की तरह नग्न होकर नाच रही है। स्थितियां जनतांत्रिक व्यवस्था से मोहभंग होने के स्तर तक पहुंचने लगी हैं। राजनीति इतनी मानव विरोधी और धर्मोहया से मुक्त पहले कभी नहीं थी। हमारी संसद और विधान सभाओं में खलनायक ही आज नायक बने बैठे हैं। नेताओं के दोगले चरित्र पर पाण्डेय जी इन शब्दों में व्यंग्य संधान करते हैं – 'नेता स्वयं अभिनय में प्रवीण हैं। दिन में किसी गोलीकाण्ड पर शोक व्यक्त करना उनके लिए कोई मुश्किल काम नहीं है।' (नेता और अभिनेता : ब्यूटी पार्लर मैं भालू, पृष्ठ 8)

राजनीति में आज सारी जगहें मलबों से भर गई है। वहां कुछ भी गुप्त और लज्जास्पंदन नहीं रहा है। नेताओं के खाने पीने का स्तर पशुओं के चारे तक पहुंच गया है। अंधेरे लोकसभा है और चौपट सांसद। राजनीतिज्ञों की चड्डी की तरह दलबदल लीला पर प्रहार करते हुए व्यंग्यकार कहता है – "जब आप सफर करने निकलते हैं तो क्या रेलगाड़ी नहीं बदलते? जिस तरह लम्बी यात्रा में रेलगाड़ी बदलना जरूरी है, उसी तरह अपने सुदीर्घ लक्ष्य को पाने के लिए दल बदलना जरूरी हो जाता है। उद्देश्य होता है, सही मुकाम पर पहुंचना।" (चुनाव का मौसम : विश्व बैंक वसति लक्ष्मी, पृष्ठ 45)

पाण्डेय जी ने भारतीय राजनीति के बहुरंगी पाखण्डों को गहरी गोताखोरी से पकड़ा है। उसकी अनुभवगत सच्चाई ही व्यंग्य रचनाओं में व्यक्त हुई है। राजनीति प्रधान व्यंग्य रचनाओं में व्यंग्यकार की कोशिश यही रही है कि पाठकों का जनतांत्रिक मूल्यों पर विश्वास बना रहे और वे विकृतियों के प्रतिरोध में खड़े हों। अभिनंदन

पत्र का आदर्श मजमून छूटे हुए रस प्रसंग, चुनाव चिन्ह, जानवर और नेता (पंपापुर की कथा) महंगाई का सर्वेक्षण, नेता और अभिनेता, भ्रष्टाचार-गाईड (ब्यूटी पार्लर में भालू) तथा चुनाव का मौसम, राजनीति के प्रवेश द्वार पर खड़ा अच्छा आदमी, विश्व बैंक वसति लक्ष्मी (विश्व बैंक वसति लक्ष्मी) आदि पाण्डेय जी की दीर्घजीवी राजनीतिक व्यंग्य रचनाएं हैं। इनमें सत्ता के शकुनियों की उन्होंने जमकर धुनाई की है। आज राजनीति पर लिखा व्यंग्य उबाऊ माना जाता है। लेकिन राजनीतिक पाखण्डों पर बार-बार प्रहार जरूरी है। इसलिए कि जैसे मध्यकाल में धर्म सभी तथ्यों का नियामक था, वैसे ही आधुनिक काल में राजनीति हमारी नियामक हो चुकी है। पाण्डेय जी के राजनीति विषयक व्यंग्यों के पीछे परिवर्तनकामिता का महज उद्देश्य छिपा हुआ है।

राजनीति और अर्थव्यवस्था का चोली-दामन का साथ है। त्रिभुवन पाण्डेय ने अपनी व्यंग्य रचनाओं में देश की बीमार अर्थ व्यवस्था पर भी पारदर्शी टिप्पणियां की है। आजादी के बाद से ही देश में योजनाओं की बाढ़ आई हुई है। लेकिन नतीजा सिफर है। चिराग जलते हैं, मगर रोशनी नहीं होती। लाखों टन अनाज खुले में सड़ जाता है। जबकि कुपोषण से हर साल करोड़ो बच्चे दम तोड़ देते हैं। बैंकों की ऊंची ब्याज दर से दबे लाखों किसान आत्महत्या पर मजबूर हैं। कारपोरेट घराने सरकार की मिली भगत से देश के प्राकृतिक संसाधनों को मनमाने तरीके से लूट रहे हैं। घोटाले ऐसे फलफूल रहे हैं जैसे बरसात में खरपतवार। महंगाई अपना रूप यों दिखा रही है जैसे भगवान कृष्ण ने महाभारत के समय अर्जुन को विराट रूप दिखाया था।

सरकार के बजट के सत्य को उदघाटित करते हुए पाण्डेय जी टिप्पणी करते हैं "जिसमें देने वाला अनुभव करे कि उसने अपनी ओर से यथाशक्ति सब कुछ दे दिया लेकिन लेने वाले को लगे कि उसने कुछ नहीं पाया, उसे राष्ट्रीय बजट कहते हैं। जिसे तैयार करते हुए वित्त मंत्री बार-बार एक क्रांतिकारी बजट तैयार करने का रोमांच महसूस करें, मगर राष्ट्र के सामने प्रस्तुत होने के बाद लगे कि इस बजट से आर्थिक अभावों का शेयर तो क्या आर्थिक दुरावस्था का

चूहा भी नहीं मर सकता ।" (डिब्बे में सवार युवती और बजट, पंपापुर की आत्मकथा , पृष्ठ 38)

स्वतंत्र भारत में सट्टेवालों ने समाज के हर क्षेत्र में अंधेरगर्दी मचा रखी है। चाहे वह शेयर मार्केट हो, क्रिकेट का खेल हो, फिल्मों की सफलता असफलता हो या व्ही.आई.पी. लोगों की गृहणियों के गर्भधारण पर लड़का या लड़की होने की सामान्य सी बात। सट्टेबाज हर जगह सक्रिय दिखाई पड़ते हैं। 'जीवन में मंदी : शेयर में उछाल' व्यंग्य रचना में त्रिभुवन लिखते हैं : "पहले अर्थशास्त्र चाणक्य या एडम स्मिथ लिखा करते थे । आजकल सटोरिए लिखा करते हैं । अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार भले ही अमर्त्य सेन को मिले लेकिन भारतीय अर्थशास्त्र को दिशा निर्देश देने वाला व्यक्ति होता है, मुम्बई के शेयर मार्केट का चीज । वह चीजों को उसी तरह उछालता रहता है, जैसे बाजीगर गेंद को उछालता है । पता ही नहीं चलता कि कौन सी गेंद किस हाथ में है । कब हवा में और कब हथेली में ।" (विश्व बैंक वसति लक्ष्मी, पृ. 40)

शेयर मार्केट की स्थिरता में मेरा योगदान, बजट पूर्व गरीबदास से परामर्श, सोने के बिस्कुट, मेरा भुगतान संतुलन जैसी व्यंग्य रचनाएं देश की विकलांग अर्थ व्यवस्था का सटीक पोस्टमार्टम करती है । ये रचनाएं आम आदमी से यातनामय जीवन को गहरी सहानुभूति और सच्चाई के साथ प्रस्तुत करती है ।

देश में साहित्य की गंगा भी गले तक मैली हो चुकी है । पाण्डेय जी इस क्षेत्र में व्याप्त छद्म और छिछोरेपन की भी अच्छी खबर लेते हैं। देश को साहित्यिक समारोहों में होने वाले पाखण्डों की पोल उनकी 'कार्यक्रमजीवी' रचना प्रभावशाली ढंग से खोलती है। 'साहित्य वार्षिकी' व्यंग्य में, समीक्षकों की विरोधियों को हाशिए पर डालने और समर्थकों को शिखर पर बैठाने की लीला का वर्णन हुआ है । 'मेघदूत : नया संस्करण' में व्यंग्यकार पर्यावरण के बर्बादीकरण की कलाई इन शब्दों में खोलता है । "पहले सावन में झूले पड़े का मधुर गीत वन उपवन में गूंजने लगता था। अब अव्वल तो पेड़ ही नहीं है । पेड़ है तो झूले नहीं हैं। झूले हैं तो सुंदरियां

नहीं है। सुंदरियां हैं तो झूलने का समय नहीं है। यदि समय मिल भी जाय तो झूले के चारों ओर मोहल्ले भर के छोकरे इकट्ठा होकर फिकरेबाजी करने लगते हैं। सुंदरियों का झूला प्रशासन के लिए 'ला एण्ड आर्डर' का गंभीर प्रश्न बन जाता है।" (ब्यूटी पार्लर में भालू, पृष्ठ 14)। इधर लिखो, उधर फेंकों, पुस्तक मेले में चाट की दुकान, छूटे हुए रस प्रसंग, कुछ अन्य उल्लेखनीय रचनाएं हैं, जिनमें समीक्षाजीवियों, पुरस्कारजीवियों, कवि सम्मेलन जीवियों और दरबार जीवियों की स्वार्थ पोषण के लिए की जाने वाली उछलकूद को लतियाया गया है।

भारतीय पुलिस कई मायनों में विलक्षण है। अपराधियों को निरपराधी और निरपराधी को अपराधी बनाने का अभूतपूर्व कौशल उसके पास है। उसका डंडा इतनी जोर से बोलता है कि पूरा गांव अपराध स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है। डंडा 'फ्रीपास' का काम भी करता है। होटल से वह जो चाहे उठाकर खा सकता है। फल के ठेलों, चाय पान के नुक्कड़ों, आटो और रिक्शेवालों को उसे मुफ्त बैठा कर धन्य होना पड़ता है। 'पुलिस का कुत्ता और प्रदूषण' में त्रिभुवन लिखते हैं – "इस शहर को प्रदूषण प्रभावित शहर कहा जाता है। आश्चर्य है पुलिस का कुत्ता इस प्रदूषण के बाद भी अपराधी की गंध भूल नहीं पाता। इससे यह सिध्द होता है कि शहर में प्रदूषण की मात्रा अभी उतनी नहीं है जितनी प्रचारित की जाती है।" (पंपापुर की कथा, पृष्ठ 57)। 'पहली बार ऐसा थानेदार आया' व्यंग्य में भी भारतीय थानों का चरित्र वस्त्रहीन अवस्था में सामने आया है। व्यंग्यकार लिखता है – "थाने के भीतर गांधी और नेहरू की तस्वीरें देखकर लगता है कि आजादी के बाद भी उन्हें रिहा नहीं किया गया है। वैसे थाने में इन तस्वीरों को देखकर नये आने वालों को तसल्ली होती है। ठीक उसी तरह जैसे मुसीबत में फंसे व्यक्ति को अनजाने गांव में तसल्ली तब होती है, जब अचानक कोई परिचित व्यक्ति मिल जाता है।" (ब्यूटी पार्लर में भालू, पृष्ठ 11)

त्रिभुवन पाण्डेय ने खेल जगत की विसंगतियों पर कई अच्छे व्यंग्य लिखे हैं। उनमें ओलम्पिक में हमारा कीर्तिमान भारतीय क्रिकेट

का दर्शनशास्त्र, विश्व फुटबाल में हमारा योगदान खास उल्लेखनीय है। 'ओलम्पिक में हमारा योगदान' का यह कटाक्ष बहुत मारक है – "यदि जहरीली शराब पिलाकर मारने की प्रतियोगिता होती तो हमें कोई नहीं हरा सकता था। यदि बहुओं को जलाने की प्रतियोगिता होती तो उसमें भी हमार प्रदर्शन सर्वश्रेष्ठ होता। कम से कम सामान में भवन या पुल बनाने की प्रतियोगिता होती तो हमारे ठेकेदार भाइयों को कोई नहीं हरा सकता था। दरअसल आजादी के बाद जिन प्रतिभाओं का हमने विकास किया, अफसोस है कि उन्हें प्रदर्शित करने के लिए विश्व में कोई ओलम्पिक नहीं होता।" (पम्पापुर की कथा, पृष्ठ 72)

त्रिभुवन पाण्डेय ने भारतीय फिल्मों पर भी सधे हुए कटाक्ष किए हैं। सिनेमा की व्यापरोन्मुखता, अभिनय की जगह स्टारडम का बोल बाला, कलाकारों का नवीनतम कारों, नयी नयी महिला मित्रों पर चिंतन फिल्मों को पतनशीलता की पराकाठा पर ले जा रहा है। आइटम सांग के रूप में नग्नता आज धड़ल्ले से परोसी जा रही है। 'मुन्नी बदनाम हुई किसके लिए' रचना में आइटमी नग्नता पर ही निशाना साधा गया है। "मुन्नी बदनाम हुई किसके लिए ? हमारे लिए। आइटम सांग हुई, हमारे लिए। झंडू बाम हुई हमारे लिसे। खास से आम हुई हमारे लिए। इसमें मुन्नी की कोई गलती नहीं है। प्रोड्यूसर की भी गलती नहीं है। डायरेक्टर की गलती नहीं है। गलती हमारी है। मुन्नी की बदनामी के लिए हम जिम्मेदार हैं।" (विश्व बैंक वसति लक्ष्मी, पृष्ठ 12) हिन्दी फिल्मों में 'दिल' को लेकर कई फिल्मी गाने, लोकप्रिय संवाद और चरित्रों की बहुलता रही है। याने 'दिल' का मार्केट बहुत अच्छा है। इस पर अच्छा फिल्मी व्यंग्य है, 'ये दिल का मामला है।'

पाण्डेय जी ने नौकरशाही, मोबाइल कल्चर, प्रकाशकों की बेईमानी, सार्वजनिक यातायात की मुश्किलें, विश्व सुंदरी प्रतियोगिताओं की असलियत आदि विषयों पर भी विचारोतेजक व्यंग्य किए हैं। दरअसल विसंगतियों के पीछे जो विरोधाभास है, उन्हें देखने की दृष्टि उनके पास है। आम आदमी की रोजमर्रा की जिंदगी को उन्होंने बहुत करीब से देखा है। उनकी पर्यवेक्षण की

शक्ति बहुत अच्छी है। उनकी रचनाओं में हमारे आसपास के चरित्र हैं, जिन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है।

संग्रहों की व्यंग्य रचनाओं के शीर्षक आकर्षक है। उनमें वक्रता है, इसलिए वे पाठकों को पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। जैसे – क्लिंटन और मैं : एक तुलनात्मक अध्ययन, टी.वी. पर गाता पामेरियन, विश्व बैंक वसति लक्ष्मी, ब्यूटी पार्लर में भालू, भ्रष्टाचार गाइड, डायलर्स टोन का मुफ्त आनंदआदि।

पाण्डेय जी की भाषा साहित्य और पत्रकारिता का विभेद मिटाने वाली भाषा है। उसमें व्यंग्य का तीरवापन पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। भाषा के माध्यम से समाज की जड़ता पर प्रहार करने में वे सफल हैं। व्यंग्य की एक जरूरी शर्त है, उसकी कसावट। पाण्डेय जी की व्यंग्य रचनाएं कलेवर में छोटी और कसावट में चुस्त हैं। उनकी शैली मूलतः निबंधात्मक है। लेकिन अनेक रचनाओं में उन्होंने कथा, साक्षात्कार, पत्र, डायरी, संवाद आदि शैलियों का भी विषय की प्रकृति के अनुरूप प्रयोग किया है। रोचकता उनकी व्यंग्य रचनाओं का एक बड़ा गुण है। अधिकांश रचनाएं प्रथम वाक्य से ही पाठकों को अपनी पकड़ में ले लेती है। कथाकार स्वयं प्रकाश ने लिखा है – "कविता की सार्थकता है, उसकी किसी पंक्ति का नारा बन जाना और गद्य की सार्थकता है, उसके वाक्यांश का सूक्ति या लोकोक्ति बन जाना" । पाण्डेय जी की व्यंग्य रचनाओं में अनेक जगह सूक्ति वाक्य मिलते हैं। यथा – नेता अब फुरसत मिलते ही पहाड़ की ओर प्रस्थान कर देता है।। महाभारत काल में युधिष्ठिर के कुत्ते को वही प्रसिद्धि मिली जो आजकल श्रेष्ठ चमचों को मिल रही है। / कुछ विज्ञापन ऐसे हैं, जो नेताओं के भ्रष्ट आचरण की तरह शाश्वत है। हमने गरीब का स्तर बढ़ा दिया है, आजकल दस हजार जिसकी आमदनी है, गरीब कहलाता है। कहते हैं जिनका इतिहास जितना पुराना होता है, उनके पास उतना ही ज्यादा कचरा होता है।/दो नम्बर के पैसे से जहां खूबसूरत डिजाइन

के मकान होते हैं, उसे कालोनी कहते हैं/जो मनुष्य को मर्कट की तरह नचाए उसे मनी कहते हैं।/शेयर मार्केट का प्रभाव चेयर मार्केट पर भी पड़ता है, शेयर उछलता है तो चेयर भी उछलता है, इत्यादि।

पाण्डेय जी की अनेक व्यंग्य रचनाएं उपमान शैली से शुरू होती है। उनकी बहुलता पाठकों को खटकती है। उदाहरण के लिए 'जो महत्व बिजली विभाग के लिए बिल का है, श्रृंगार रस में गालों पर सुशोभित तिल का है, वही महत्व फिल्म इण्डस्ट्रीज में दिल का है।/जो महत्व लकड़ी वालों के लिए टाल का है, भोपाल वालों के लिए ताल का है, बम्बई वालों के लिए चाल का है, वही महत्व यूरोप वालों के लिए फुटबाल का है।/जो महत्व विकासशील देशों में अनाज का है पर्यटकों के लिए ताज का है, वही महत्व सब्जियों में आलू प्याज का है।/जो महत्व प्रेम के इतिहास में रांझा के लिए हीर का है, वही महत्व जीवन के लिए शरीर का है।/जो महत्व बस में चालक का है, वही महत्व परिवार में पालक का है।/जो महत्व राजनीति में सज्जन का है, प्राचीन काव्य में खंजन का है, भारतीयों की परेशान जिंदगी में मनोरंजन का है, वही महत्व उत्सवों में व्यंजन का है।'

ये सभी उद्धरण एक ही व्यंग्य-संग्रह 'ब्यूटी पार्लर में भालू' से लिए गए हैं। अन्य संग्रहों में भी यह दोष विद्यमान है। इससे पाठकों को लग सकता है कि व्यंग्यकार के सम्मुख रचना की शुरूआत संबंधी कठिनाई है। जबकि पाण्डेय जी का व्यंग्यशिल्प अल्प समय की साधना का प्रतिफल नहीं है। वह वर्षों की साधना और अध्ययन से परिपुष्ट हुआ है। रचना की शुरूआत संबंधी समस्या बड़े से बड़े लेखक की सामने होती है, लेकिन विशेष श्रम से उसे साध लिया जाता है। पाण्डेय जी भी कदाचित इस दोष से बच सकते हैं।

कुल मिलाकर त्रिभुवन पाण्डेय का व्यंग्य लेखन आम आदमी की पक्षधरता का लेखन है। वे गहरी मानवीय संवेदना से प्रेरित

होकर लिखते हैं। समाज के नैतिक अवमूल्यन पर उनकी सतर्क दृष्टि है। उनका गद्य बहुत नपा तुला है। उसमें बीमार व्यवस्था के बुनियादी परिवर्तन की कचोट साफ दिखाई पड़ती हैं। वे नयी टेक्नालाजी के प्रति बेखबर नहीं है। उसके अच्छे बुरे प्रभावों पर भी उन्होंने लिखा है। पाण्डेय जी की व्यंग्य रचनाएं एक प्रकार से समाज का सर्वेक्षण है। उनमें आदमी के निरंतर आदमियत खोते जाने के विरूद्ध गहरा प्रतिकार दिखाई पड़ता है।

●●●

त्रिभुवन को शुभकामनाएँ

दाऊद खाँ 'रामायणी'

आज हम जिस संसार में जी रहें हैं वह व्यक्ति स्वार्थों का दानवीय क्रीड़ा स्थल और विनाशकारी युद्धों का एक अखाड़ा बन कर रह गया है। मानव पाश्विक भावावेगों तथा आसुरी प्रवृत्तियों के बल पर दानव से भी बदतर हो चला है। आज यदि आवश्यकता है तो वह शुद्ध बुद्ध आदर्श मानव की जो इस वसुन्धरा को देवताओं की स्वर्गभूमि बना सके। ऐसे ही आदर्श संस्कार युक्त मानव के नव निर्माण का स्वप्न संत गोस्वामी तुलसीदास ने भी आज से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व देखा था।

रामचरित मानस के प्रबुद्ध रचनाकार संत महाकवि तुलसीदास का जीवन चरित्र अल्पज्ञात ही रहा। उनके संबंध में बहुत सी भ्रांतिपूर्ण कथायें सुनने में आई। मुझे आज भी किसी अज्ञात कवि की वे पद्य पंक्तियां याद आती हैं। जिनमें गोस्वामी तुलसीदास जी को उनकी धर्मपत्नी रत्नावली उनके भीषण वर्षाकाल में नदी को पारकर उनसे मिलने पहुँचने पर तुलसीदास को प्रताड़ित करते हुए कहती हैं :-

'अस्थि चर्ममय देह यह तामें ऐसी प्रीत।
तैसी जो श्रीराम में होत न भव भयमीत॥'

अपनी अपनी कल्पना के आधार पर ही तुलसीदास जी के विषय में भ्रांतिपूर्ण प्रचार-प्रसार होता रहा। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन चरित्र को प्रमाणिक स्वरूप देने की पुनीत पहल अंचल के ख्यातिलब्ध साहित्यकार श्री त्रिभुवन पांडेय ने अपनी नवीन कृति "महाकवि तुलसीदास" के माध्यम द्वारा कर लोक को उपकृत ही नहीं किया वरन् संत महाकवि तुलसीदास के प्रति भी एक विनम्र

श्रद्धाँजलि अर्पित की है। इस कार्य हेतु उनके गहरे चिंतन मनन तथा साहित्य-अध्ययन के लिये वे साधुवाद के सुपात्र हैं।

रचनाकार संत वैसे तो कालवियजी होता है। संत शब्द को ही सार्थकता तब मिल पाती है जब उस पर सत्य का कलश चढ़ता है। संत राग की भूमि में अनुराग का बीज बोकर वैराग्य उत्पन्न करता है। महाकवि तुलसीदास ऐसे ही संत थे जिन्होंने रामकथा के माध्यम से इस समाज को एक नया चिंतन ही नहीं दिया वरन् जीवन को एक नवीन दर्शन भी प्रदान किया। तुलसी का महाकाव्य कोई ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं है किन्तु लोक मानस का विश्वास इससे भी कहीं बड़ा हो सकता है। इस सत्य को रामचरित मानस की लोकप्रियता ने सिद्ध कर दिया है। महाकवि तुलसीदास इसीलिये लोकनायक बने क्योंकि उन्होंनें अपने काव्य को लोक मंगलकारी बनाया। तुलसी के रामचरित मानस में मानव की सभी समस्याओं के सार्थक समाधान प्रस्तुत किये गये हैं तथा द्वन्द्वात्मक विषयों के बीच अपूर्व समन्वय स्थापित किया गया है। रामकथा के माध्यम द्वारा तुलसी ने जहाँ मानव को संस्कार युक्त बनाया है वहीं हमारे वैयक्तिक पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन को भी सही दिशा प्रदान की है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने पूर्वगामी महर्षि वाल्मीकि की रामायण के राम के चरित्र का अनुसरण करते हुए राम के आदर्श चरित्र का चिरंतन उपहार संसार को दिया है जो सदैव एक आकाशदीप बनकर हमारा पथ आलोकित करता रहेगा।

श्री त्रिभुवन पाण्डेय की नवीनतम कृति "महाकवि तुलसीदास" संत गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तिगत जीवन को परत-दर-परत उधारती एक अनुपम ज्ञानवर्द्धक रचना हे जिसकी भाषा में सरलता है सहजता है तथा लोक ग्राहयता है। जहाँ इस कृति का सुगम शिल्प उत्कृष्टता लिये हुये हैं वहीं इसकी शैली भी प्रशंसनीय है। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन के दो प्रसंगों (काशी का राजकुमार तथा बाबा नरहरिदास) को नाट्य स्वरूप देकर

रचनाकार ने इस कृति के आकर्षण को और अधिक समृध्द कर दिया है। महाकवि तुलसीदास की प्रमुख रचनाओं की जानकारी भी इस पुस्तक का एक अनन्य आकर्षण है। श्री विकास पांडेय द्वारा चित्रित मुख पृष्ठ कलात्मक है तथा कृति की विषय वस्तु को सार्थकतापूर्वक प्रतिबिम्बित करता है। प्रकाशक (विकास प्रकाशन) ने इस पुस्तक का मूल्य 20/– निर्धारित किया है जो जन साधारण की सुविधापूर्ण पहुंच में है।

मानस मर्मज्ञ श्री दाऊद खाँ की पूर्विका में सिमटा उनका आशीष एवं शुभकामनायें कृतिकार एवं कृति के प्रति उनकी आत्मीयता को प्रमाणित करते हैं। कृतिकार के तुलसी को नमन, त्रिभुवन के रचनाकार को अशेष शुभकामनायें।

●●●

व्यंग्यकार त्रिभुवन पांडेय

सुरजीत नवदीप

व्यंग्यकार त्रिभुवन पांडेय छत्तीसगढ़ में एक ऐसा नाम है जो व्यंग्य रचनाओं एवं व्यंग्य कविताओं के लिए जाना जाता रहा है। प्रारंभिक दौर में उनकी रचनाएँ अखिल भारतीय स्तर पर पत्र--पत्रिकाओं में खूब छपी। वे कम समय में ही अपनी व्यंग्य रचनाओं के लिये साहित्य क्षेत्र में खूब प्रसिद्ध हुये। फिर धीरे-धीरे व्यंग्य कवितायें वे लिखने लगे। मंचों पर भी उनकी व्यंग्य कविताओं को खूब प्रशंसा मिली। उनकी व्यंग्य रचनाओं ने अपने समय में पाठकों को आकर्षित किया। व्यंग्यकार के रूप में एक पहचान मिली।

समीक्षक के रूप में वे बहुत बाद में अपनी उपस्थिति साहित्य क्षेत्र में दर्ज कराते हैं। अध्ययनशील वे छात्र जीवन से ही रहे हैं। व्यंग्य पैनी दृष्टि तो थी ही, वे समीक्षक के रूप में सब बीच उभर कर आ गये। वैसे भी छत्तीसगढ़ में समीक्षकों का अभाव सदा खटकता रहा है। लोगों ने उन्हें हाथों-हाथ लिया। उनकी समीक्षा के कारण कुछ लेखकों को पुरस्कार भी प्राप्त हुए। उनकी कृतियां पढ़ी गई। सराही गई। समय ने करवट बदली और पांडेय जी समीक्षक के रूप में चर्चित हो गये। एक सर्वमान्य समीक्षक के रूप में साहित्यकारों के बीच विख्यात हो गये।

वैसे वे बहुआयामी कृतित्व एवं व्यक्तिव के धनी हैं। जिस भी विधा में लिखते हैं, सतर्कतापूर्वक एवं साधिकार लिखते हैं। उन्होंने उपन्यास लिखे, नाटक लिखे, गीत लिखे, ललित निबंध लिखे, व्यंग्य रचनाएँ लिखी और फिर समीक्षा। साहित्य की हर विधा में उन्होंने गद्य-पद्य लिखकर माँ सरस्वती के भंडार को भरा। उनके प्रकाशित संग्रह इस बात के साक्षी हैं, जैसे – गाओ वन पाँखी (गीत संग्रह), पंछी मत हँसो (नाटक), विश्व बैंक वसति

लक्ष्मी (व्यंग्य), पम्पापुर की कथा (व्यंग्य), भगवान विष्णु की भारत यात्रा (व्यंग्य उपन्यास), कागज की नाव (गीत संग्रह), ब्यूटी पार्लर में भालू (व्यंग्य) और महाकवि तुलसीदास की संक्षिप्त जीवनी। उपरोक्त संग्रहों को यदि आप ध्यान से पढ़ें तो रचनाकार की समग्र उपलब्धियों से आपका साक्षात्कार हो जायेगा। लिखा है और खूब लिखा है। उनके लेखन पर हम सबको गर्व हो सकता है।

समाज में व्याप्त विसंगतियों की खोज खबर लेना एक व्यंग्यकार की जिम्मेदारी है। कई विसंगतियाँ अमूर्त होती है। सूक्ष्म होती है। सूक्ष्म अन्दृष्टि से ही उन्हें देखा जा सकता है। जिसके पास गहरी अन्तदृष्टि होगी, वह देख सकेगा। उसके लिये चिंतन–मनन का दायरा भी बड़ा होना चाहिये। संवेदनशील भी होना चाहिये।

पांडेय जी व्यवस्था पर प्रहार करने से नहीं चूकते। हम आजादी के बाद क्या चाहते थे और क्या हो रहा है? सामाजिक विसंगतियों पर उनकी कलम चलती है। आज की राजनीति पर वे गीतों के माध्यम से एवं आलेखों में इस बात को रेखांकित करते हैं कि हम प्रतिदिन पतन की ओर जा रहे हैं। हमारी भाषा संयमित नहीं है। मुखौटों के अन्दर छिपे हुए चेहरों को बेनकाब करते हैं। आज देश में फैले हुए भ्रष्टाचार तथा राजनेताओं के चरित्रों को उजागार करना भी एक व्यंग्यकार का कर्तव्य है। इसे लेखक बखूबी समझता है। और इसका निर्वाह भी करता है। वे जानते हैं दीमक की तरह धीरे–धीरे देश को खोखला कौन कर रहा है। अपने उपन्यासों में एवं व्यंग्य रचनाओं में पांडेय जी शोषण के विरूध्द भी आवाज उठाते हैं। उनके व्यंग्य नश्तर की तरह चुभते हैं। व्यक्ति जिस पर चोट की गई है, तिलमिलाकर रह जाता है। साफगोई उनकी विशेषता है। यही विशेषता उनको प्रथम श्रेणी के साहित्यकारों में खड़ा करती है।

त्रिभुवन पांडेय अपने निजी जीवन में भी सहज और सरल तो हैं ही, लेकिन लेखन में भी बड़ी ईमानदारी बरतते हैं। हम सभी साहित्यिक मित्र इसी बात के कायल हैं।

सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिम्ब एकांकी संग्रह 'पंछी मत हँसो'

हरिप्रकाश वत्स

श्री त्रिभुवन पांडेय मूलतः एक व्यंग्यकार होने के नाते अपने आसपास रोजमर्रा की जिन्दगी को आम आदमी से जोड़कर देखते हैं और अपनी सभी रचनाओं में चाहे वे कवितायें हो या गीत अथवा नाटक अपने चुटीले तथा धारदार व्यंग्यों द्वारा अपनी अनुभूत जिन्दगी को अभिव्यक्ति देते रहे हैं। श्री त्रिभुवन पांडेय का ताजा-तरीन नाट्य संग्रह है 'पंछी मत हंसो' जिसमें उनके आठ हास्य व्यंग्य एकांकी नाटक संग्रहित हैं।

'गोल्डी की तलाश' एकांकी में रचनाकार ने पुलिस महकमें के कर्मचारियों, अधिकारियों तथा उनकी रोजमर्रा की कार्यशैली तथा जीवन शैली पर करारे व्यंग्य करते हुए मनुष्यों की जिंदगी से कुत्तों की जिंदगी को बेहतर आँकने का प्रयास किया है - एक बानगी देखिये -

रामसिंग - यार बलवीर। साले कुत्तों को दफा 107 में चालान करके बंद कर दो। उनके मालिकों को लिख दो कि गुट बनाकर आपस में झगड़ा कर रहे थे। साले कुत्ता रखना ही भूल जायेंगे।

बलवीर - इरादा तो मेरा भी यही हो रहा है, लेकिन क्या किया जाये? मजबूरी है दफा 107 मनुष्यों के लिये हैं जानवरों के लिये नहीं।

रामसिंग - तब तो भैया, जानवर ही ज्यादा मजे में है।

बलवीर - इसमें भी भला कोई शक है।

'अखिल भारतीय शिकायत दफ्तर' में नाटयकार का व्यंग्य एक आदमी की जिन्दगी को कुछ इस प्रकार परिभाषित करता है –

पहला आदमी – कौन हैं आप?

व्यक्ति 3 – मँहगाई के चक्रव्यूह में फंसा अभिमन्यु। कीमतों की शर–शैय्या पर लेटा हुआ भीष्म पितामह। मूल्य वृद्धि के एवरेस्ट पर टंगा हुआ तेनसिंग। काला बाजारी के शैतानी शिकंजे में फँसा इस देश का आम आदमी।

इसी प्रकार भ्रष्टाचार की परिभाषा का भी अलग अंदाज है – अगर एक तरफ देश और देश को लूटने वाले लोग और दूसरी ओर देश का काम और अपना स्वार्थ हो तो दो और दो का गुणनफल होता है चार याने भ्रष्टाचार।

भारतीय अर्थशास्त्र में घूस के स्थान को महत्त्वपूर्ण मानते हुए रचनाकार लिखता है – जो महत्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, सरकारी कार्यशैली, सामाजिक नैतिक मूल्यों तथा आम आदमी की पीड़ाओं से उभरती हलचलों को दर्ज करने वाले धड़कते दस्तावेज हैं जो उनके नाट्य–संग्रह को पठनीय तो बनाते ही हैं साथ में संग्रहणीय तथा मंचन के योग्य भी। इसका एक मुख्य कारण यह है कि त्रिभुवन में सामाजिक सरोकार के साथ–साथ गहरी संवेदनात्मक तरलता भी है और यह तरलता जब अपने अनुभव की जमीन पर झिलमिलाती है तो एक विशिष्ट प्रभाव छोड़ती है। सभी एकांकी नाटकों का कथ्य तथा शिल्प अपने आकर्षक विन्यास में किसी भी पाठक अथवा दर्शक को शुरू से आखिर तक बाँधे रखता है। इन नाटकों की भाषा जहाँ अत्यंत ही सरल तथा आम बोलचाल की प्रतीत होती है वहीं उसमें छिपे हुए बिम्ब महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली बन पड़े हैं। त्रिभुवन पांडेय ने बिना किसी प्रयोगवादी मोहजाल में पड़े इस नाट्य–संग्रह के माध्यम से यह लगभग सिध्द कर दिखाया है कि पारंपरिक ढंग के, चिर परिचित ढांचे वाले नाट्य विन्यास में भी आज़ के समकालीन जीवन की व्यथा न केवल संभव है वरन् यह भी

कि पारंपरिक नाटकों की संरचनात्मक क्षमताओं का अभी भी अपरिमित दोहन शेष है। नाटककार के अपने शिल्प, भाषिक विन्यास तथा आधार कथ्य में बिल्कुल सहजता, संवेदनात्मक तरलता एवं स्पृहणीय सरलता के साथ हिन्दी के समकालीन नाटकों के लेखन में अपने आसपास बसते साधारण आदमी को उनके समस्त आयामों और विसंगतियों के साथ प्रस्तुत किया है जो आज भी बड़ी संख्या में धमतरी जैसे छोटे नगरों, कस्बों तथा जनपदों में साँसे ले रहा है।

नाटकों में हास्य तथा व्यंग्य का अनूठा संगम इनके आकर्षण को विशिष्टता प्रदान करता है। इन एकांकी नाटकों में नाट्य शास्त्र की वे सभी विशेषतायें मौजूद हैं जो इन्हें सम्पूर्णता प्रदान करती है। जैसे – सस्पेंस, थ्रिल, पैथोज, एक्शन, हास्य, प्रहार, डायलॉग, कथावस्तु तथा प्रभावोत्पादकता। ये एकांकी दर्शकों को एक लम्बे अरसे तक गुदगुदाने की क्षमता रखते हैं। नाट्यकार के हास्य–व्यंग्य एकांकी नाटकों की यात्रा लम्बी हो यही शुभकामनाएं।

●●●

गीतकार का वैशिष्ट्य "गाऔ वनपांखी"

डुमन लाल ध्रुव

गीत कविता की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। गीत रचना, सुनना, सुनाना सभी कुछ अच्छा लगता है। जो अच्छा लगता है वह मन को छू जाता है। मन को छू गया गीत भुलाये भूलता नहीं, अवसर पाकर भीतर से बाहर आ जाता है और ओंठों पर थिरकने लगता है। गीत की इस मनमोहकता का कारण उसका कुछ विशेष प्रकार का ताना-बाना है।

गीतकार जब किसी भावभूमि में स्थित होकर झूम उठता है तो किसी लय पर मचलते शब्द कुछ ऐसे संवर जाते हैं कि गीत की प्रारंभिक पंक्ति या पंक्तियों का रूप ले लेते हैं प्रोफे. त्रिभुवन पांडे जी का नवगीत संग्रह "गाओ वनपांखी" के गीत क्षणिक अनुभूतियों की नहीं, बल्कि गहन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। संग्रह के गीतों में आदि से अंत तक एक ही भावभूमि का निर्वाह करता है, इसलिए त्रिभुवन पांडे जी का गीत उस भावभूमि में गहराई से उतरता है, डूबता है और अपनी अनुभूतियों को शब्दों में ढालकर दूसरे को वहीं तक उतारता और डूबोता है। अनुभूतियों को तीव्र संवेग बनाने के लिए त्रिभुवन पांडे जी अपने गीतों में शब्दों की तीनों शक्तियां-अभिथा, लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग तो करते ही है, साथ में सटीक उपमानों, प्रतीकों और बिम्बों की उद्भावना भी करते हैं।

1

कहां निकल पाते हैं
शब्दकोश छोड़कर
लोगों से मिलने

कविता का क्यारी में
मुश्किल से मिल पाते
पुष्पित हो खिलने
अर्थवान क्षण फिर
देखते कहां है रास्ते में मुड़कर

2

भेजा था लोगों ने मांग पत्र सौंपकर
याद रहा सब कुछ लोगों को छोड़कर
कहते विज्ञापन में सब बातें अभिमंत्रित
रख लेते ज्ञापन सब जेबों में मोड़कर
सत्य झर गये
दिग्भ्रमित कथा शेष है।

प्रोफे. त्रिभुवन पांडे जी का नवगीत संग्रह "गाओ वनपांखी" का काव्य व्यक्तित्व विविध वर्णी होने के कारण गीत रचनाओं में सप्तरंगी आकर्षण है। "गाओ वनपांखी" के गीतों में मानवीय संवेदनाओं को अगर अभिव्यक्ति दी है तो "सपनों का अवशेष" गीत प्रथम पंक्ति से लेकर अंतिम पंक्ति तक लालित्य को समेटे हुए उनके गीत कवि की कोमल भावनाओं के साक्षी बन जाते हैं :-

पुरातत्वविद् खोज रहे हैं
सपनों के अवशेष
बांच रहे हैं शिलालेख पर
मिटे हुए अक्षर
जगह-जगह बिखरे मिलते हैं
नीवों के पत्थर
खोज रहे हैं लोग अभी तक
खोया हुआ स्वदेश

प्रोफे. त्रिभुवन पांडे जी, भाषिक छन्द के प्रति अत्यंत ही समर्पित प्रतिबद्ध गीतकार, व्यंग्यकार और कुशल समीक्षक है। उनके गीतों में प्रयोगधर्मिता की आहट नहीं आती और जहा-कहीं भी उन्होंने शब्दों की चित्रकारी की है वे शब्द कथ्य में गुम्फित होने के कारण चमत्कृत कर देते हैं। गीतों में जीवन की आशा, निराशा, वेदना संवेदना और सौंदर्य बोध की आहट प्रत्येक शब्द में सुनाई देती हे और ये हमें उस युग का परिभ्रमण कराते हैं जब मनुष्य के आस-पास गीत के अतिरिक्त कुछ नहीं हुआ करता था। त्रिभुवन पांडे अपने गीतों में जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति इस माध्यम से करते हैं।

मूल्यों का आवरण उतारकर
खोज रहे जगमग परिदृश्य
भाग रहे स्वर्ण मृगों के पीछे
आगे हैं मायावी दृश्य
वक्त कहां है ठहरा
छूट गया मूल्यों के आगे

हम जिस भोगे हुए यथार्थ को शब्दों का आवरण चढ़ाते हैं वेही शब्द अपनी छटपटाहट से सब कुछ कहने को आतुर रहते हैं। गीतकार प्रोफे. त्रिभुवन पांडे ने हमारे वर्तमान को बड़ी ही शालीन भाषा में गाया है। गीत में हंसते हुए आकाश से मुस्कान का जादू बिखेरता है। यह सीधी और सपाट बयानी उनके गीतकार होने का वैशिष्ट्य रेखांकित करती है।

त्रिभुवन पांडे जी का नवगीत संग्रह ''गाओ वनपांखी'' में यदि वर्तमान जीवन की विसंगतियों को स्वर मिला है तो हमारे सुख-दुख को वाणी मिली है। ये गीत आम आदमी को गाते हुए अपनी यात्रा को पूरा करने के लिए आतुर है मनुष्य का अस्तित्व और पहचान अब इतनी रह गई है कि -

मांगता हंसते हुए आकाश से
मुस्कान का जादू
मांगता नक्षत्र से आलोक के
प्रतिदान का जादू

नवगीत संग्रह ''गाओ वनपांखी'' का ये गीत आदमी को, उसकी जिंदगी को, गीतों की तरजीह को और उसकी संवेदनाओं को समझने का अवसर गीतकारों और उसके रचनाकारों को देंगे। यही मेरा मानना है।

●●●

पत्र

पत्र

पत्र

विनोद कुमार शुक्ल

आदरणीय

नमस्कार,

कुछ निजी वयस्तताओं के बाद पत्र लिखने का अवसर अब मिल रहा है। जो दुनिया हम सबके हिस्से में आई है, उसमें इतनी भागदौड़ प्रदूषण और धुंआ है कि दिल फुरसत के रात-दिन ढूंढता ही रह जाता है।

लेकिन उस वक्त यह अभिशप्त संसार बहुत प्रिय लगने लगता है। जब कोई बढ़िया किताब हाथ में हो और कोई डिस्टर्ब करने वाला न हो।

'सूनो सूत्रधार' से आपके संवेदनशील मन को निकट से जानने का अवसर मिला। तमाम तरह के तनावों से मुक्ति मैं साहित्य में पाता हूँ। आपके नवगीतों ने देर तक मुझे उन्मुक्त गगन का पंछी बनाए रखा। गीत सोच को उत्तेजना भी देते रहे।

आज के उपभोक्तावादी दौर में साहित्य की सार्थकता कैसे बनी रहे, यही लेखक की सबसे बड़ी चिंता होनी चाहिए।

'सूत्रधार' में उपभोक्तावाद के जंगल में भटकने वालों को साहित्य की ओर आकर्षित करने की क्षमता है।

शुभकामनाएं।

●●●

पत्र

डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव

प्रिय भाई,

संकलन मिल गया। मैंने पढ़ भी लिया। आपके लेखन कर्म के प्रति मेरे मन में हमेशा आकर्षण और विश्वास रहा है और आपके पास एक संवेदनापरक भाषा है।

अब कभी धमतरी आने का मौका बना तो आऊंगा। पिछली बार खबर ही नहीं मिली। उपन्यास कब शुरू कर रहे हैं ?

●●●

पत्र

सतीश जायसवाल

प्रिय त्रिभुवन जी,

वागर्थ के नवम्बर अंक (क्र. 77) में आपकी कविताएं वक्त आखिर किस तरह काटें और जिस्म से शिकायत है – देखी। एक अर्थ में दोनों अपनी सीमितता की कविताएं हैं, मनुष्य के सामर्थ्य की सीमा की कविताएं। यहां वह समय के फैलाव के सामने छोटा है वहां संसार के उपक्रम में उसे अपने सामर्थ्य के छोटे पड़ने का मलाल है। अपने छोटेपन को कितने बड़े फलक में देख रही हैं ये कविताएँ ? मिलेंगे तो पूछूंगा।

दीपावली की शुभकामनाएं।

●●●

पत्र

जीवन यदु

आदरणीय भाई,

सादर प्रणाम

बहुत दिनों से आपको पत्र लिखने का विचार कर रहा था, लिख नहीं पा रहा था। 'सुनो सूत्रधार' के लिए हार्दिक बधाई और उसकी प्रति के लिए धन्यवाद। प्रतिक्रिया स्वरूप चंद पंक्तियां आपको समर्पित –

जाने कैसे रहा अपरिचित
बंधु। आपके गीतकार से
मेरी भी इसमें क्या गलती
सरस्वती की गुप्त धार है
व्यंग्यकार–पर्वत के पीछे
अमराई सा गीतकार है
वह युग–चिंतक पूछ रहा है
प्रश्न जगत के सूत्रधार से
शब्दों की वह अर्थ व्यंजना
झलक रहा अनुभव का वैभव
छंदों में अनुशासन ऐसा
सिर्फ साधना से जो संभव
प्रखर–कथन की ऐसी शैली
कबिरा लौटा हो बाजार से

विश्वास है सानंद होंगे। भाई डुमन को आशीष।।

●●●

पत्र

रवि श्रीवास्तव

आदरणीय भाई,

'सूनो सूत्रधार' के नवगीतों से बेहद प्रभावित हुआ। इस संग्रह ने नवगीतों के सन्दर्भ में छत्तीसगढ़ के ग्राफ को ऊँचा उठाया है। भविष्य में 'सुनो सूत्रधार' के उद्धरण के बिना नवगीतों की बात अधूरी रहेगी।

अलग से एक विस्तृत समीक्षा लिखूंगा। पिछले कुछ दिनों से छुट्टियों में बाहर रहा। समाजशास्त्री ब्यूटी पार्लर में भालू के आगमन को महत्वपूर्ण घटना मान रहे हैं और अर्थशास्त्री आर्थिक उदारीकरण की लोकप्रियता का बयान चौतरफा मार करती व्यंग्य रचना के लिये मेरी बधाई स्वीकारें।

●●●

पत्र

कुमार रवीन्द्र

''हां नए कैलेण्डर में
धूप हो-तारीखें गंधों की
आओ दीवारों पर टांगे
एक नए सूरज का जन्मदिन''

प्रिय भाई,

नए कैलेण्डर का आरंभ हो चुका है। ईस्वी सन् की दूसरी सदी का दूसरा वर्ष, कुछ नई संभावनाएं, कुछ पिछली आशंकाएँ लेकर आया है। नया वर्ष आपको, आपके रचयिता को, आपके परिजनों को सर्वविधि समृद्ध करे। यही प्रभु से प्रार्थना है।

आपके द्वारा प्रेषित आपके गीत-संग्रह सुनो सूत्रधार की प्रति, दीप पर्व पर आपकी स्नेहपूर्ण शुभेच्छाएं पिछले मास के मध्य तक मुझे मिल गई थी। दीपपर्व-नववर्ष पर आपकी यह भेंट मुझे अमूल्य लगी। 'सूनो सूत्रधार' के गीतों से रू-ब-रू होता, उनसे साक्षात्कार सुखद अनुभूति दे गया मुझे। इन गीतों में प्रखर युग-संचेतना का तीव्र रागात्मक संयोजन हुआ है। अधिकांश गीत वर्तमान विसंगतियों, राजनीतिक छल-छद्मों, खंडित आस्थाओं और बिखरते मानव-मूल्यों की ही आख्या कहते हैं। आपके कहन में एक बिंबात्मक नयापन मुझे दिखा है कुछ गीतों में। वही गीत प्रभावी लगे हैं। यथा 'वृंदावन मन का सूना है' 'बोलो जादूगर' 'तुमसे तो अच्छा था' 'जीवन ऐसा उपन्यास है' 'एकाकी है मन' 'क्यों उदास मन है' 'सूत्रधार बोलो' 'लौटी राजकुंवर' 'चाबी किसके पास है' 'जाने कब बदलेगा रिश्ता' 'देख रही आसमान' 'बहुत जतन से बुना कबीरा' 'रिश्ता शेफ रहा' 'प्रेमचंद अजनबी यहां पर' 'परेशान

इतिहास है' 'को सी की सुधि ना' 'ऐसे गीत हैं जिनकी बिंबात्मक संयोजना अलग किसिम की है। इन्हीं गीतों में आपकी अलग पहचान ने मुझे बार-बार उन्हें पढ़ने को बाध्य किया है। अन्य गीतों को नजरन्दाज करना संभव है, पर इन्हें नहीं। व्यंग्य आपकी मुख्य लेखन-विधा रही है। उपरोक्त गीतों में भी व्यंग्य का वह स्वर मुखर हुआ है, किन्तु उनमें एक हृदयग्राही सहजता भी है, जो नये गीत की प्रमुख पहचान है। इस सफल एवं सक्षम गीतात्मक परिणति के लिए आप मेरा हार्दिक अभिनंदन स्वीकारें। संकलन अपनी पहचान बनाएगा, यह निश्चित है। आशा है आप मेरी उपरोक्त व्याख्या को एक समायु बंधु की बेबाक प्रथम सहज प्रतिक्रिया के रूप में ही लेंगे। यदि आपको इसमें कुछ अखरे, तो मेरी कोताही, मेरी नासमझी मानकर उसे नजरअन्दाज कर दें। पत्र में आपने मेरे गीत-संग्रहों को देखने की इच्छा व्यक्त की थी। आप जैसे सहृदय सहधर्मी तक उन्हें पहुंचाने का मोह मेरा भी है। किन्तु समस्या यह है कि मेरा तीसरा व अंतिम गीत संग्रह 1992 में आया था और अब मेरे पास इन तीनों संग्रहों की इतनी सीमित प्रतियां रह गई हैं कि शोधार्थियों के लिए उन्हें रखना अनिवार्य है। फिर भी देखता हूँ कि आपके पास कम से कम एक गीत-संग्रह तो पहुंचा सकूं।

स्वथ्य-सानंद होंगे। पत्र दें।

●●●

पत्र

कुमार रवीन्द्र

प्रिय भाई,

आपके गीतों से रू–ब–रू होने का पहला सुयोग। सुखद रहा यह संपर्क। गीतों की कहन एक परिपक्व गीत शैली की बानगी देती है। सोच नहीं पा रहा कि आप किस वयक्रम में होंगे। गत के संकेत अनुमान लगाने में विशेष सहायक नहीं हैं। किन्तु एक अनुभवी जीवन की अनुभूतियां इन गीतों में उपस्थित है। इन एहसासों को जिस सहज ढंग से इनमें अभिव्यक्ति मिली है, उसके लिए आपको बार–बार साधुवाद देने का मन करता है।

अपने लेखकीय व्यक्तित्व से विस्तार से परिचित कराएंगे, तो अच्छा लगेगा।

आशा है आप सपरिवार स्वस्थ सानंद होंगे।

स्नेहाभिनंदन सहित।

●●●

पत्र

लक्ष्मीनारायण शर्मा 'साधक'

आदरणीय पाण्डेय जी,

सादर नमस्कार।

19 मई 2004 का शुभ प्रभात उत्साह वर्धक रहा। वे क्षण निस्संदेह मूल्यवान थे और अभी भी वे आ उपस्थित होते हैं मेरी स्मृति में, आपके नवगीत संग्रह 'सुनो सूत्रधार' को पढ़ते पढ़ते। मेरे जैसे अपरिचित व्यक्ति ने उस दिन सवेरे-सवेरे आपको नींद से उठाकर मुलाकात का लाभ उठाया था और तभी अपनी दो सद्य प्रकाशित कृतियाँ 'चिड़िया बैठी नींड़' और बतरस आपको भेंट की थी। आपने उन्हें प्राप्त करते हुए शायद मुझे परिचय श्रृंखला में जोड़ लेने की कृपा भी कर दी थी। इसे सिध्द करता है आपका वह पत्र जो आपने मेरी कृतियों के विषय में प्रेषित किया। हार्दिक धन्यवाद।

आपका गीत संग्रह 'सूनो सूत्रधार' आज भी है मेरे हाथों में, कई दिनों से आपके गीतों का रसास्वादन कर रहा हूँ। निसंदेह आप जन-वेदना के कुशल चितेरे हैं।

"आहत मैं, मुझसे मत पूछो कुरूक्षेत्र की बात
सूर्यमुखी वे हो जायेंगे देकर हमको रात"

पढ़कर जन-जीवन का दर्द शिराओं में प्रवाहित होकर हृदय को स्वार्थ युक्त विषाक्त वातास की बेचैनी अनुभव कराने लगता है। आपका यह नवगीत संग्रह सम्प्रेषणीयता, भाव, प्रवणता, विचार उद्दीपन और संवेदनशीलता की अपनी गहरी छाप छोड़ता है -

पाठक के हृदय पर और साथ ही उसे कविता के एप्रिसिएशन से भी जोड़ता है ।

“चार हजार वेतन में निर्मित चार लाख का घर
कैसे सम्भव कर लेते हो बोलो जादूगर।”

“सुबह ले गये तुम, कह गये शाम तुम्हारी है
माल ले गये सभी, कहा दुकान तुम्हारी है”

ये नवगीत अपनी सरलतम अभिव्यक्ति के साथ जैसे हर जुबान पर चढ़ जाते हैं–

“जब भी हुआ अकेला मैने, तुम पर गीत लिखा
सम्बोधन में तब तब मैने, तुमको मीत लिखा
आत्मदग्ध होकर जो पाया, वह नवनीत लिखा”

इस गीत में आपकी आत्म ध्वनि, गहराई में छुपे माधुर्य स्वर से जुड़कर अतीत से सरोकार स्थापित करा देती है जो अभी भी मधुर स्मृति का रूप धारण कर जी रहा है ।

फिर अनुभव करता हूँ एक सच्चाई यह भी –
“जीवन को परिभाषित करना अब आसान नहीं है
लगता है यह वतन पुराना हिन्दुस्तान नहीं है”

“जिसमें कोई गंध नहीं है ऐसे फूल न होना
टूटे सब अनुबंध रेशमी यूं प्रतिकूल न होना”

ऐसे गीत पाठक की हृद वीणा के स्पंदन बन जाते हैं।

“प्रेमचंद अजनवी यहां पर” साथ ही “निराला” नामक गीत बहुत खूब है । पढ़ते–पढ़ते साहित्य और साहित्यकारों की उपेक्षा से मन दुखी हो उठता है ।

"सूर्यमुखी मन" नामक नवगीत मन को सम्बल देता है। मेरा आत्मविश्वास आपकी इस रचना में तदाकार होता हुआ आपके इस गीत की इन पंक्तियों को दोहराता है बार-बार -

"थको मत, अश्व जुते
सूर्यमुखी मन"

यूं तो आपके सभी गीत मन पर छाने वाले गीत हैं। इनमें समाहित बिम्ब और प्रतीक पाठक को उसके निहित भाव तक पहुंचाकर विचार उद्दीपन के सोपान बन जाते हैं। व्यथा वेदन-निसृत मर्म अनुभूति का विषय है। कवि की अनुभूतियों में असीम भाव सागर लहराता परिलक्षित होता है। संघर्ष पथ प्रेरक आपके जन बोधी नवगीत आपकी साहित्य साधना के महकते दहकते फूल हैं।

शुभकामनाओं के साथ -

•••

पत्र

विद्या गुप्ता

सम्मानीय स्नेही त्रिभुवन जी,

स्नेहाभिवादन।

आपका स्नेह, सम्मान एवं तत्परता से भेजा हुआ स्नेह-उपहार (पुस्तक एवं पत्र) मिला। पारिवारिक व्यस्तता की भारी उथल-पुथल के शांत होते ही 'सुनो सूत्रधार' से मिली। सच है - वर्तमान जीवन में सूत्रधार ही गाफिल भूला हुआ स्वयं से दूर, खोया हुआ हो तो सफल प्रस्तुति कहां?

बहुत बड़ी है दुनिया लेकिन
दिल में कोई जगह नहीं
सम्बोधन से वंचित
केवल नाम रह गये हम
किसके साथ जुड़े मिल जाये
एकाकी है मन

'वो अखवार नही' दिनों बाद नदिया में 'याद आ रहे इस मौसम में' 'एक नदी हूँ मैं' 'अब विवश चेहरे हुए' 'लग रहे बौने बहुत' 'सूत्रधार बोलो' 'क्यों उदास है मन, जीवन ऐसा उपन्यास है। किसी नदी के सूनेतट सा.. रचनाएं बहुत अच्छी लगी।'

वैसे तो एक अनुभवी किन्तु सहज मधुर गीतों के गीतकार की सारी रचनाएं गुनगुनाते-गीत सी संगीतमयी होती ही है किन्तु आज के नीरस स्वादहीन साहित्यिक माहौल में आपके गीत ज्यादा आकर्षित करते हैं। एक गुलाब खिला 'जाने फिर कब मिल जाये' 'आज विहग ने डरते डरते' 'हँसते हँसते आज अचानक ' बहुत मधुर स्मृति गीत है। इसके साथ ही एक प्रश्न भी है कि 'अधिकांश

रचनाओं के स्वरों में विवशता की गहरी पर्तें क्यों?' 'लेखनी का जन्म ही शायद इसलिये हुआ है कि वह दर्द, निराशा, विवशता, भ्रम, कुंठा जैसे कांटो को चुन ले और निरापद प्रेरणापथ विछा दें। शायद मैं इतना ही समझी हूँ साहित्य को।

दीपावली की सुन्दर सुखद शुभकामनाएं मिली। सचमुच जीवन का पथ ज्योतिर्मय हो और छोटे से जीवन की छोटी-छोटी घड़ियां हम सब समत्व पथ पर साथ चले मेरी भी शुभकामना है। विचारों का आदान'प्रदान स्वयमेव ही सुखद घटना है। सुखद क्षण है फिर शीघ्र मिले या पत्र लिखें एक संवाद की प्रतीक्षा रहेगी। परिवार में सबको यथायोग्य।

●●●

छत्तीसगढ़
अनुवाद

छत्तीसगढ़ी अनुवाद

फर के अगोरा म वृक्षारोपण

दुरगा प्रसाद पारकर

आजादी मिले के बाद हमन फर के अगोरा करत रहेने फेर इही बीच पता चलिस की पेड़ ह गायब होगे हे। अब हालत ए हे कि उपलब्धि मन के फर गायब करे के बाद फेर पेड़ लगाय बर ढिंढोरा पिटत हे। लोगन सुन के हैरान हे। एक पीढ़ी आजादी के पौधा मन ला लगाय म न्योछावर होगे फेर देश के हालत अभी घलो बंजर भुइंया कस चातर हे। लोगन तो फर के संगे संग पेड़ ला घलो काट के लेगे। जउन डाहर देखो उही डाहर हरियर छत्तीसगढ़ के कार्यक्रम ह जोर-शोर ले चलत हे। कुछ अइसने मइन्खे मन पेड़ लगावत हे जउन ह आजादी के पहिली घलो वृक्षारोपण करे रिहिन फरे वो पेड़ मन के अभी कोनो अता-पता नइहे। आजादी के बाद उपलब्धि मन के आंकड़ा ह मइनखे मन करा रहिगे, फर अउ पेष का तस्कर अउ बांट के खवइया मन के हिस्सा म चले गे। आजादी के पहिली राष्ट्रभक्ति के जउन बढ़िया पर्यावरण बने रिहिसे वोहा धीरे-धीरे मइलात गे। आजादी के पहिली हमर करा भगत सिंह, राजगुरू, बिस्मिल, सुखदेव जइसे जोरदार फरदार पेड़ रिहिसे। आजकल हमर करा बेइमानी भ्रष्टाचार जइसे नागफनी के पौधा हा आजादी के हरियाली के बदला मा मिले हे। अइसन मा पर्यावरण के फिकर करना स्वाभाविक है। जउन हा ए देश के भविष्य ला जानत रहिसे वोहा बहुत पहिली लिख दे रहिसे जउन हा त्याग करही वोहा पाही। जउन हा फर के आशा मा करम करही वोहा निरास होही। आजादी के देश उही अमरवाणी ला जीयत हे। नेता मंत्री पद तियागथे ताहन राजदूत के पद पाथे। संगठन के पद छोड़ते ताहन वोला तुरते निगम के अध्यक्ष पद मिल जथे। जनता करम करते फेर वोहा फर बर चुक जथे। फर हा बड़े-बड़े बंगला अउ पद म बइठे रोबदार मन करा पहुंच जथे। उमन जनता के उदारता के बढ़ई करत कभू नई थके। उमन बिना स्वार्थ कर्मयोग उपर राष्ट्रीय परिचर्चा आयोजित करथे अउ उमन आशा करथे कि मनखे मन बिना कोनो लालच के देश के

सेवा म जुटे रहीं। अगस्त के महिना म हमन सिरिफ दुए ठन बूता करथन। आजादी के बखत लगाए गे रूख मन के सुरता करथन अउ रूख लगाए बर गोहराथन। फर के चिंता के जिम्मेदारी तो दूसर मन के आय। हमर बुता आय हर बार कटाए पेड़ के जघा मा नवा पेड़ लगाना अउ पेड़ मन के देखभाल करना अउ जब पेड़ ह तइयार हो जय ताहन फर ला टोरे बन दूसर मन के हाथ म सौंप देना। रूख लगाना हमर नियति आय अउ फर ला टोर के आपस म बंटई उकर राजनीति आय। उमन रूख राई के बदला फर के हिसाब रखथें। जउन डारा म फर लगे धरथे वो डारा के मालिकाना हक उमन अपन अधिकार म ले लेथे। आजादी के पहिली जउन रूख लगाए गे रिहिस वोहा आजादी के बाद चार दशक तक काम आवत रिहिस। अउ जउन रूख लगाए जात हे वोहा आज ले पचास साल बाद के तस्कर मन के अउ बेवस्था के हिस्सादार मन के काम आही। पहिली बिना स्वार्थ भाव ले रूख लगाए जात रिहिस। आजकल पइसा बचाय योजना म फायदा बर रूख लगाए जाथे। आजकल पेड़ लगाए बर कतनो प्राइवेट योजना गजट म छपत रहिथे। आप कोनो करा रहव, सिरिफ अकेट्ठा रकम पठो देव ताहन आपके नाव ले रूख लग जही। समाज अउ देश खातिर जियइया मनके समय बीतगे। उकर लगाए पेड़ ल काटे गिस। अब अइसन मनखे हे जिकर मन बर लाभ सबले उंचा आय। बिना स्वार्थ के राष्ट्र सेवा करे के दिन चले गे। आजकल इही बताय योजना ले राष्ट्र सेवा चलत हे। भ्रष्टाचार अउ साम्प्रदायिकता के रूख ह अतेक जल्दी उल्होथे, कि वोला कतनो काटो तभो इकर जंगल हा हरियरे हरियर दिखथे। ठीक उकर उल्टा राष्ट्रीय एकता के पौधा ला कतनों सावधानी ले लगाबो, उग्रवाद अउ क्षेत्रीयतावाद के जानवर ह देखत वोला रउंद डरथे। राष्ट्र के उन्नति के खातिर एक सुघ्घर पौधा लगाते भार ओकर चारो कोती राष्ट्र विरोधी अनगिनत बेशरम के पौधा मन बहुत जल्दी जाग जथे। कोनो भी नेक विचार ला इंकर मन ले बचा के रखना बड़ा मुश्किल हो जथे। फर नइ मिले के बाद घलो वृक्षारोपण अभियान म लगे मनखे मन के विषय म इही केहे जा सकत हे कि वोमन आजादी के परम्परा के सच्चा अनुयायी आय जउन देश सेवा करत कोनो फर के आसा नइ करय। देशभक्त मन के संख्या आजादी के बाद जउन रफ्तार म बाढ़े हे वो आघू अउ बाढ़े के संभावना हे।

गीत गाता चल
(परिन्दे सुनो)

गीत गाता चल (परिन्दे सुनो)

परिन्दे सुनो

जिन्दगी कभी गालिब के आशआर की तरह नजर आती है
कभी अकबर इलाहाबादी के शेर की तरह मुस्कुराती है
कभी लगती है साहिर के उदास नग्मों की तरह
कभी फिराक की तरह जिन्दगी के मायने बताती है
कभी मीर, कभी दाग, कभी मोमिन कभी नजीर बनकर
पता नहीं जिंदगी शाइरी के कितने रंग दिखाती है
कभी मजाज की तरह सिरहाने बैठकर शेर सुनाती है
कभी दुष्यंत की तरह अंधेरे में मशाल जलाती है
उस्तादों की इस बेमिसाल महफिल में
मेरी गजले कुछ कहते हुए सकुचाती है

साभार

जो छाँव औरों को दे खुद कड़कती धूप सहें
किसी किसी को खुदा ये कमाल देता है
'दरवेश' भारती

1

सबके लिये जो उजास होता है
अकसर वह खुद उदास होता है
रौशनी बाँटने जो निकला है
अंधेरा उसके आसपास होता है
बात करता है जो फकीरी की
राजसी उसका लिबास होता है
सच कहने की कसम जो खाता है
मुखौटा उसके पास होता है
जो कुछ पाने की उम्मीद रखता है
अकसर वह ही हताश होता है

***

2

फूलों के लिबास में कांटो का पैरहन है
किसे मालुम है वो रह बर है कि रहजन है
वोट माँगने आता है जब भी वह
देखकर लगता है बहुत सज्जन है
उससे मिलना अब आसान नहीं है
उसकी कोठी में फहरा रहा परचम है
सुलझना अब बहुत आसान न ही
ऐसी मुश्किल में हर एक उलझन है
उनसे बेकार है कुछ भी कहना
उसकी दीवार पर चारों ओर दरपन है

***

3

सियाह अंधेरा है उधर मत देखो
वहाँ उल्लुओं का डेरा है उधर मत देखो
विषैले साँप लेकर चलता है
उसे कहते हैं सपेरा उधर मत देखो
बचके निकल जाना कठिन न हो जाये
मजहबी तिलस्म का घेरा है उधर मत देखो
वे जिन मुकामों की बात करते हैं
वो न मेरा है न तेरा है उधर मत देखो
वो जिधर जा रहा है जाने दो
वहाँ मौत का बसेरा है उधर मत देखो

***

4

जिन लोगों का घर नहीं होता

उन्हें किसी का डर नहीं होता

ऐसे परिन्दे भी आसमों में उड़तें हैं

जिनके पास अपना पर नहीं होता

सिर्फ दस्तक से ही खुल जाये

आज कल कोई ऐसा दर नहीं होता

जिनको सोचा था फरिश्ता वो फरिश्ता होते

इस तरह ओखली में सर नहीं होता

***

5

मुश्किल सफर सभी का आसान हो जाये
इंसान यदि सचमुच यहां इंसान हो जाये
रहते हैं लोग कितनी ऊंची ईमारतों में
कुछ लोग सोचते है एक मकान हो जाये
कारों में सफर करते है यहाँ लोग मजे से
कुछ लोग सोचते है मुश्किल सफर आसान हो जाये
कुछ के लिये है दो जख है कुछ के लिये है जन्नत
ऐसा भी हो सभी का एक हिन्दोस्तान हो जाये
जो फरिश्ते हैं उनके लिये सब कुछ सुलभ है
जो आदमी है उनका भी इंतजाम हो जाये

***

6

उड़ते हुए परिन्दों का परवाज देखिये
अंजाम का पता नहीं आगाज देखिये
है जिनको जरूरत आती नहीं उन तक
वे दे रहे हैं ऐसी आवाज देखिये
वे बेचकर लौटे हैं बाजार में शब्दों को
करते हैं निराला पर वे नाज देखिये
वे देखते हैं ख्वाब में एक ताजमहल रोज
भूखी पड़ी है पास में मुमताज देखिये
सहमें हुए परिन्दे आपस में कह रहे हैं
पहरे के लिये भेजा है फिर बाज देखिये

***

7

जो लगाये थे दरख्त उस की छाँव कहां है
गाँधी तुम्हारे सपनों का गाँव कहाँ है
खुशहाल जिन्दगी के कुछ मंत्र दिये थे
उन मांत्रिकों के मंत्रो का प्रभाव कहाँ है
तूफानों से लड़ने के लिये लाये थे सहेज कर
तट पर बँधी हुई वो नाव कहाँ है
हर विघ्न से लड़ने के लिये व्यग्र थी बाहें
गरीबी को हराने के वो दाँव कहां है
जो बढ़ रहे थे देश को खुशहाल बनाने
सफर में निकले हुए वो पाँव कहाँ है

***

8

लोग कह रहे हैं आप सुनते रहिये
अर्थ अनेक है आप गुनते रहिये
बोलना जिंदगी है उनकी क्या करें
आप सुनिये और सिर धुनते रहिये
वे सभी एक से बढ़कर एक है
उनमें से किसी एक को चुनते रहिये
उनके लिये जिंदगी हाथ की सफाई है
आप अपने लिये सपनों का गलीचा बुनते रहिये
वे तिलस्म हैं उन्हें समझना बहुत कठिन है
किसी तिलस्मी कथा की तरह उन्हें सुनते रहिये

***

9

आसमाँ में सितारों का मेला है
चाँद है कि फिर भी अकेला है
जिंदगी का आस्वाद जरा उस से पूछो
जिसने हर कदम पर पर तल्खियों को झेला है
तैयारी ऐसी है लगता है हजार साल जीना है
जबकि जिंदगी बस चार दिन का मेला है
वह भी बुलंदियों को छू सकता है
मत समझना वह रास्ते का ढेला है
बैठ हमसे जिस तिलस्म की बात करते हैं
वह कुछ नहीं सिर्फ आंकड़ों का खेला है

***

10

मुस्कान कम है आँसू ज्यादा है
पता नहीं जिंदगी का क्या इरादा है
कहते हैं गरीबों को भेज रहे हैं पूरा सामान
जो मिलता है वह उससे मगर आधा है
अमीर बनते जाते हैं अमीर गरीब और भी गरीब
एक तीर से दो दो निशाना साधा है
शक्ल हँस की है पैतरा बगुले का
जो भी मिल जाये हड़प लेने का इरादा है
पंचतंत्र के बंदर ही बाट रहे रोटी
उनके हिस्से में सबसे जियादा है

***

11

आधी धूप आधी छाँव जैसी जिन्दगी
आधा शहर आधा गाँव जैसी जिंदगी
सुबह से शाम तक थिरकती ही रहती है
किसी नर्तकी के पाँव जैसी जिंदगी
कोई हारता है जीत जाता है कोई
सभी बैठे हैं लगाकर दांव में है जिंदगी
कोई डूबता है कोई पार उतर जाता है
नदी में बहती हुई नाव जैसी जिंदगी
जिसके मिजाज का कोई भरोसा नहीं है
बदलते बाजार के भाव जैसी जिंदगी

***

12

आसमाँ में सितारों का मेला है
चाँद् है कि फिर भी अकेला है
जिंदगी का अस्वाद जरा उसे पूछो
जिसने हर कदम पर तकलिफे को झेला है
तैयारी ऐसी है लगता है हजार साल जीना है
जबकि जिदंगी बस चार दिन का मेला है
वह भी बुलंदियों को छू सकता है
मत समझो वह रास्ते का ढेला है
वो हमसे जिस तिलस्म की बात करते हैं
वह कुछ नहीं सिर्फ आंकड़ों का खेल है

***

13

तूफान निकट है अपनी नाव सम्हालो
शहरों से बचना है तो अपने गाँव सम्हालो
आँधी बहुत है तेज सम्हलना कठिन है
खिसक रही है जमीन अपने पाँव सम्हालो
वे काटते आये हैं सदियों से लगे पेड़
थोड़ी बहुत बची है वह छाँव सम्हालो
वे शह दे रहे हैं तुम मात खा रहे हो
बचना है पराजय से अपनी दाँव सम्हालो
वे आ रहे हैं सबको कठपुतली बनाने
अभिमंत्रित चेहरों का प्रभाव सम्हालो

***

14

मैं हूँ और मेरी तनहाई है
जिंदगी किस मुकाम पर ले आई है
परेशानियाँ हजारों हैं यहाँ
समझाने का अवसर सिर्फ तिहाई है
यहाँ किसी का बोझ कौन उठाता है
जो मिलता है वह तमाशाई है
जिंदगी से भागकर कहाँ जाये
एक तरफ कुंआ है एक तरफ खाई है
तुम भी अजीब हो कविता की बात करते हो
लोग यहां रूपयों के सौदाई है
जो बदनसीब हैं अंधेरे में सफर करते हैं
जो खुशनसीब हैं उनके पास रौशनाई है

***

15

वो कितना बदनसीब है जिसके पास अपना घर नहीं है
वो कितना तनहा है जिनके साथ हम सफर नहीं है
वही परिन्दे आसमाँ में मजे से उड़ सकते हैं
जिन्हें आसपास बाजों का डर नहीं है
जिनकी पीठ पर हरदम बोझ रहता है
उन्हें मालुम है आसान सफर नहीं है
जो जाते हैं सब कुछ हर चीज के विषय में
उन्हें शायद अपनी खबर नहीं है
आँखे अब भी देख सकती है सपनें
मगर इस तरह देखने की अब उमर नहीं है

***

16

काँटों के पैरहन पर फूलों की सजावट है
जो उजड़ने से नहीं डरता उस परिन्दें की बनावट है
चलते हैं लोग ऐसे पत्ता भी नहीं हिलता
रहते नहीं वहाँ जहाँ पर थोड़ी सी आहट है
घर में बसा के बैठ गये अपनी ही एक दुनियाँ
लगता नहीं कहीं द्वार या चौखट है
लोगों को देखिये कितने उदास लगते हैं
उस ओर घर के कमरों में कितनी सजावट है
रख लेते हैं आँखों में आँसू को छिपाकर सब
हँसने की सभी कोशिश सिर्फ दिखावट है

***

17

वक्त घबराना नहीं हम आते हैं
डबडबायी आंखों से हम गाते हैं
हम रास्ते में तब भी जगमगाते हैं
जब मंजिल नहीं सिर्फ अंधेरी रातें हैं
आप क्यों खामोश उदास बैठे हैं
कहने के लिये अभी हजार बातें हैं
वे धूप से कभी नहीं घबराते
जिनके पेड़ों से रिश्ते नाते हैं
जो कभी झपटकर मिलते थे
अब देखते ही सरक जाते हैं

***

18

कभी सांझ की आहट सुनाई देती है

कभी सुबह की मुस्कुराहट दिखाई देती है

वो जब यादों में चाँदनी की तरह हँसती है

जिन्दगी खूबसूरत किताब दिखाई देती है

कुछ अच्छे लोग जब आपस में मिलते हैं

जिन्दगी मुनाफे का हिसाब दिखाई देती है

आप फरिश्ता न सही इन्सान भी जब लगते हैं

सारी कायनात खुशनुमा दिखाई देती है

डबडबाई आँखें हैं आँसू का इंतजाम न कर

जिंदगी नाउम्मीदी में घबरायी दिखाई देती है

***

19

मुझे जितनी खुशी दी है उतना गम दे दो
होठो पर हँसी दी थी आँखे नम दे दो
जितनी रौशनी है काफी है मुझे
जिनकी रातें अँधेरी है उन्हें पूनम दे दो
जिनको जरूरत हे बाँट दो पहले उनको
मैं खुश हूँ चाहे मुझे थोड़ा कम दे दो
पँख मजबूत है ऊंची उड़ान है मेरी
जो उदास है उनकी आँखों में सपन दे दो
वे अकेले हैं उन्हें थोड़ा अपनापन दे दो

***

20

तूफान निकट है अपनी नाव सम्हालो
शहरों से बचना हो तो अपने गांव सम्हालो
आँधी बहुत है तेज सम्हलने का वक्त नहीं है
खिसक रही है जमीन अपने पाँव सम्हालो
वे शह दे रहे हैं तुम मात खा रहे हो
बचना है पराजय से अपनी दाँव सम्हालो
वे काटने आये हैं सदियों से लगे पेड़
थोड़ी बहुत बची है वह छाँव सम्हालो
वे आ रहे हैं सबको कठपुतली बनाने
अभिमंत्रित चेहरों का प्रभाव सम्हालो

***

21

जिंदगी किसी के लिये फूल किसी के लिये खार है
किसी के लिये पतझर किसी के लिये बहार है
किसी को फुरसत नहीं पल भर के लिये
किसी के लिये हर दिन रविवार है
कोई बैठा है मखमल की गद्दीदार कुर्सी पर
कुछ तो पहरा देने वाले कोटवार है
कुछ ऐसे हैं जो चाहा तुरंत मिल गया
कुछ ऐसे हैं छोटी सी सुविधा के लिये इंतजार है
कुछ के लिये कदम कदम पर आलोचना है
कुछ के लिये बिना मेहनत के पुरस्कार है
कुछ है जिनके लिये केवल इनकार है
कुछ है जिन के लिये चारों ओर इकरार है

***

22

पता नहीं वो कौन है जो सुनहरी सुबह छीनकर
सियाह अँधेरे में हमारा भाग्य लिखता है
उसे जब हमारी जरूरत होती है
वह पाँच साल में एक बार दिखता है
उसे खरीदना सबके लिये आसान नहीं है
वह कोहिनूर की तरह लाखों में बिकता है
उसे पाना सबके लिये आसान नहीं होता
वह कीमती घरों में ही टिकता है
लोग आवेदन लेकर रात भर खड़े रहते
वह उन्हें देखकर भी कहाँ रूकता है

***

23

रूपय सब ले गये केवल हिसाब बाकी है
जिंदगी को समझने के लिये किताब बाकी है
फिक्र इतनी हे कि रात भर नींद नहीं आती
कहते हैं जिंदगी में शबाब बाकी है ,
आजादी के मिलते ही चले गये देशभक्त
अब तो कुर्सियों में बैठे हुए नवाब बाकी है
सैकड़ों गजल सुनने के बाद जब कुछ न कहा
तब हँसकर बोले अभी लाजवाज बाकी है
मुशायरा खत्म समझ लोग जब चलने लगे
तभी सदर ने कहा हमको सुनना जनाब बाकी है

***

24

पता नहीं जिंदगी तुझे क्या गम है
जिसे देखकर मसखरे की आँखे नम है
बहुत कोशिश के बाद भी समझ नहीं आता
तुझे समझने के लिये सब किताबें कम हैं
वही टिकता है जिंदगी की लड़ाई में
जिसके पास ताकत है रूपये का दमखम है
आजकल वो भी टिमटिमा रहा तारों जैसा
जिसे देखकर कभी कहते थे पूनम है
तुम्हारे पाँव के नीचे जलते हुए अंगारे हैं
इधर रास्ते पर शबनम भी बहुत कम है

***

25

पहले जो पत्र लिखते थे दूरभाष हो गये
जो दिल के करीब थे वे आभास हो गये
पहले जो कहीं भी मिल जाते थे
अब वे बहुत दूर और खास हो गये
जिनसे बहुत दूर थे कभी मिलते न थे
अब उन्हीं अवसरवादियों के पास हो गये
उपेक्षित हैं वे जो शिलालेख लिखते थे
जो नाचीज थे वे सब इतिहास हो गये
ये कैसा वक्त है हँस रहे हैं कांटे
फूलों के चेहरे सब उदास हो गये

***

26

पर में परिन्दे की जान है

आँखों में सिर्फ आसमान है

वे भी उड़ान में निकले हैं

जिनके पास ढेर सा सामान है

वे मजबूत डैनों से बहुत डरते हैं

जानते हैं उनकी ऊंची उड़ान है

ये कैसा वक्त आ गया है

ऊंची दुकान फीका पकवान है

दरिन्दों के पास चाहे जितना हौसला हो

जनता आखिर इनसान है

***

27

जिंदगी एक अंतर्जाल है
अर्थ में गरीब सूचना में मालामाल है
किसी को किसी से मतलब नहीं है
पूछ भर लेते हैं क्या हाल चाल है
अब किसी के हाथों में नियंत्रण नहीं है
सभी कहते हैं उलझा हुआ सवाल है
तिकड़मों से चल रही है जिंदगी
जो सही रास्ते पर है बुरा हाल है
जमाने की रफ्तार ऐसी बढ़ेगी है
किसी गरीब की गलती नहीं दाल है

***

28

जिंदगी सांप सीढ़ी का खेल है
बच गये तो बंगला है फंस गये तो जेल है
लोग फंसते हैं छूट जाते हैं
शैतानों में कितना बढ़िया तालमेल है
कभी यात्रिओं की सुविधा के लिये रेल थी
अब दलालों की सुविधा के लिये रेल है
नेता तो कठपुतली है निर्णय कहां मरजी का
किसी और के हाथों में उनकी नकेल है
देखकर लेते हुए मंत्री के शपथ बोले
बंदर के सिर में चमेली का तेल है

***

29

वक्त के परिन्दे की उड़ान देखिये

शिखर पर पहुंचे लोगों का गुमान देखिये

झूठ आजकल कितनी बुलंदियों पर है

गर्दिश में डूबता हुआ ईमान देखिये

आजकल जो सबसे ज्यादा परेशान दिखता है

दुनिया के नक्शे में हिन्दुस्तान देखिये

मंहगाई के तूफान में चारों तरफ

तिनके सा लाचार इनसान देखिये

शब्दों का तीर चलाने को है तत्पर

खींच नहीं पाते धनुष कमान देखिये

जिंदगी के लिये कितनी तेजी से तैयार हो रहा

शैतानों के द्वारा मौत का सामान देखिये

***

30

एक ओर शाही अधिवास दूसरी ओर अटल आवास

दोस्तों क्या इसे ही कहते हैं सबका विकास

एक ओर एक्सप्रेस वे, मेट्रो, फ्लाईओवर

दूसरी ओर धूलभरी पगडंडी टूटी सड़कें

सही आज की जनसेवा है हुजूर

लोग आपकी तारीफ करें या जमकर भड़के

एक ओर बड़े होटल, स्वीमिंगपुल दूसरी ओर टूटे स्कूल

आर्थिक योजनाएं सब जा रही है फिजूल

बाँट लिया आपस में जो भी मिला हिस्सा

लोग सिर्फ दोहराते हैं कुर्सी का किस्सा

***

31

आजकल लोगों के चेहरों पर मुस्कुराहट नहीं है
सहमें हुए दिखते हैं जिंदगी की आहट नहीं है
कोठियाँ है बंगले हैं ऊंची ईमारते खड़ी है
कोई खुशहाल छोटी सी बसाहट नहीं है
पहले मिलकर कितनी उम्मीद बंधती थी
आजकल लोगों की वैसी बुनावट नहीं है
घरों में चीजें हैं सब नये जमाने की
लेकिन रहने वालों की नई बुनावट नहीं है
सच कहना ही है मकसद जब कविता का
इसीलिये उसमें दिखावापन नहीं है

***

32

आजकल मैं अपनी स्मृतियों के साथ रहता हूँ
चिड़ियों की तरह मैं आकाश में बात करता हूँ
एक कोयल आती है आँगन में गुनगुनाती है
मैं भी उस के साथ कभी कभी गुनगुनाता हूँ
कोई आता नहीं है वैसे कहते हैं आता हूँ
मैं परिचित आवाजों का इंतजार करता हूँ
किनारे देखकर नाव को सागर ने कहा
मैं तुम्हारे लिये लहरों का इंतजाम करता हूँ
हालात कितनी तेजी से बदलते जाते हैं
कोई देखकर पहचान ले इंतजार करता हूँ

***

33

पाँव जमीन पर आँखें आसमान में रहे

नाव चलाओ तो आँखे तूफान पर रहे

परिन्दा वही पहुंचता है ऊंचाईयों पर

जो कभी ठहरे नहीं हरदम उड़ान पर रहे

जीत और हार दोनों रास्ते में मिलती है

जीतता वही है जिसकी नजरे मुकाम पर रहे

दोस्तों के साथ हँसना खेलना भी जरूरी है

शर्त यह है कि नजर सदा काम पर रहे

जिंदगी उसी के मस्तक पर तिलक लगाती है

जो हर वक्त संघर्ष के मैदान पर रहे

***

34

एक की जीत में दूसरे की हार है
चारों तरफ ऐसा ही व्यापार है
यही हिसाब लगा रहे हैं लोग
किसके पास साइकिल है किसके पास कार है
तरक्की इस कदर हुई है जमाने में
डॉक्टर कम हैं ज्यादा बीमार हैं
जिसके हाथों में आजकल बाइक है
देखने में लगता चिड़ीमार है
नफरत फैलाने वाले बेफिक्र हैं यहां
सख्त पाबंदियों में यहाँ प्यार है
बसों ट्रेनों में इस कदर भीड़ है
एक की पीठ पर दूसरा सवार है

***

35

पढ़ते हैं लोग हमें अखबार की तरह
कविता बाँचते हैं समाचार की तरह
संवेदनाएं सहमी हुई कोने में खड़ी है
गति लगते हैं विचार की तरह
कुछ लोग चाहते हैं पढ़े और भूल जाएँ
सफर के बीच दिखे किसी आबशार की तरह
वे चाहते हैं कविता आँगन में सुशोभित हो
किसी खूबसूरत रंगीन कचनार की तरह
आत्मीय चिट्ठियों के दिन पता नहीं कहां गये
आजकल खबरें मिलती हैं तार की तरह

***

36

तुम मुझसे क्या छीनोगे केवल छाँव बाकी है
मुझे डराओ मत तूफां में मेरी नाव बाकी है
लाख कोशिश करो तुम मात नहीं दे सकते
जब तक मेरे पास बचने के लिये दाँव बाकी है
कोयल तो कबसे खामोश हो गई बाग में
चारों ओर कौवों की काँव काँव बाकी है
क्या हुआ यदि गिर गए लड़ते हुए हम
अभी उठाने के लिये तत्पर कुछ बाँह कर लो
बुझाने की चाहे जितनी कोशिश कर लो
बुझती नहीं है शब्दों में जो दाह बाकी है

***

37

लोग इस कदर अपने में डूबे हुए हैं
उन्हें पता ही नहीं कौन जीता है कौन मरता है
जो परिन्दा आकाश में ऊंची उड़ान भरता है
हर एक पिंजरा उसका इंतजार करता है
सूरज को चाहे जितना गुमान हो अपने पर
उसके जाने के बाद दीपक ही प्रकाश करता है
पेड़ उड़ते हुए परिन्दों का घर होता है
लेकिन चाहकर भी वो कहां उड़ा करता है
पाबंदियाँ हजारों हैं उसके दरवाजे पर
वह खुशनसीबों से ही मिला करता है

***

38

ये कैसा वक्त है फरिश्ते डरे हुए
फूल मुरझाये केक्टस डरे हुए
मेहनत से लगायी थी लोगों ने जो फसल
जो काटने आए तो देखा चरे हुए
जो खाली जेब लेकर गये थे सेवा करने
लौट तो सबके जेब थे पूरे भरे हुए
जीवित समझकर जिनको देते रहे खाद पानी
सपनों के सभी पौधे निकले मरे हुए
घूमते हैं अभयारण्य में बखौफ शिकारी
दिखते हैं यहाँ शेर भी सहमें डरे हुए

***

39

पढ़ो जिन्दगी एक दिलचस्प किताब है
लड़ो जहाँ भी दिखे गलत हिसाब है
वह वक्त के अनुसार खुद को बदल लेता है
वक्त इसीलिये उसके लिये लाजवाब है
वह खुशनसीब है उसे पता ही नहीं है
लूटा हुआ जो देश का माल असबाब है
मुट्ठी भर चाँवल फटे कपड़े टूटी छत
आजकल उसके पास इतना ही शबाब है
उससे सम्हलकर मिलना आजकल वह
आकाश में दमकता एक आफताब है

***

40

बहुत दिनों से बंद पड़ा है दरवाजा खोलो
बाहर निकलो मिलो जुलो कुछ बात करो
बहुत अकेले हैं वे उनसे कोई नहीं मिलता
चलो चलकर उनसे भेंट मुलाकात करो
घिरे मत रहो तूफानों में पतवार सम्हालो
बैठो नौका में फिर लहरों पर आघात करो
जो भी संकट लेकर आये घर के दरवाजे
रोको उन्हें फिर जमकर प्रतिघात करो
वे हैं बहुत निपुण उनकी चालों को समझो
जो देते हैं शह की धमकी उनकी चालों को मात करो

***

41

जिन्दगी तुम्हारे पास उदासी की खबर है
और इधर मेरी भी हालात पर नजर है
घोंसले की तलाश में निकले हैं परिन्दे
इधर मौसम में तूफान का असर है
बहुत जतन के बाद भी तकदीर नहीं बदली
लिखने वाले के दिमाग में कुछ तो कसर है
इधर अँधेरे में भटकते रहें कब तक
कहते हैं उनकी तरफ उजाले की खबर है
हम डर रहे हैं उनसे जिन पर भरोसा था
वे कह रहे हैं उनको हम से ही डर है

***

42

अँधियारा देता है तो अँधियारे के साथ शबाब भी दे
जिन्दगी देता है तो जिन्दगी समझने की किताब भी दे
प्रश्न हजारों हैं जब चाहे पूछ लेना
मजा तो तब है जब कोई इनका जवाब भी दे
जो बिजलियाँ गिराते हैं कौन उन्हें समझाये
ऐसी सूरतें दी है तो चेहरे पर नकाब भी दे
फनकार हजारों हैं सब अपने में बड़े
उस्ताद वही होता है जो पुरअसर लाजवाब दे

***

43

लोग इस कदर अपने में डूबे हुए हैं
उन्हें पता ही नहीं कौन जीता है कौन मरता है
जो परिन्दा आकाश में ऊंची उड़ान भरता है
हर एक पिंजरा उसका इंतजार करता है
सूरज को चाहे कितना गुमान हो अपने पर
उसके जाने के बाद दीपक ही प्रकाश करता है
पेड़ उड़ते हुए परिन्दों का घर होता है
चाहकर भी वो कहाँ उड़ान भरता है
पाबंदियाँ हजारों है उसके दरवाजे पर
वह खुशनसीबों से ही मिला करता है

***

44

कभी धूप कभी छाँव जैसी जिन्दगी

कभी शहर कभी गाँव जैसी जिंदगी

कभी सांझ जैसी उदास दिखती है

कभी किरण के थिरकते पाँव जैसी जिंदगी

कभी उम्मीदों कभी नाउम्मीदों से घिरकर

तूफान के आने पर नाव जैसी जिंदगी

कभी मजाज की नज्मों की तरह अल्हढ़

कभी साहिर की गजल की दांव जैसी जिंदगी

कभी सियाह रात कभी चमकती रौशनी

कभी कोयल कभी कौवे की कांव कांव जैसी जिंदगी

***

45

द्वार खोला द्वार सभी बंद मिले
अर्थ की तलाश में मात्रा और छंद मिले
उड़ने के लिये निहारा जब आसमान
धरती के नूतन अनुबंध मिले
जिन्हें समझा हमसफर दूर चले गये
अजनबी के बीच नये संबंध मिले
जिन्हें परिभाषा की सीमा में रहना था
शिखर पर बैठे सभी निर्बन्ध मिले
मन की बात कहना कठिन है
जब कहना चाहा कितने प्रतिबंध मिले

***

46

न कोई चिट्ठी है न कोई खबर है
ये कैसे लोग हैं, कैसे हमसफर है
रिश्तों में पहली जैसी गरमाहट नहीं रही
लोग कहते हैं मंहगाई का असर है
आज कविता में छंद भी नहीं है
कहते हैं सबको जिंदगी बेहतर है
चिंता की बात क्या है सड़क बन जायेगी
देते रहो मोबाईल से जो भी खबर है
तुम्हारे पास कोयल है अमराई है लोकगीत है
उनके पास टैक्सी है, मेट्रो है फ्लाई ओवर है
सियासत चलाने का नुस्खा पूछो उनसे
कहते हैं समस्या खींचने के लिये रबर है

***

47

हमारा क्या है हम सदा बोलते रहेंगे
वे हमे समझौते के तराजू में तोलते रहेंगे
वे चूल्हा बुझाने की कोशिश करते रहेंगे
हम आग चढ़ी कढ़ाई की तरह खौलते रहेंगे
जो भी दिखेगा विरोध में खड़ा हुआ
वे प्रलोभन दिखाकर उसे मोलते रहेंगे
उन्हें किसी भी तरह पकड़ना कठिन है
हर बार बचने के लिये नया द्वार खोलते रहेंगे
जब भी तूफान आयेगा वे नाव बदल लेंगे
पतवार लेकर किनारे में डोलते रहेंगे

***

48

वक्त मैं तेरी मेहरबानी के लिए ठहरा हुआ नहीं हूँ
मैं भी ध्वज हूँ लेकिन फहरा हुआ नहीं हूँ
हालात बिगड़ने का अंदाज मुझे मालुम है
क्या हुआ जो चुप हूँ मगर बहरा हुआ नहीं हूँ
जीवन को समझने की कोशिश अभी जारी है
किनारे पर खड़ा हूँ अभी गहरा हुआ नहीं हूँ
जो तप रहे हैं मुश्किलों में उन्हें छाँव चाहिये
मैं भी शामिल हूँ कतारों में मगर हरा नहीं हूँ
अच्छी गजल कहने की शुरूआत है मेरी
सहमा हुआ लगता हूँ पर डरा हुआ नहीं हूँ

***

49

उड़ने का हौसला देख पंख की मजबूती न देख
बात की गहराई देख पाँव की जूती न देख
आदमी को जानने के नायाब तरीके हैं
तू उनके जिस्म पर सिल्क या सूती न देख
वे संत है यह जानने के लिये
केवल चंदन और माथे की भभूति देख
कितनी आँख है कहने में इसे परख जरा
केवल महकती लरजती हुई अनुभूति न देख
खरे लोग दो टूक बता करते हैं
उन्हें सुन केवल भक्तों की स्तुति न देख

***

50

जिंदगी तुम्हारे पास उदासी की खबर है
और इधर मेरी भी हालात पर नजर है
तिनके की तलाश में उधर निकले हैं परिन्दे
इधर मौसम में तूफान का असर है
बहुत जतन के बादभी तकदीर नहीं बदलती
लिखने वाले के दिमाग में कुछ तो कसर है
जिंदगी के अँधेरे में भटकते रहे कब तक
वैसे कहते हैं उनकी तरफ उजाले की खबर है
हम डर रहे हैं उन से जिन पर भरोसा सा था
वे कह रहे हैं उनको हम से ही डर है

***

51

जिंदगी जीना आसान नहीं है

सितारों से भरा आसमान नहीं है

कौन है जिसके होठों पर सिर्फ हँसी है

कौन है जो परेशान नहीं है

कौन आसानी से जी सकता है

यहाँ किसके लिये इम्तहान नहीं है

गालिब की गजल सी है जिंदगी

यह शहर यार का कोई दीवान नहीं है

एक ही सवाल में उलझ जाती है जिंदगी

सैकड़ों प्रश्न हल करना आसान नहीं है

***

52

छोटी सी नाव और बड़ी बड़ी लहरे
ऐसे में कहॉ जायें कहॉ पर ठहरें
जितने भी ध्वज थे सब उनके पास है
हम कहाँ मंचित हों हम कहाँ फहरें
कठिन होता जा रहा है शब्दों को पास लाना
उन्हें चिंता है ठीक हो रदीफ और बहरें
नंदियाँ हमारे पास रहीं हम उन्हें देखते रहे
वे ले गये निकालकर मनचाही नहरें
उनकी तकदीर में लिखी है खूबसूरत शामें
हम सबके हिस्से आई है उबलती दोपहरें

***

मेरे समकालीन / संस्मरण, व्यक्तित्व-कृतित्व

मेरे समकालीन / संस्मरण, व्यक्तित्व-कृतित्व

हरि ठाकुर

हँसी एक नाव सी

त्रिभुवन पांडेय

हरिठाकुर जी से जब मेरी अंतिम मुलाकात हुई तब अपनी 22वीं पुस्तक 'हँसी एक नाव सी' देते हुए उनके होठों पर वही हँसी तैर रही थी। मुझे पता था कि वे चिकित्सा के लिये भोपाल जाने वाले हैं। लेकिन उस वक्त उनके चेहरे पर कहीं भी उस गंभीर रूग्णता की छाया नहीं थी। वे लगभग पन्द्रह मिनट तक सिर्फ छत्तीसगढ़ी भाषा के भविष्य पर बात करते रहे।

सन् 1960 के आसपास छत्तीसगढ़ के चार श्रेष्ठ साहित्यकारों से मेरी मुलाकात हुई। नारायण लाल परमार, हरिठाकुर, गुरूदेव कश्यप एवं बच्चू जाँजगीरी। परमार जी से पहले परिचित हुआ। वे बागबाहरा से प्रति रविवार महासमुन्द आ जाया करते और जमकर गोष्ठियाँ होती। सोमवार सुबह हम उन्हें स्टेशन छोड़ने जाते। उनके साथ रायपुर प्रवास के दौरान पहले गुरूदेव कश्यप से मुलाकात हुई। वे 'महाकोशल' के संपादक थे गंभीरता ऐसी कि अज्ञेय को भी पीछे छोड़ देते। प्रारंभ में 'हूँ हाँ' कहकर ही टाल देते। फिर समय बीतने के साथ वे इतने आत्मीय हो गये और हंसने हंसाने का दौर चला कि विश्वास ही नहीं होता था कि यह वही पुराने गुरूदेव कश्यप है। इसके बाद डॉ. देवीप्रसाद वर्मा 'बच्चू जाँजगीरी' से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। वे भी नये रचनाकारों को जल्दी निकट आने नहीं देते थे। आगे चलकर काफी आत्मीय संबंध बने। सबसे आखिरी में हरिठाकुर जी से मुलाकात हुई। प्रारंभ में उनसे भी मिलते हुए, बातचीत करते हुए संकोच बना रहता था। परमार जी यदि साथ नहीं होते तो शायद इतनी जल्दी हम एक दूसरे से परिचित नहीं हो पाते।

आगे चलकर एक साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन के सिलसिले में 'आशीष प्रेस' आना जाना शुरू हुआ। इसी समय हरिठाकुर जी को काफी निकट से देखने जानने का अवसर प्राप्त हुआ। उनका

कवि व्यक्तित्व प्रभावित करना था। छत्तीसगढ़ विभाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आयोजनों में हरिठाकुर और बच्चू जौजगीरी का आपसी तालमेल देखने और सीखने लायक होता था। वे जब किसी भी विषय पर व्याख्यान देते तो उसे सुनना एक सुखद अनुभव होता था।

कविता में वे जिस जिजीविषा का परिचय देते अपने प्रखर विचारों से गीतों को प्रभावी बना देते वह सदैव सुनने और पढ़ने के साथ सोचने के लिये प्रेरित करता था। 'हँसी एक नाव सी' संग्रह के गीतों को पढ़ते हुए उनका काव्य व्यक्तित्व बार बार स्मृति में दीप्त हो उठता है। वे छत्तीसगढ़ और छत्तीसगढ़ी के शिल्पी थे।

***

नारायण लाल परमार

स्मृति के घरौंदे

त्रिभुवन पांडेय

कल ही परमार जी के घर गया था। देर तक भाभी जी श्रीमती इंदिरा परमार से उनके विषय में बातें होती रहीं। कुछ देर बात करने के बाद बोली चाय बनाती हूँ। मैने मना किया लेकिन वे रूकी नहीं। सोफे से उठकर, धीरे धीरे चलती हुए किचन तक पहुंची। निमिष और बहू किसी पारिवारिक समारोह में रायपुर गये हुए थे। रचना नीचे अपने कमरे में थी। चाय बनाने के लिये उनके सिवाय वहाँ कोई नहीं था। परमार जी जब थे तब हम लोगों की बातचीत पर्यटक की दृष्टि की तरह विभिन्न विषयों पर बारी–बारी से केन्द्रित होती। कितने ही महत्वपूर्ण विषय होते जिनपर जमकर बातचीत होती। वस्तुतः परमार जी के श्रेष्ठ लेखक होने के पीछे मौजूद द्वंद भी कहा जाता है। जिस रचनाकार के मन में सवाल उत्पन्न नहीं होते वह अच्छा रचनाकार भी नहीं हो सकता। 'संतोष' जीवन के लिये ठीक है लेकिन 'सृजन' के लिये 'संतोष' का अनुभव संकट है। परमार जी के विभिन्न गीतों में इस सवाल को देखा जा सकता है। कहाँ हुए खत्म कहो, स्वयं की तलाश खेत खेत में मेड़ बाँधने में समर्पित अभी तक अपने लिए क्यों मरजादन बाँधी, सोच रही है नन्हीं चिड़िया कैसे नीड़ बनें ? सवाल ही कहां रहे घोड़े की घास का, पूछती नदी अपने पानी से क्यों, संवेदन हीन हुए औचक तटबंध, मैले आकाश में इन्द्रधनुष अब कहाँ ? अब तक यह सन्नाटा बोलो किसका सगा हुआ जैसे कितने ही सवाल हैं जिसका उत्तर वे गीत लिखते हुए अपनी संवेदनात्मक अनुभूति और जीवन यथार्थ के साक्षात्कार से जीवन अनुभवों के विस्तार और मनुष्य के भविष्य के प्रति सजग अपनी काव्य चेतना के सहारे वे उत्तर की तलाश करते। ऐसी ही मनः स्थिति में उनके भीतर का सजग कवि दो टूक शब्दों में

कह पाता था –

आदमी सलीब पर
और बहस जारी
जासूसी से भरा/लगता हर दृश्य है
नोटिस हड़ताल की
दे चुका भविष्य है
वर्तमान बेखबर
और बहस जारी

परमार जी से इधर जमकर बातें होती और उधर भाभी जी विभिन्न अवसर पर विभिन्न व्यंजन लेकर चाय के साथ उपस्थित हो जाती। कभी समय होता तो बातचीत में सम्मिलित होती और समय का अभाव होता तो चाय और नाश्ता रख वापस चली जाती।

आज जब नारायण लाल परमार नहीं है तब दादा के नहीं रहने पर भाभी जी कुछ साहित्य, पुराने संदर्भ, महत्वपूर्ण स्मृतियों के साथ दादा के महत्वपूर्ण जीवन क्षणों की जानकारी देती है और इस बीच समय मिलते ही चाय लेकर आ जाती है।

चाय और प्लेट में नमकीन सेव लेकर वे वापस लौटी। परमार जी पर फिर चर्चा प्रारंभ हुई। परमार जी ने साहित्येत्तर प्रभावों से कभी समझौता नहीं किया। राजनीति का प्रभामंडल उन्हें कभी प्रभावित नहीं कर सका। वे रचनाकार को समाज का महत्वपूर्ण व्यक्ति मानते थे। वे निराला, प्रेमचंद, मुक्तिबोध, बख्शी जी की परम्परा के रचनाकार थे। मुझे याद आती है उनकी एक महत्वपूर्ण पंक्ति –

प्रलोभन थें बहुत लेकिन
नियम संयम नहीं टूटे

इस पंक्ति को जब याद करता हूँ तो भाभी जी को भी उनके एक प्रसिध्द गीत की पंक्ति याद आ जाती है

अगर मुसाफिर उथले जल में
डूब गया तो कहना होगा
लहरों का अपराध न इसमें
नदी सही है नाव गलत है

भाभी जी बता रही थीं कि शारीरिक कमजोरी और सीमा के

बाद भी समकालीन लेखन और रचनाकारों के विषय में जानने के लिये उत्सुक रहते थे। हम जब बीमारी की हालत में उनसे रविवार के दिन मिलने जाते तो उनके भीतर कचोटती हुई पीड़ा चेहरे पर कौंध जाती लेकिन एक बार बातचीत का सिलसिला शुरू हो जाता तो फिर न चेहरे पर पीड़ा होती और न किसी तरह की निराशा। उनका अतीत, रचना के अनुभव सब क्रमशः मुखर होने लगते।

काफी देर तक बैठने के बाद और परमार जी पर चर्चा करने के बाद मैं बाहर निकलता हूँ। भाभी जी नये बनते हुए मकान के विषय में बताती हैं। एक सुंदर मकान उनकी स्मृतियों जैसा सुंदर निर्मित हो रहा है। भाभी जी को अभिवादन के बाद वहां से निकलते हुए परमार जी की पंक्ति भी जैसे साथ हो लेती है।

अगर माटी न होती तो
किसी का घर नहीं होता
अगर होता न जग में प्यार
तो ईश्वर नहीं होता

पीटर कॉलोनी की वही गली जहाँ कभी–कभी घंटों परमार जी के साथ बातचीत की साक्षी बन जाती थी अब सूनी है। दो साल पहले वे ठीक उसी तरह चले गये जैसे वे खादी का अपना थैला टाँग कर दूर यात्रा में निकल जाया करते थे।

परमार जी आज भी बातचीत के समय स्मृतियों में साथ होते हैं

बागबाहरा रेलवे स्टेशन। सन् 1959–60 का कोई एक दिन। परमार जी के घर की ओर जाते हुए सहज उत्सुकता। स्टेशन से थोड़ी दूर एक छोटा सा घर। परमार जी का किराये का आवास। पास ही आटा चक्की, चारों ओर गूंजती निरंतर आवाज और उस आवाज के बीच स्थितिप्रज्ञ की तरह लिखने पढ़ने में तल्लीन परमार जी। मिले तो ऐसे उमंग कर कि जैसे कोई अपना सगा मिलता है।

सफेद पायजामा और गेरूवे रंग का कुरता। सब कुछ बदला। लेकिन इस पोशाक के प्रति उनका अनन्य प्रेम कम नहीं हुआ। परिचय हुआ। बात चीत शुरू हुई। स्वाभाविक रूप से बातचीत साहित्य पर केन्द्रित रही। भोजन वगैरह के बाद शाम की ट्रेन से वापसी। परमार जी स्वयं स्टेशन तक छोड़ने आये। प्लेटफार्म पर ट्रेन छूटने तक खड़े रहे। ट्रेन चली तो स्नेह भरी दृष्टि से देर तक निहारते रहे।

परमार जी फिर लगभग हर सप्ताह महासमुन्द आने लगे। विश्वेन्द्र ठाकुर, जय शंकर 'नीरव' मनोहर शर्मा और एक दो नये पुराने रचनाकार मिलते। कभी पुराने बस स्टैण्ड के पीछे मेरा मकान 'भारत भवन' का गोष्ठी कक्ष बन जाता, कभी विश्वेन्द्र ठाकुर का रेल्वे स्टेशन के समीप स्थित कॉलोनी का निवास और कभी मनोहर शर्मा का होटल। उन दिनों नयी कविता को लेकर काफी द्वंद था। नयी कविता को स्वीकारने में हिचक हो रही थी। ऊपर से प्रयोग धर्मी कविता का काफी मजाक उड़ाया जा रहा था। विश्वेन्द्र ठाकुर नयी कविता के पक्षधर थे। परमार जी का गीत धर्मी मन, बच्चन जी की तरह द्वंद में फंसा हुआ था। नयी रचना प्रवृत्ति को सहज ही अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। रात-रात भर महासमुन्द की सड़कों में भटकते हुए नयी कविता पर बहसें होतीं। आज सोचकर आश्चर्य होता है कि लोग इस पर कुछ भी टिप्पणी नहीं करते। रात भर घूमते हुए न कोई रोकता न कोई टोकता। रेल्वे स्टेशन से लेकर बागबाहरा रोड की ओर स्थित नाले तक हम विचरण करते। रात्रि में गश्त लगाने वाले पुलिस स्टॉफ के लोग भी जान गये थे - कवि हैं। निशाचरी वृत्ति स्वाभाविक है। उसी समय 'पूजामयी' उपन्यास प्रकाशित हुआ। चिंगारी प्रकाशन से प्रकाशित परमार जी का यह उपन्यास उन दिनों चर्चित और लोकप्रिय हुआ। उन्होंने मुझसे समीक्षा लिखने के लिए कहा। तब मैं लिखने के मामले में पहले दूसरे पायदान पर था। न विशेष अनुभव और न शिल्प। साहित्य के प्रति अनन्य समर्पण भाव था और साहित्यकारों के प्रति सहज आकर्षण। "पूजामयी" पढ़कर मैं विभोर था। समीक्षा लिखते हुए मैने परमार जी की तुलना बंगला उपन्यासकार शरदचंद्र से की थी। 'पूजामयी' की यही समीक्षा मेरी पहली समीक्षा थी। समीक्षा प्रकाशित हुई। मुझे अन्दाजा नहीं था कि समीक्षा लिखने की आकस्मिक कोशिश

एक दिन मेरे व्यंग्यकार पर हावी हो जायेगी । जाने अनजाने मुझे समीक्षा की समझ 'पूजामयी' की समीक्षा से ही मिली ।

इस बीच महासमुन्द में साहित्य सम्मेलन का आयोजन हुआ । पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, गजानन माधव मुक्तिबोध जैसे यशस्वी रचनाकारों के सानिध्य का सुअवसर प्राप्त हुआ । हम सब आयोजन सहयोगी थे । दरी बिछाना, चाय भिजवाना, अतिथियों की आवश्यकता पर नजर रखना हम सबकी जिम्मेदारी थी । मुक्तिबोध जी से अंधेरे में कविता पाठ इसी समय सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था । हरिठाकुर, गुरूदेव कश्यप, बच्चू जाँजगिरी, ललित मोहन श्रीवास्तव, नारायणलाल परमार हम सबके लिए आकर्षण का केन्द्र बन चुके थे । छत्तीसगढ़ में साहित्य की दशा और दिशा यही साहित्यकार जाने अनजाने तय कर रहे थे ।

परमार जी के गीत तब धर्मयुग से लेकर लहर तक हिन्दुस्तान भर में प्रकाशित हो रहे थे । बड़े सम्मोहक गीत थे । सुनकर और पढ़कर विभोर हो उठते –

'चाहे कितनी बार मोड़ लो धार, मंदिर चितवन की बहकी पढ़ ली मैंने आज तुम्हारी लज्जा की रामायण पढ़ ली ।'

ऐसे गीतों का सम्मोहन अभूतपूर्व था । प्रकृति और प्रेम से लेकर जीवन तक उनके गीतों के कथ्य का प्रसार था । आश्चर्य यह देखकर होता था कि दो विपरीत कथ्य गीत में वैसे ही आकर्षक लगते जैसे कर्णफूल में जड़े अलग–अलग रंग के कीमती नगीने ।

महासमुंद से बलौदाबाजार, बस्तर होते हुए सन् 1964 में मैं कांकेर पहुंचा । तब परमार जी से मुलाकात कम होती गई लेकिन उसका स्थान पत्रों ने लिया ।

कुछ महत्वपूर्ण पत्र उसी समय प्राप्त हुए –

- प्रिय भाई । पत्र मिला । शिकायत जायज है । अभी साहित्यिक प्रबोध देने लायक मैं हुआ नहीं । कृतियों के माध्यम से अभी मेरे विचार परीक्षावस्था में है । जिस आकाश को मैंने बाँध लेना चाहा है वह अब तक स्वच्छन्द रहा है, कभी यदि कोई कोना मेरे वश हुआ तो हम सब उसे गल बहियाँ डाल कर साथ देखेंगे । कभी कोई दिन आएगा जब हम 'होने' की स्थिति में आएंगे । काव्य को सार्थक सिद्ध करना स्वयं अपना ही निष्कर्ष है ।

- रच्चो ठीक है। अभी–अभी जबकि पत्र तुम्हें लिखा जा रहा है – घुटनों पर झूल रही है। कह रही है गप्प–गप्प अर्थात ग्राइप मिक्सचर। भाषा विज्ञान का संदर्भ चल रहा है। कुछ न कुछ सीखने को मिल जाता है।
- जीवन में प्रतिदिन कुछ न कुछ सीखना होता है और जब यह पाने की खुशी मन के साथ एक रस हो जाती है तो वह दिन जीवन का सचमुच उजला दिन होता है।
- मुक्तिबोध के साथ मृत्यु के आस पास जो कुछ हुआ उसे मैं उचित नहीं मानता। यदि जीवन में ही इसका शतांश भी सहयोग उन्हें मिलता तो क्या आज यह दिन देखना पड़ता। दुख यह है कि जब ऐसी दारूण घटनाएं होती है, हम आडम्बर रचते हैं। समस्या के मूल में कभी पैठना हमें नहीं आया। माचवे जी की पंक्ति याद आती है – 'कविता और कहानी तो नई हो गई। यह मृत्यु कब नई होगी।'
- दरअसल मैं आडम्बर का प्रारंभ से ही काफी विरोधी हूँ। लोग केवल बातें करते हैं और वह भी बड़ी–बड़ी किन्तु काम कुछ हो नहीं पाता। नये लोगों के प्रति सहानुभूति किसी में नहीं है। सबका अपना अलग झंडा है और वे चाहते हैं कि उनका झंडा ही साहित्यकाश में फहराता रहे। मेरा विरोध ऐसे तथाकथित साहित्य पुंगवों से हमेशा है और रहेगा।

पत्रों का यह सिलसिला बराबर चलता रहा। मिलना भी। कवि सम्मेलन के बहाने भी मुलाकात होती रही। महाकोशल प्रेस के सम्पादकीय कार्यालय में परमार जी और गुरूदेव कश्यप की बातचीत हो या पुरानी बस्ती में हरिठाकुर जी का निवास, बच्चु जाँजगिरी के साथ अत्यंत अनौपचारिक शैली में हँसी, मजाक हो या रामचन्द्र देशमुख के साथ बघेरा में चर्चा। सभी जगह परमार जी की गंभीरता यथावत बनी रहती। अन्ततः जब वे धमतरी आकर स्थायी रूप से निवास करने लगे तब उनका पीटर कॉलोनी स्थित निवास ही जैसे नगर भर के रचनाकारों का 'संवाद' केन्द्र बन गया। रविवार के दिन उनके निवास पर आयोजित अनौपचारिक गोष्ठी विगत चार पाँच वर्षों से जारी है। इसमें हरिप्रकाश वत्स, सुरजीत नवदीप, मांझी अनंत, डुमन लाल ध्रुव से लेकर मोहन अम्बर,

दानेश्वर शर्मा, लक्ष्मण मस्तुरिहा, रवि श्रीवास्तव, परदेशी राम वर्मा, मुकुन्द कौशल, बच्चु जाँजगिरी, सुशील यदु, रमेश नैयर तक पता नहीं छत्तीसगढ़ के कितने दूर सुदूर स्थित साहित्यकार इसमें सम्मिलित होते रहे। पता नहीं कितनी बातें होती हैं। कितनी योजनाएं बनती हैं। कितनी कहा सुनी होती है। यद्यपि उसका कोई हिसाब लगाना संभव नहीं है लेकिन श्रीमती इंदिरा परमार के हाथों चाय पीने और स्नेहपूर्ण आत्मीय व्यवहार का आनंद जिन्हें मिला उसे वे कभी विस्मृत नहीं कर सकते।

कहते हैं जो जितना आत्मीय होता है उस पर लिखना उतना ही कठिन होता है। चार दशक के विस्तार में फैली स्मृतियों को समेटकर कुछ पन्नों में लिखना आसान नहीं।

महासमुन्द में हुई मुलाकात अब इतनी प्रगाढ़ और आत्मीय हो चुकी है कि कभी–कभी डर लगता है यह सामीप्य कहीं सृजनात्मक उत्सुकता को कम न कर दे लेकिन अभी तक ऐसा हो नहीं पाया। व्यक्ति परमार और रचनाकार परमार जब भी मुलाकात होती है, प्रयास यही होता है कि दोनों के प्रति अलग–अलग मिलने, जानने, की उत्सुकता यथावत बनी रहे।

***

डॉ. देवी प्रसाद वर्मा

एक अवसान युग की ... तो नयी उषा की किरणों चर्तुदिक फैल रहा है

त्रिभुवन पांडेय

जब भी किसी समय कहीं भी काव्य की चर्चा करते हैं तो स्व. हरि ठाकुर का नाम सबसे ऊपर रहता है – यहां त्रिभुवन पांडे के "कागज की नाव" पर चर्चा करनी है तो व्यंग्य से ही बात प्रारंभ करना उचित होगा। हरि ठाकुर ने कहा था –

"कौवा हुआ सफेद
बन गया हंस अब काला
आजादी के बाद
यही परिवर्तन हुआ निराला"

या

वैश्या सी रात
गाती है भजन
अब त्रिभुवन पांडे की पंक्तियां
देखिए –
बैठे यहां भजन सुनाते
बाबा चैतूदास
आल्हा और कबीरा गाते
बीते बारह मास

वर्तमान स्थिति की चर्चा बहुत पहिले प्रेमचंद जी 'नमक का दरोगा' में कर चुके थे, पं. लोचन प्रसाद पांडे ने कुलदीप सहाय द्वारा संपादित 'विकास' मासिक बिलासपुर में 'घूंस' पर लेख लिखा था और त्रिभुवन लिखते हैं -

"चिंतित महामहिम
देख-देख कर भ्रष्ट व्यवस्था
चिंतित महामहिम
कल्पवृक्ष पर बैठ गए हैं
कौंवे और बगुले
सोना चांदी हीरे मोती
लॉकर से निकले ..."

स्व. हरि ठाकुर ने लिखा : -
"यह कैसा सावन कि
हर नयन जलाशय लगता है"

इस कविता को पढ़कर नारायण लाल परमार और गंगाप्रसाद बरसैया मेरे पास आये थे।

त्रिभुवन -

पलकों को पता नहीं
में कहते हैं : -
पलकों को पता नहीं कब आकर
लोगों ने बांट लिया स्वप्न
नींद की प्रतीक्षा में बैठे थे द्वार पर
बनकर प्रहरी...

मेरी कविता है : -

गाँव चल
पीपल के छांव

कीचड़ भरे पांव चल

त्रिभुवन लिखते हैं :-

पेड़ वहीं देते हैं छाया
जिनकी जड़ होती है गहरी
उद्‌गम से लघुता ले निकली
वह नदी कितनी विराट है

मुकुटधर पांडे ने यही कहा था
इतनी जल्दी महानदी
बता कहां खो जाती है?

मीरा की परेशानी भी
"शूली ऊपर सेज पिया की
किस विधि सोणों होय"

त्रिभुवन कहते हैं -

वृक्षों को चिंता है
ढहते कगार की
कोई तटबंध नहीं
इनको जो टोके
कोई अवरोध नहीं
इनको जो रोके
मौसम को चिंता है
सूखते चिनार की....

स्व. भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा था
बूंद टपकी एक
नभ से
ये कि जैसे किसने

आंचल से मुंह रंग लिया
ठीक वैसे
बूंद टपके एक नभ से –
त्रिभुवन केचुल उतारकर
अपनी बात बहुत ही प्रभावी रूप में रख देते हैं
"शब्द खड़े द्वार पर
अर्थ का केंचुल उतारकर"

शब्द खड़े द्वार पर
बड़ बोले कर न सके
जीवन की व्याख्या
शीर्षक था भिन्न और
भिन्न थी आख्या है
लौटकर नहीं आये हतप्रभ थे...
वक्त की पुकार पर
आंखों ने पूछा जब
आँसू के बढ़ते संदर्भ
मौन हुए शब्द कोश
रिक्त हुए अमृत के गर्भ
खोज रहे पारस स्पर्श सब
निष्ठा के दौर सभी हारकर

स्व. हरि ठाकुर लिख गए
"जा रही चली अर्थी आशा की
नश्वर जग को कर राम राम"
त्रिभुवन लिखते हैं :–
जीवन बहुत सरल
जीना बहुत कठिन

कितना सीधा वृक्ष तने तक
उलझी हैं शाखें
दृष्टि जटिल उलझन में डूबी
कितनी भोली आँखे
तम में रहते लोग यहां पर
वैसे दिखता दिन है...

मैने कभी कहा था :-

जीवन में शेष नहीं हर्ष
सामने है मीना बाजार
खाली है पर्स
त्रिभुवन लिखते हैं
अंको का चौपड़ है
अंको की गोटियों
अंको की आंच में
सेंक रही रोटियों
सुख-दुख का सर्वेक्षण
आँसू अति शेष है।

मीना कुमारी की शायरी
संपादित गुलजार की – कि ये पंक्ति

दिन डूबे हैं, या डूबी
बरात लिए किश्ती,
साहिल पर मगर कोई
कोहराम नहीं होता !

त्रिभुवन की बात भी साफ है
छोटी है नाव बहुत

और लोग ज्यादा है
लहरों का पता नहीं
आज क्या इरादा है
तौल रहा नाविक फिर, ताकत पतवार की।

नया ज्ञानोदय जुलाई में
प्रज्ञा रावत
अकेली स्त्री पृथ्वी ही तो है
निरन्तर गतिमान
अपने अक्ष पर
जिसके सीधे खड़े होने की कोशिश में
थर्राने लगती है
समूची मानव प्रकृति

त्रिभुवन की शिकायत है :-

पूछ रहे लोग, कहां गई
बैठी थी डाल पर सोने की चिड़िया
सोने का कंठहार
रत्नजटित सम्पुट थे
पंखों में सपनों के
महाकाव्य पुट थे
पूछ रहे लोग, कहां गई (सोने की चिड़िया)

यही कामना है कि कवि
की सोने की चिड़िया
उसके पास रहे – इन्हीं शब्दों
के साथ आपसे बिदा लेते हैं

***

गुरूदेव कश्यप

शिलालेख, घने वृक्ष, राजपथ कहीं नहीं

त्रिभुवन पांडेय

'धूप का एक दिन' (1972, महानदी प्रकाशन रायपुर) के 28 वर्ष पश्चात गुरूदेव कश्यप का दूसरा काव्य संग्रह 'अभिशप्त उत्कल' (छत्तीसगढ़ हिन्दी साहित्य सम्मेलन रायपुर) प्रकाशित हुआ है। आठवें दशक के प्रारंभ में लेखक सहयोगी प्रकाशन के जरिये 'नये स्वर 1,2,3 एवं आहत सूर्य के देश में' का प्रकाशन सम्पादन में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले गुरूदेव कश्यप नयी कविता के प्रतिनिधि कवियों में से एक हैं। वे जीवन सच और आत्म साक्षात्कार को अभिव्यक्त करने के लिये जिस मुहावरे की तलाश कर रहे थे। वह उन्हें 1972 में उपलब्ध हो चुका था। आठवें दशक के सभी प्रतिनिधि कवि नारायणलाल परमार, हरि ठाकुर, डॉ. देवी प्रसाद वर्मा, बच्चु जाँजगिरी, ललित मोहन श्रीवास्तव गुरूदेव कश्यप के सामने सबसे बड़ी समस्या थी गीत की आत्मीय अभिव्यक्ति और नयी कविता की खुरदरी अभिव्यक्ति, छंदमुक्त और रागात्मक छंद संसार के मध्य अपनी अभिव्यक्ति के लिये भाषा की तलाश करना। यह भाषिक उथल पुथल इन सभी रचनाकारों की कविताओं में साफ तौर पर दिखलाई पड़ती है। यह बात स्व. सतीश चौबे के समय से चली आ रही थी। 'धूप का एक दिन' की प्रारंभिक दो कविता की भाषा साफ तौर पर एक दूसरे से पृथक है। 'भूमिका/हम ऋग्वेदपदी' और 'धूप का एक दिन' दो अलग अलग किस्म की भाषिक संरचना है जो नयी कविता और गीतात्मक अभिव्यक्ति के द्वंद को स्पष्ट करती है। 'अभिशप्त उत्कल' को लगभग 26 वर्षों बाद प्रकाशित कविताओं का संग्रह इस द्वंद से मुक्त हो चुकी कविताएं है। गीत की सम्मोहक और आत्मीय दुनियां पीछे छूट चुकी है। एक प्राचीन काले पत्थर की तरह सख्त दीवारों से भरा परछाइयों वाला वर्तमान शेष है जहां अभी भी बसंत की याद आती है –

चिड़ियों के पंख सी बिखरी
किताबों के बीच
एक ताजा गुलाब
धूप के सभागार में
निराला की तरह
काव्यपाठ करता रहा

और जब मन पुराने दिनों को वापस चाहता है तब यह विवशता लौटने के अवसाद को जैसे उसकी पूरी मार्मिकता में व्यक्त कर देती है।

हाँ बरसों बाद का लौटना
नहीं होता
बरसों पहले का लौटना
कापियों पर झुकी किताबों की तरह
नहीं होता मेज का झुका चेहरा

राजनीति के छद्म की विद्रुपता और जिंदगी की हरियाली को निगलने मरूस्थली चेहरों और प्रयासों की पारदर्शी तस्वीर इन कविताओं में मौजूद है

यद्यपि वह तस्वीर धूमिल से रघुवीर सहाय या श्रीकांत वर्मा या नारायण लाल परमार जैसे समर्थ कवियों के काव्य केनवास में जगह जगह दिखलाई पड़ती है लेकिन गुरूदेव के पास इस भयानक त्रासदी को कहने के लिये बड़ी ही सतर्क भाषा है। आदमी के धीरे धीरे पिसने और नामहीन होने का, गौरव से वंचित होने का चित्रण इन पंक्तियों में कितने मार्मिक रूप से व्यक्त हुआ है।

आदमी इतना वेबस नहीं होता आसानी से
उसे बहुत धीरे धीरे
कूटना पछड़ना होता है घाट पर
उसे बार बार निचोड़ा जाता है
हौद में डालकर

'सोचने वाला तथ्य' – बड़े सिरफिरे होते हैं ये मुहावरे। उन मुहावरों के मुहानों को बंद करो। जो सोचता है। उसे धड़ से जिंदा रखो। जो सोचता है। सिर्फ उसके सिर को निराकार .. हो जाने दो या उपस्थित संभावना की निम्न पंक्तियां

वह समझ नहीं पाता
उनके आक्रोश
और पीड़ा का रहस्य
फिर भी अहसास करता है
तनी हुई बंदूकों के सामने
क्या होता है
हाथों में पत्थर उठा लेने का संकल्प

इस काव्य संग्रह की अंतिम कविता 'अभिशप्त उत्कल' लम्बी कविता है जो उन्नीस चित्र खंडों में विभाजित है। असहाय मनुष्य की निरर्थक होती ... प्रार्थना की गूंज इस कविता में प्रारंभ से अंत तक मौजूद है। उस थके हारे, भूखे, अधनंगे, टूटे, कुचले मनुष्य के भविष्य की चिंता में लिखी गई इस कविता में मिथक प्रतीकों के जरिये नयी जिंदगी के द्वंद को व्यक्त किया गया है। एक अंधेरे सुरंग में प्रकाश की खोज इस कविता का कथ्य है और बावजूद निराशा के रूप गहरी आस्था के साथ इन शब्दों में यह कविता समाप्त होती है –

एक भी प्राण यहां व्यर्थ नहीं जायेगा
स्वर्ग के शीशमहल
ध्वस्त किये जायेंगे
दीवारें मिट्टी की
द्वारहीन, ज्योतिहीन
धूल भरे कच्चे पथ
मुरझे फसलों के बोझ लिये
खेत खार
पथ हारे, आत्मजड़ित गृहस्वामी
भीड़ में .... नहीं रौंदे अब जायेंगे

गुरूदेव कश्यप के पास विराट जीवन अनुभव है, भाषा के अनेक रूप हैं, जटिलतम द्वंद को कहने की क्षमता है, प्रभावी बिम्बों में कथ्य को रूपांतरित करने की क्षमता है इसलिए अब वे और महत्वपूर्ण तथा प्रासंगिक हो चुके हैं।

***

ललित मोहन श्रीवास्तव
'नये स्वर' के यशस्वी कवि

त्रिभुवन पांडेय

हिन्दी साहित्य समिति द्वारा नगर के यशस्वी साहित्यकार प्रो. ललित मोहन श्रीवास्तव के आकस्मिक निधन के संदर्भ में श्रद्धांजलि कार्यक्रम 'स्मृति ललित मोहन श्रीवास्तव' का आयोजन सुप्रसिद्ध कवि श्री नारायण लाल परमार की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम के प्रारंभ में आकाशवाणी द्वारा प्रसारित काव्य गोष्ठी का ललित मोहन द्वारा पठित काव्यांश सुनवाया गया। पश्चात सुरजीत नवदीप ने लेखक सहकारी प्रकाशन द्वारा सन् 1956 में प्रकाशित 'नये स्वर एक' संकलन से स्व. ललित मोहन श्रीवास्तव की चुनी हुई कविताओं का पाठ किया। साहित्य समिति के अध्यक्ष त्रिभुवन पांडेय ने स्व. ललित मोहन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि छठवे और सातवें दशक में जब साहित्य का अखिल भारतीय परिदृश्य बेहद प्रयोगधर्मी, परिवर्तनशील आधुनिक और जटिल था तब भी छत्तीसगढ़ के तत्कालीन प्रतिनिधि कवियों ने पूरे मनोयोग के साथ अपनी संवेदन क्षमता और अभिव्यक्ति सामर्थ्य के जरिये समकालीन साहित्य के अखिल भारतीय स्वरूप को अपनी रचनाओं में उपलब्ध किया। ललित मोहन श्रीवास्तव का काव्य संग्रह 'दीपक राग नये' जब प्रकाशित हुआ तब भारतीय कविता का वही भावबोध था जो इस संग्रह की कविताओं में मिलता है। एक श्रेष्ठ कवि के अनुरूप वे सदैव अपने लिये नये शब्द और नयी अभिव्यक्ति शैली की तलाश करते रहे।

श्री नारायणलाल परमार ने स्व. ललित मोहन की काव्य यात्रा को महत्वपूर्ण बताते हुए 'नये स्वर एक' के सहयोगी कवि के रूप में उनका स्मरण किया। श्री परमार ने बताया कि एकांत अध्ययन और मनन तथा जीवन को समझने की गहरी आकांक्षा उनमें मौजूद थी।

अपना काव्य संग्रह 'दीपक राग नये' को प्रकाशित रूप में देखने के लिये उन्हें वैयक्तिक संघर्ष करना पड़ा। रचनाकार की आस्था और संकल्पशक्ति को वे कितनी गंभीरता के साथ लेते थे इस का उदाहरण उनके एक मुक्तक में बड़े प्रभावी रूप में दिखलाई पड़ता है।

आइने की तरह साफ ओ नीयत है निराला
इनसानियत की तल्ख तबीयत है निराला
जो तोड़ तो देती है पर झुकने नहीं देती
उस आस्था के नाम वसीयत है निराला

कथाकार सम्पादक श्री जयशंकर 'नीरव' ने ललित मोहन श्रीवास्तव को छठवे दशक की यशस्वी पीढ़ी के प्रतिनिधि कवि के रूप में स्मरण करते हुए बताया कि 1963 मे जब उनके काव्य संग्रह का प्रकाशन हुआ तब इस अंचल के रचनाकारों तथा पाठकों की ओर से जो उत्साहपूर्ण सहयोग मिलना चाहिये था वह उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ शायद यही कारण है कि अपने समय के प्रभावी कवि होकर भी वे मूल्यांकन से वंचित रहे। श्री सुरजीत नवदीप ने उनके सहज और सौम्य व्यक्तित्व को स्मरणीय बताते हुए कहा कि वे अपने काव्य संग्रह के वितरण के विषय में बेहद सचेत थे। वे चाहते थे कि जो कविता का अध्येता हो उसे ही काव्य संग्रह दिया जाय। इस स्मृति गोष्ठी में सर्व श्री नारायण लाल परमार, त्रिभुवन पांडेय, अशोक तिवारी, अनवर आलम, सुरजीत रणजीत भट्टाचार्य, विनोद जैन, सरिता जोशी, अंजुम नाज, गंगा प्रसाद सेन एवं गंगबेर उपस्थित थे।

***

ललित मोहन श्रीवास्तव

समय सारथी हाँके जीवन का रथ चलता जाये

त्रिभुवन पांडेय

छठवे दशक में जिन रचनाकारों ने भारतीय साहित्य की समकालीन और आधुनिक संवेदना का छत्तीसगढ़ में पूरी क्षमता और श्रेष्ठता के साथ प्रतिनिधित्व किया उनमें स्व. प्रो. ललित मोहन श्रीवास्तव का नाम सदैव आदर के साथ स्मरण किया जायेगा। यह वही यशस्वी कवि है जिसने पूरी आस्था के साथ कभी लिखा था –

अपने मन का दीप तुम्हारे अधरों पर ला धरा हूँ
जब–जब कोई तिमिर तुम्हारा रूप उदास करे
इन्तजार की ज्योति जला, उम्मीदों के स्वर बाँधे
सूरज तेरे पथ में मेरा दीप प्रकाश करे

एक बेहद सरल, सौम्य व्यक्तित्व। धीमी आवाज। प्रशान्त मुख लेकिन होठो पर ठहरी मुस्कुराहट। अपनी उपस्थिति से चौंकाने का कभी कोई प्रयास नहीं। अपने कवि होने का कोई शोर नहीं। एक ऐसा कवि जो जितनी खामोशी के साथ जिया, उससे भी ज्यादा खामोशी के साथ मौत के कंधे पर हाथ रख चुपचाप चला भी गया। इस महत्वपूर्ण क्षति की जानकारी धमतरी तक भी देर से पहुंची। रायपुर तो एक महा वट वृक्ष है। पता ही नहीं चला कि कब एक कोमल पत्ता चुपचाप झर गया। ले–दे कर अखबार में चार लाइन का समाचार प्रकाशित हुआ कि विज्ञान महाविद्यालय रायपुर के प्राध्यापक ललित मोहन श्रीवास्तव नहीं रहे। शायद इस खामोश दुखांत का कवि को पूर्वाभास था इसीलिये उन्होंने पहले ही विदा

लेते हुए लिखा –

सब मुझे क्षमा करो, क्षमा करो
अर्चना के फूल भी खिले नहीं
वंदना के दीप भी जले नहीं
इसलिये कि गीत आरती जला सका नहीं
देवता, क्षमा करो, क्षमा करो

छठवें और सातवें दशक में जब साहित्य का अखिल भारतीय परिदृश्य बेहद प्रयोगधर्मी परिवर्तनशील, आधुनिक और जटिल था तब भी छत्तीसगढ़ के तत्कालीन प्रतिनिधि कवियों ने पूरे मनोयोग के साथ अपनी संवेदन क्षमता और अभिव्यक्ति सामर्थ्य के जरिये समकालीन साहित्य के अखिल भारतीय स्वरूप को अपनी रचनाओं में उपलब्ध किया। ललित मोहन श्रीवास्तव का काव्य संग्रह 'दीपक राग नये' जब प्रकाशित हुआ तब भारतीय कविता का वही भावबोध था जो इस संग्रह की कविताओं में मिलता है। नवगीत, नयी कविता, प्रयोगधर्मी कविता जैसी सभी समकालीन काव्य आंदोलनो का उदाहरण ललित मोहन श्रीवास्तव की कविताओं में मिल जायेगा। जिस साम्प्रदायिकता के विषधर से आज हम जूझ रहे हैं उसके संदर्भ में गांधी शताब्दी के अवसर पर ललित मोहन ने लिखा था –

मस्जिद से मंदिर तक फैल गया है
जहर बाद घर घर तक फैल गया है
खूब जनम दिन की भेंट दी हमने
खून पोरबंदर तक फैल गया है

यह एक सजग कवि की दृष्टि है जो अपने वक्त को दूर तक देखती है। ललित मोहन श्रीवास्तव की काव्य यात्रा के बहुआयामी दिशा सूत्र है हालाँकि वे अपनी प्राध्यापकीय व्यस्तता के कारण उतना समय और वह एकांतिक चिंतन नहीं दे पाये जो किसी भी विधा की गहराई तक पैठने के लिये जरूरी है। लेकिन एक बात जो इस अभाव के बाद भी ललित मोहन की कविताओं को समयातीत

और प्रभावी बनाने का सामर्थ्य रखती है वह है पारदर्शी, निःश्छल, कोमल, काव्य संवेदना की सुंदरतम अभिव्यक्ति। एक श्रेष्ठ कवि के अनुरूप वे सदैव अपने लिये नये शब्द और नयी अभिव्यक्ति शैली की तलाश करते रहे। हिन्दी, छत्तीसगढ़ी और उर्दू के लिये एक जैसी उत्सुक प्रयोगदृष्टि थी। आकाशवाणी द्वारा आयोजित काव्यगोष्ठी में काव्य पाठ करते हुए जो गजल पढ़ी उसके कथ्य की आज भी तारीफ की जा सकती है –

कहते हैं जिसको खुदा की कुदरत
किसी जालिम का कारखाना है
कैसी तहजीब क्या मुकद्दर है
कत्ल भी हो तो शायराना है

अपनी एक छत्तीसगढ़ी कविता में ग्राम्य जीवन के अभाव को कितनी सरलता के साथ उन्होंने व्यक्त किया है –

छोर में घर के पइसा गिनवा
कतेक ल पुर ही
ये नागमोहरी
लर के करधन
चांदी चूरा
सोनहा मुंदरी
कठवा ककवा
काँच के दरपन
इन खैता कर फोकट पइसा

हर कवि की तरह इस कवि के मन में एक सपने की खूबसूरत दुनियाँ थी जिसे हकीकत में बदलने के लिये वह अपने समकालीन रचनाकारों के साथ संघर्ष करता रहा। शायद यह सपना कभी पूरा न हो लेकिन आने वाले कवि भी ललित मोहन श्रीवास्तव की इस आकांक्षा को जब मंगलदीप की तरह जीवन के अंधेरे में चमकता हुए देखेंगे तब वे इन पंक्तियों को भी याद करेंगे –

माँ बहिनों के मुँह पर होगा नव संस्कृति का टीका
जिसके आगे चाँद सितारों का मुँह होगा फीका
रंगोली के आगे तारों की पँगत शरमाये
समय सारथी हाँके जीवन का रथ चलता जाये

***

ललित सुरजन

तिमिर के झरने में तैरती मछलियों की चिंता

त्रिभुवन पांडेय

अपने समय को सहज जिज्ञासा के साथ उसकी विशिष्टताओं और उसकी प्रश्नातुर भंगिमाओं के साथ जानने की कोशिश में लिखी गई ललित सुरजन के दो काव्य संग्रह 'अलाव में तपकर' एवं 'तिमिर के झरने में तैरती अंधी मछलियाँ' की तैतीस और तिरालिस कविताएं लगभग चार दशक (1965 से 80 और 1959 से 2000) की अवधि में व्याप्त हैं। यद्यपि संख्या में कम हैं लेकिन अपने चारों ओर घटित हो रही घटनाओं के प्रति प्रश्नाकुल हाने के कारण इन कविताओं में कथ्य की दृष्टि से इतनी नवीनता और निरंतरता है कि इन्हें पढ़कर पाठक यह अनुभव करता है कि समकालीन कविताओं की विराट उपस्थिति में इन कविताओं ने अपनी निजी भाषा, शिल्प और काव्य वस्तु के जरिये रेखांकित होने में सफलता पाई है। अपने दूसरे संग्रह के आमुख भी ये मेरे लेखे निज तक सीमित संसार की कविताएं नहीं है। अपने जीवन मूल्यों की मुखर और सार्वजनिक अभिव्यक्ति का जो मोल कविता के बाहर चुकाना पड़ता है, उसकी परछाई इन कविताओं में पग-पग पर है। मुझे ऐसा लगता है कि मेरी भीतर और बाहर की दोनों दुनियाएं यहां आकर एकाकार हो गई है। काव्य अभिव्यक्ति के इस वृहत्तर समय में प्रवेश करने के पहले सभी महत्वपूर्ण कवियों की तरह सबसे पहले वे अपने लिये काव्य भाषा की खोज करते हैं। उन्हें ऐसी काव्य भाषा की जरूरत है जो सुबह की किरण की तरह फूटकर चारों ओर फैले अंधकार को प्रकाशित कर सके -

सुबह की किरण है मेरे लिए
जिनका स्पर्श पाकर टूटेगी
आत्मा की नींद किसी दिन
और तब
मेरे पास होगी सम्पूर्ण भाषा
होंगे हँसते खिलखिलाते शब्द
जिनमें मैं सिर्फ अपनी ही नहीं
तब सबके संवेदनों की
कविता लिखूंगा

प्रसिद्ध कवि श्री विनोद कुमार शुक्ल ने कवि के शिल्प के विषय में लिखा है – ललित सुरजन की कविता में शिल्प जरूरत की तरह नहीं है । 'बात' जरूरत की तरह है । साधारणतया आलोचकीय पठन में शिल्प से कविता में कवि की पहचान बनाई जाती है । कवि की पहचान कविता में बहुत जरूरी है लेकिन इस तरह जरूरी नहीं है कि एक बारगी उंगली दिखाकर कह दिया जाये कि यह ललित सुरजन की कविता है । ... इन कविताओं में कथ्य के मुकाबले में शिल्प गैरहाजिर जैसा है । कविता में जो बात कहनी है वह कभी–कभी इतनी महत्वपूर्ण होती है कि कविता शिल्प से कम, ठोस बात की ठोस संवेदना से स्पर्श होती है । इन कविताओं का स्पर्श इसी तरह का है । यह महत्वपूर्ण बात हे कि कविता का आघात कविता की 'बात' या 'कथन' से है जो प्रतिबद्ध है । शिल्प कारतूस का खेल है । सवाल मारक बारूद का है और यह ताकत कविताओं में है । किसी भी अच्छी कविता को जानने के लिये विनोद कुमार शुक्ल की यह विवेचना अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

ललित सुरजन की कविताओं में चाहे प्रकृति हो, घटना हो, मानवीय जिजीविषा हो, संगति हो, विसंगति हो सभी प्रमाणिक रूप में कविता में आते हैं । यह तभी संभव होता है जब कवि के पास सजग दृष्टि हो, आत्मावलोकन की क्षमता हो, अपनी अभिव्यक्ति पर पूरी तरह विश्वास हो और सच को उपलब्ध करने की यथेष्ट काव्य शक्ति हो । ऐसा धीरे–धीरे ही संभव होता है जब

कवि कविता लिखने के पूर्व इन्हें अर्जित करें। मुझे खैरागढ़ विश्राम गृह की वह सुबह याद आती है जब एकदम सुबह उठकर, चाय पीकर विश्राम गृह के परिसर में टहलने निकले थे। सुबह की पहली किरणें खैरागढ़ संगीत विश्वविद्यालय के विशाल प्रांगण को पारकर, खैरागढ़ राजमहल को प्रकाशित कर, मुख्य सड़क को पारकर विश्राम गृह के ऊंचे पेड़ों की फुनगियों में ठहरी हुई थी और नीचे उतरने की तैयारी कर रही थी। ललित भाई विश्रामगृह के परिसर में खड़े प्राचीन वृक्षों से लेकर विभिन्न किस्म के फूलो, पौधों का निरीक्षण करने में मग्न थे और मुझे उनकी जानकारी भी देते जा रहे थे। तभी एक रंगबिरंगे पंखों वाली चिड़िया के विषय में पूछा। मैं अपरिचित था। उन्होंने तुरन्त उस चिड़िया के विषय में विस्तार से बताया। उसका नाम। कहां पाई जाती है। उसकी विशेषताएं। ऐसा एक बार नहीं यात्राओं में कई बार हुआ जब वनस्पति और चिड़ियों को लेकर वे लगातार अपनी जानकारी में नया कुछ जोड़ते रहते थे। अच्छी कविता लिखने की यह जरूरी प्रक्रिया है कि कवि सदैव अपनी जानकारी में अभिवृद्धि करता रहे। अच्छी कविता श्रेष्ठ जिज्ञासा का ही प्रतिफलन होती है।

पहले काव्य संग्रह की अंतिम कविता 'पिकनिक से लौटते हुए' के शिल्प और काव्य परिवेश को लें। कुछ मित्र पिकनिक के बाद जीप में बैठकर वापस लौट रहे हैं। जीप गाँव की धूल भरी सड़क को पार करती है। धूल का गुबार उठता है। कुछ देर सबको ढंक लेता है फिर उन्हें उसी हालत का जिसे पता नहीं हम सब कितनी बार देखते हैं और भूल जाते हैं उसे ललित सुरजन सदैव के लिये स्मृति में रह जाने वाली मार्मिक कविता का रूप दे देते हैं।

गाँव से निकलने के बाद पहले धूल पक्की सड़क तक आई। फिर गाँव का रखवाला कुत्ता बहुत दूर तक पीछे दौड़ता आया फिर थक कर वापस लौट गया। कुत्ता स्वयं धूल में रंग गया था। धूल के उठते गुबार में धीरे-धीरे पूरा गांव ही डूब गया था। लगता था जैसे वर्षों से इसी धूल के गुबार में वे रह रहे हैं। धूल में डूबे वे पाताल के निवासी लग रहे थे जहां वासुकि, नागराज राजाधिराज का राज था। धूल का जाल इतना विराट था कि सब मछली की तरह फंसे

छटपटा रहे थे । बच्चे जीप के पीछे दौड़े फिर वे भी धूल में अदृश्य हो गए। साइकिल सवार धूल के गुबार में आपस में टकराते हुए बचे फिर धूल के ओझल होने की प्रतीक्षा में खड़े हो गये । गांव की महिलाओं ने धूल से बचने के लिये हथेलियों से अपना चेहरा ढाँक लिया और धूल छंटने के बाद वे हिकारत से जीप में बैठे लोगों को देखेने लगी। कविता के अंत की यह मार्मिक पंक्तियाँ –

मैं भूल नहीं पाता धूल के उस तरफ
हिकारत भरी वे आँखे
मैं जो साथियों के साथ
जीप में बैठा
पिकनिक से लौट रहा था

किसी भी अच्छी कविता के समस्त तत्व इस कविता में मौजूद है। चीजों को इतनी बारीकी से देखना, उसे बिम्ब रूप देना, उसमें रंग भरना, उसके रेशे रेशे को जानना और कविता में व्यक्त कर देना।

अपनी काव्य यात्रा के प्रारंभ में ही ललित सुरजन काव्य संवेदना से कितने भरे पूरे नजर आते हैं इसका एक उदाहरण है। 'सूर्यमूखी फूल' कवि सूर्यमुखी फूल को सुबह सुबह फेंसिंग के तार पर सिर रखकर सोते हुए देखता है । उसे लगता है कि यह सूर्यमुखी का फूल बहुत दिनों से सोया नहीं है । इसके बोझ से परेशान और थकी हुई शाख परेशान होकर इसे फेंसिंग पर सुला रही है ।

लगता है शाख थक गई है
फूल को कंधे से उतार दिया
और फूल सिर रखकर सो गया
किनारे की उस फेंसिंग पर

इसी तरह एक लंबी कविता है 'बहाव' इस कविता में किसी भी नये कवि के द्वंद की उसकी आशा निराशा की, उसके सपनों की, उसके बनने और बिखरने की आशंका को देखा जा सकता है । इस कविता में कितने सवाल है जो आशंका की तरह सदैव साथ रहते हैं

मैं कभी कोयल नहीं हो सका
मेरे सारे बसन्त
कुर्सियों की नायलोन केनिंग से
रिस चुके हैं और
कुर्सियों को थामने वाला ढाँचा
एक डरा हुआ बसन्त होता है

कवि की विविधता पूर्ण, सुदीर्घ, सार्थक और श्रेष्ठ सृजन यात्रा जब प्रारंभ होती है तब वह किस तरह की काव्य अभिव्यक्ति, काव्य, दिशा और कविता दृष्टि चाहता है। सन उन्नीस सौ पैंसठ में लिखी कविता 'ओ सूर्य' के अंत में सूर्य से की गई प्रार्थना से सहज ही जाना जा सकता है –

तुममें यह उजलापन
सतत् है निरन्तर है ओ सूर्य
और मैं बहुत प्यासा हूँ
मुझे अपने धर्म में दीक्षित करो
मैं आतुर हूँ
मुझे अपने
रक्त का प्रकाश दो
मुझे तुम तेज दो
मैं तुम्हारी सृष्टि का
पनपता वृक्ष हूँ, ओ पिता।

कवि की दृष्टि जब भविष्य की दिशाओं और संभावनाओं पर पड़ती है तबउसके सामने वह सुनिश्चित दृश्य उपस्थित होता है जिसमें जीवन के आगे–आगे मार्गदर्शन करता हुआ विज्ञान है। उसे सुनिश्चित लगता है कि इक्कीसवीं शताब्दी की कथा विज्ञान ही अपने अन्वेषणों से लिखेगा। 'आने वाला कल'के जुलूस का नेतृत्व करता हुआ 'माइक्रोवेब' टावर इसी का प्रतीक है –

कितने रूप कितने छबियाँ
झिलमिलाती भिलाई के पिघलते लावे से
लेकर हसदो बैराज की सतह तक

और फिर सारी आकृतियाँ
एक दूसरे को गूंथती हुई
एकाकार जुलूस बनने के लिए
जिसके सिरे पर माइक्रोवेब टावर
संगलिये
नन्ही नन्ही आशायें
आखिरी छोर पर डाकिया वह
कल जो खबर पहुंचाएगा
आने वाले कल की

'अलाव में तपकर' की कविताओं में कुछ ऐसी लंबी कविताएं भी है जो अपने में विस्तार को समेटे हुए, समय, घटना और विसंगति को समझने के लिये उत्सुक, अर्थ की अनेक आवृत्तियों को अपने भीतर समेटे हुए कई समकालीन परिदृश्य को एक साथ उपस्थित करती है। 'बरसात में दोस्त' ऐसी ही एक कविता है। बरसात को रूपक बनाकर लिखी गई इस कविता में मित्र हैं, बरसात के विविध दृश्य है, जमीन है, बीज है, किसान है, समाचार पत्रों में बाढ़ की खबर है लेकिन इस कविता के अंत में जीवन को एक सर्वथा नया रूप देने की आकांक्षा भी है –

भीड़ जब तक समूह नहीं बनती
और मौसम निर्णय में नहीं बदलता
तब तक मैं
सिर्फ अखबार पढ़ूंगा
और कविता लिखूंगा इंतजार में
कि चंद दोस्त हम
अनगिनत अनजान दोस्तों की
किस्मत में शरीक हो जायें।
दोस्त हम सब
बरसात के आकाश में
बादलों का मजबूत जाल बन जायें
बूंदों का समवेत शान बन जायें।

दूसरा संग्रह सत्रह वर्षों के बाद सन् 2001 में प्रकाशित हुआ। 'तिमिर के झरने में तैरती अंधी मछलियाँ' की कविताओं के विषय में ललित सुरजन ने लिखा है – मेरी अधिकतर कविताएं यात्राओं के दौरान लिखी गई है। शायद इसलिए कि ये नितांत अकेलेपन की कविताएं है और यात्राओं में नि:संग होने के अधिकतम और श्रेष्ठतम अवसर होते हैं। सन् 1989 से 2000 के मध्य लिखी गई इन तिरालिस कविताओं में 'सरोवर हमारी धरोहर' ब्रम्हांड जीतने की तैयारी, रामनगर से ऐशबाग तक तथा बच्चे सोचते हैं जैसी लंबी कविताएं भी हैं जिन कविताओं के कारण ललित सुरजन को प्रसिद्धि मिली। 'सरोवर हमारी धरोहर' इक्कीसवीं सदी के सबसे बड़ी चिंता 'पानी' के दुर्लभ होते जाने पर केन्द्रित है। कविता का शुरूआत दुनियां भर में तेजी से नष्ट होते जलकेन्द्रों, प्रदुषित होती नदियों और पानी के दुरूपयोग के विवरण के साथ होती है। किस तरह लोग और कितनी तेजी के साथ पानी के श्रोत को नष्ट करने में जुटे हुए हैं। कवि को लगता है एक दिन स्थिति ऐसी हो जाने वाली है जब पानी के नाम पर थोड़े से जलाशय बचे रह जायेंगे –

नये युग के भगीरथ ने
सुखा दी है सारी नदियां
ताल दफन हो गए हैं
अट्टालिकाओं के नीचे
और तब
बचाकर रखे जा रहे हैं
बहुत से पुरावशेषों की तरह
कुछ अदद जलाशय भी
राष्ट्रीय संग्रहालयों में
ऐलान किया गया है कि
बचाया जाएगा
बूढ़ा तालाब रानी सागर को
ये धरोहर हैं हमारी

इसी तरह दूसरी महत्वपूर्ण लंबी कविता है 'ब्रम्हाँड जीतने की तैयारी'। कविता का शुरूआत मजदूरों के जीप के पीछे लटककर, बैठे अध बैठे किसी तरह काम की जगह पहुंचने की व्यग्रता से होती है। वह चाहे जहाँ भी काम कर रहा है, चाहे जिस स्थिति में यात्रा कर रहा है, चाहे जितने अभावों में काम कर रहा है उसे विश्वास है कि वह एक दिन अपने बच्चों के लिए ब्रम्हाँड जीतकर रहेगा। बहुत परिश्रम करने के बाद अभी तक कुछ भी ऐसा प्राप्त नहीं हुआ था जो उसे संतोष दे। वह शोषण के उस जटिल चूक को जान न पाया जिसके बीच वह काम करता था –

लेकिन था भोलापन या
उसकी भलमनसाहत
दोस्ती का स्वांगरच
जो बन बैठे मालिक
उन्हें वह पहिचान न पाया
मित्रता का दम भरते
उन्होंने माँगी मदद
सलाह लेने देने का ढोंग किया
निभाई मित्रता उसने तो
दिया निःश्छल मन से
पास था जो कुछ भी
घर, जमीन, खेती
पर कब पड़ी पैरों में बेड़ी
हाथों में हथकड़ी
रह गया बेखबर
कुछ जान न पाया

'रामनगर से ऐश बाग' में वह परिदृश्य है जिसमें एक ओर अभावग्रस्त बच्चे हैं और दूसरी ओर साधन संपन्न बच्चे हैं। अभावग्रस्त बच्चों का जीवन स्कूल और कालेज के बाहर रेल पटरियों के आसपास, प्लेटफार्म में, बाजार में इधर उधर भटकते, लड़ते झगड़ते बीतता जाता है। वे उन जगहों में भी प्रवेश नहीं पा

सकते जो उनके लिये आरक्षित हैं। खेल के मैदान में प्रवेश के लिये वे टिकट नहीं खरीद सकते इसलिये वे स्टेडियम के बाहर खड़े केवल आवाजे सुनते हैं लेकिन उन्हें विश्वास है कि

जल्दी ही एक दिन
रेलगाड़ी पर सवार हम आयेंगे
राम नगर से ऐश बाग तक सबको लायेंगे
कदमताल मिलाते सारे जन आयेंगे भीतर
बंद कर देंगे खेल का नाटक
और शुरू होगा तब
मेहनत की जिंदगी के स्टेडियम में
एक सीधा सच्चा खेल जिसमें
पसीने की बूंदों से
लबालब भरा होगा स्वर्ण कण
जीत ले जायेंगे जिसे
सबसे काबिल खिलाड़ी

संग्रह की पहली कविता 'सेतुबंध' द्वापर और त्रेता में हुए दो युद्धों पर केन्द्रित है। कवि का यह निष्कर्ष है कि किसी भी युद्ध से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। दो महाकाव्य में वर्णित कथा को इस सुंदरता के साथ एक दूसरे के समय और घटनाओं में विभाजित और समन्वित किया गया है कि इसे पढ़ते हुए किसी श्रेष्ठ कविता की संरचना याद आने लगती है।

हस्तिनापुर से लौट आए हैं माधव
और द्वारिका में एकदम अकेले हैं
लंका से लौट आए हैं रघुनाथ
और अयोध्या में एकदम अकेले हैं
विजय के बाद इस अकेलेपन में
न कहीं सुदामा के चाँवल हैं
न कहीं शबरी के बेर
और न कहीं केवट की नाव

बस्तर के पर्यटन स्थल 'कुटुमसर' की अँधेरी गुफा में जब रौशनी प्रवेश करती है (यात्री अपने साथ पेट्रोमेक्स लेकर उतरते है) तब तिमिर के झरने में तैरती मछलियाँ रौशनी से घबरा जाती है । वे अंधेरे में रहते-रहते लगभग अँधी हो चुकी है । इस दृश्य को देखकर कवि को उन तमाम लोगों की याद आती है जो अँधेरे में रह रहे हैं और किसी भी तरह की रोशनी पड़ने पर घबरा जाते हैं

सब तरफ थी गुफाएं
घने जंगलों के बीच जहां
किरणों का प्रवेश था वर्जित
सोते हुओं को जगाने की मनाही थी
और जगते हुओं से बात करने पर पाबंदी

'लक्ष्मी सहगल' में दादी की स्मृति से लेकर 'बा' है जो सेवाग्राम में बापू के साथ सबकी सेवा करती है, मद्रास की गायिका है, कानपुर की लक्ष्मी सहगल है । इन सबकी स्मृतियाँ दादी के स्नेह में एकाकार हो जाती है -

गाँव के घर में
एक स्नेहिल दादी है
उसने मुझे बड़ा किया
मैं उसकी उंगली पकड़
रोज मंदिर जाता हूँ
गाँव के मंदिर में
बरसों बाद ठाकुर के सामने
उसे याद कर मैं रोता हूँ

इस संग्रह में अलग-अलग जगहों में देखे गये दृश्य के वृतांत से लेकर दृष्टि के समक्ष पड़ने वाले अनेक बिम्ब है । जिसे लिखते हुए ललित सुरजन ने उसके भीतर अंतर्निहित अर्थ और संकेतों को भी जानने का प्रयास किया । यात्रा में केमरा से खींची गई तस्वीरों को जब वह ध्यान से देखता है । तब उसे पता चलता है

कि समुद्र की तस्वीर में मछुवारे नहीं है वनांचल की तस्वीर में मजदूर नहीं है, खजुराहों और कोणार्क में शिल्पियों के चित्र नहीं है, हसदेव बाँध के चित्र में मजदूर और इंजीनियर नहीं है, किसी सुंदर बगीचे के चित्र में माली नहीं है तब उसे अनुभव होता है कि वह कैमरे का सही उपयोग नहीं जानता। वह कविता के अंत में इस कैमरे को आने वाली पीढ़ी को सौंप देना चाहता है जिससे वे स्थिति की सही तस्वीर खींच सके –

इस कैमरे से काम
लेना नहीं आता मुझे
सौंप दूंगा अपने बच्चों को इसे
वे मुझसे बेहतर और सही
तस्वीरें खींच सकेंगे

लगभग नौ वर्षों के बाद दो बार पढ़ते हुए यह अनुभव हुआ कि अच्छी कविताएं अपने भीतर अर्थ के अनेक तह जमाये रखती है इसलिये एक बार पढ़कर कभी भी उसके वास्तविक अर्थ को नहीं जाना जा सकता। कभी–कभी कवि के काफी निकट होना भी उसे जान लेने के भ्रम में परिवर्तित हो जाता है। दोनों संग्रह की कविताएं एक बहुत बड़े परिदृश्य को उसकी सम्पूर्ण उल्लेखित करने वाली घटनाओं के साथ व्यक्त करती है। एक छोटा सा दृश्य बहुत बड़ी परिणति का संकेत देता है। इन कविताओं में कहीं भी अपना निजी है। जो भी है वह किसी वृहतर मानव मूल्य के साथ संबंद्ध है। कहीं उसे कमजोर करने के विरूध्द सजग और उसे शक्ति प्रदान करता हुआ, कवि की कोशिश है कि वह जीवन को अधिक समग्र, मानवीय और अनुकूल देखे।

***

प्रभाकर चौबे

वे जीत के सुनहरे पंख हैं

त्रिभुवन पांडेय

वे अंधकार को नहीं जानते
उनके अंदर कितने सूर्यों की
तप्त किरणें हैं
वे जीत के सुनहरे पंख हैं
वे कभी उजड़ते नहीं
वे कभी हारते नहीं

कई बार कविता दूसरे के यथार्थ को लिखने की कोशिश में कवि के यथार्थ को लिखने लगती है। अच्छी रचना कब रचनाकार का आत्मकथ्य बन जायेगी और कब कवि या लेखक के व्यक्ति को जानने समझने का कारण बन जायेगी कहा नहीं जा सकता। 'खेल के बाद मैदान' काव्य संग्रह की कविता का यह उद्धरण पता नहीं प्रभाकर भाई पर लिखने के निश्चय के बाद सामने उपस्थित हो जाने के पीछे क्या कारण है मैं ठीक नहीं कह सकता लेकिन यह सुनिश्चित हैं कि यदि संक्षेप में प्रभाकर भाई की रचना प्रकृति का विश्लेषण करना चाहें तो यही निष्कर्ष उपलब्ध होगा। यदि आप मुझसे पूछें कि मैं प्रभाकर चौबे जी से सबसे पहले कब मिला तो मुझे ठीक उत्तर दने के लिए घंटो बैठना पड़ेगा। जिस तरह यह कहना काफी कठिन है कि पहली बार आपने फूल को कब देखा, कब पहली बार हँसे, कब पहली बार आसमान के सितारों को देखा तो आप कोई जवाब नहीं दे पायेंगे। यही स्थिति प्रभाकर भाई के संदर्भ में मेरी है।

प्रभाकर भाई अध्यापक थे। मैं भी जीवन भर पढ़ाता रहा। प्रभाकर भाई व्यंग्यकार है। मैं भी पचास वर्षों से व्यंग्य लिख रहा हूँ। प्रभाकर भाई कवि हैं। कविता मेरी अभिव्यक्ति के लिये भी अनिवार्य

जरूरत है। प्रभाकर भाई पत्रकारिता में सक्रिय रहे। मेरी भी अभिरूचि पत्रकारिता में है। अंतर केवल एक है प्रभाकर भाई शिक्षकों के संगठन में रहकर शिक्षकों के हितों के लिये संघर्ष करते रहे, मुझे यह सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ। प्रगतिशील लेखक संघ और छत्तीसगढ़ प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन में हम साथ रहे और भाई ललित सुरजन द्वारा आयोजित प्रगतिशील लेखक शिविरों से लेकर छत्तीसगढ़ प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विभिन्न आयोजनों में भाग लेते रहे। एक और बड़ी उपलब्धि उनके हिस्से में तब आई जब वे 'हंसते हैं रोते है" साप्ताहिक स्तम्भ को लगभग पच्चीस वर्षों तक निरंतर लिखने में सफल हुए। 'देशबन्धु' में प्रकाशित यह स्तम्भ पाठकों में काफी लोकप्रिय हुआ। व्यंग्य के क्षेत्र में हरिशंकर परसाई उनके भी निकट थे और मेरे भी। लगभग पचास वर्षों के लेखन के बाद न प्रभाकर भाई थके हैं और न मैं। इन्हीं सब समानताओं के कारण लगता है जैसे हम अभिन्न हैं।

वे धीमी बातचीत में यकीन नहीं करते। जब भी मिलेंगे जोर से आवाज लगाकर मिलेंगे। किसी भी गोष्ठी में बोलेंगे तो प्रभावशाली आवाज में बोलेंगे। जो कुछ भी कहेंगे पूरी आस्था के साथ कहेंगे। जोशो खरोश के साथ कहेंगे। विरोध करेंगे तो जमकर करेंगे। इससे उनके भीतर का खुलापन, बेबाकी, आत्मविश्वास और मित्रों के प्रति प्रगाढ़ स्नेह का आभास होता है। गहरे चिंतन के बीच फूटती हँसी उनके व्यक्तित्व को दिलचस्प बनाती है। आज वे पचहत्तर वर्ष के हो गये लेकिन चार दशक पूर्व मिले प्रभाकर चौबे से वे कहीं भी भिन्न दिखलाई नहीं पड़ते।

वे आज भी उसी प्रसन्नता के साथ मिलते हैं जैसे वे चालीस वर्ष पूर्व मिला करते थे। आज भी वे धमतरी के सभी रचनाकारों का हालचाल जरूर पूछ लेते हैं। ललित सुरजन, प्रभाकर चौबे और रवि श्रीवास्तव धमतरी के आयोजनों के स्थायी अतिथि है। जिस आयोजन में वे नहीं रहते वह आयोजन अधूरा लगता है।

विज्ञापन के बहाने व्यंग्य संग्रह 1986 रोजनामचा (संपादकीय संकलन 2003) और इसी वर्ष प्रकाशित काव्य संग्रह 'खेल के बाद मैदान' सहित कुछ अन्य प्रकाशित कृतियों के मध्य

प्रभाकर चौबे का विस्तृत रचना संसार फैला हुआ है। छत्तीसगढ़ में वे व्यंग्य के महत्वपूर्ण रचनाकार है। उनका व्यंग्य संग्रह 'विज्ञापन के बहाने' उसका एक छोटा सा उदाहरण है लेकिन केवल इसी एक व्यंग्य संग्रह को पढ़कर आसानी से प्रभाकर चौबे के व्यंग्य सामर्थ्य को जाना जा सकता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है --

सहकारी बैंक एक सहकारी बैंक का विज्ञापन इस प्रकार प्रकाशित हो गया था – 'देश का सबसे पुराना असहकारी, अमर्यादित बैंक। छुटभैयों की नेतागिरी और दलबन्दी का एकमात्र विश्वसनीय स्थल। गत 75 वर्षों की सेवा में लाखों किसानों को कर्ज में डूबा दिया गया है। एक बार रवानी करें – अध्यक्ष अक्खड़ दादा, मान सेवी सचिव एवं बैंक के समस्त जुझारू सदस्य।' (विज्ञापन के बहाने)

हँसना एक गुण है और स्वयं पर हँस लेना तो और भी बड़ा गुण है। अपने देश में मुस्कुराना और ठहाका लगाना बदतमीजी है। माँ बाप, पड़ोस के बुजुर्ग और शिक्षक युवकों को हंसने पर हमेशा टोंकते हैं। इसीलिये आम हिन्दुस्तानी चालीस के बाद डोकरा कहा जाता है ... (चाय के बहाने)

'मुद्रास्फीति बाईस प्रतिशत बढ़ी है। यह भी हमारी तरक्की का एक कीर्तिमान है। अब तो आंकड़ों से गड़बड़ी करने वाले यंत्र बन गए हैं। व्यवस्था का सारा ध्यान इसी में है कि गड़बड़ी को कैसे ढांका जावे, गड़बड़ी करना और गड़बड़ी को ढांकना चतुरा की निशानी है।' (मंहगाई अलंकार)

'शिक्षा एक बहुत बड़ा खेत है जहाँ भावी नागरिकों की फसल उगाई जाती है। शिक्षा के इन खेतों में अलग अलग सुविधाएं हैं। कुछ में सिंचाई है तो कुछ असिंचित है। कुछ में अच्छी खाद बीज डाले जाते हैं तो कुछ में यूं ही काम चल जाता है। कुछ खेत ठेके से दे दिये जाते हैं और कुछ खेत अधिया में चलते हैं। इस कारण फसल अलग होती है। कुछ ऊंची क्वालिटी की फसल उगती है ऊंचे ओहदे पर पहुंच जाती है। कुछ सामान्य फसल बनकर ही रह जाती है। ... .. 20 पर्सेन्ट और 80 पर्सेन्ट'

प्रभाकर भाई के पास अनुभवों का एक बहुत बड़ा संसार है। उन्होंने काफी कुछ देखा और जाना है। वे जटिल से जटिल

विसंगतियों को आसान उदाहरण देकर स्पष्ट कर देते हैं। वे हँसी मजाक करते हुए इतनी गंभीर बातें कह देते हैं कि पाठक पढ़कर चौंक जाता है। ऊंची क्वालिटी की फसल ऊंचे ओहदे में पहुंच जाती है यह पब्लिक स्कूल और सुविधाविहीन स्कूलों के संदर्भ में कितना प्रभावी व्यंग्य है। शिक्षा की अव्यवस्था और शिक्षक की उपेक्षा पर प्रभाकर चौबे ने काफी लिखा है। मार्मिक भी और मजेदार भी – 'मैंने कहा कि पोला के दिन बैल की पूजा होती है और शिक्षक सरकार का पशुधन है। बैल से हम कोई भी काम करवा सकते हैं। शिक्षक से भी चाहे जो काम करवा लो। जनगणना करवा लो, चुनाव करवालो, राशन कार्ड जाँच करवा लो, महामारी में मरने वालों की संख्या गिनवा लो, जुलूस निकलवा लो, परिवार नियोजन पखवाड़ा मनवा लो। बैल की तरह शिक्षक भी हर काम के लिये उपयोगी है।' (पांच सितम्बर पोला दिवस)

व्यंग्यकार प्रभाकर चौबे हम सब के लिये सुपरिचित हो चुके थे। 'हंसते हैं रोते है' व्यंग्य स्तम्भ के जरिये वे देशबन्धु के पाठकों तक नियमित रूप से पहुंच रहे थे। आकाशवाणी एवं अन्य पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके व्यंग्य सुनने और पढ़ने को मिल रहे थे। उनके पास अनुभव की कोई कमी नहीं थी। भाषा व्यंग्य की आवश्यकता के अनुरूप अलग अलग रूप में ढल जाती थी। रामचरितमानस की कई चौपाई उन्हें याद थी और मानस के लोकप्रिय चौपाई को वे कई बार अपने व्यंग्य में उद्धरित करते थे। अभिव्यक्ति में वे कभी कठिन नहीं हुए इसीलिए उनके व्यंग्य काफी दिलचस्पी से पढ़े जाते रहे। उनका व्यंग्यकार हम सबके लिये काफी परिचित हो चुका था और व्यंग्य की गोष्ठी में बहस और विमर्श के समय वे अनिवार्य रूप से याद किये जाते हैं। तभी 2003 में उनका काव्य संग्रह आया 'खेल के बाद भी मैदान खाली नहीं होता' थोड़ा आश्चर्य हुआ। वे चुपचाप कविता लिखते रहे और सीधे संग्रह के साथ उपस्थित हो गए। पढ़कर आश्चर्य में थोड़ी और अभिवृद्धि हुई। इस संग्रह की कविताएं किसी भी श्रेष्ठ कवि के समकक्ष थी। नवीनता भी चौंकाने वाली थी। प्रभाकर भाई ने संग्रह की कविताओं के विषय में लिखा था – 'कविता मनुष्य के संघर्ष को पकड़कर

आगे बढ़ती है । नये–नये अर्थ देती है । पुराने अर्थ निरूपयोगी होकर छूटते जाते हैं । कविता का शिल्प भी इसी विकास यात्रा की परिणति होती है, विकास के साथ शिल्प विकसित होता है और इस शिल्प की समझ भी नये संस्कारों से पैदा होती है ।'

वे अंधकार को नहीं जानते
उनके अंदर
कितने तप्त सूर्यों की तप्त किरणें हैं
वे कभी उजड़ते नहीं
युगों से चले आते
खदेड़ दिये जाने के बाद
फिर नया बसाते

इस संग्रह की पहली ही कविता गाँव के पास बहता नाले पर केन्द्रित है । विश्वग्राम और भूमंडलीकरण की जटिलताओं में गये बगैर यह कविता प्रकृति के इसी माध्यम के जरिये नाले का नदी में और नदी का महासागर में मिलने के सच को इस तरह प्रस्तुत करती हैं कि कवि को उपलब्ध यह अनुभूति सबके लिये महत्वपूर्ण बन जाती है । प्रभाकर चौबे के पूर्व शायद ही किसी कवि ने अपने परिवेश के साथ जुड़े इस सच को इस रूप में अभिव्यक्त किया हो

अपने गाँव के/नाले के पानी में
खड़ा मैं / समुद्र बन जाता हूँ
गाँव का नाला/नदी में मिलता है
नदी हिन्द महासागर में गिरती है
मैं नाले के पानी में खड़ा
हिन्द महासागर से मिल लेता हूँ
और हिन्द महासागर मुझे
सात समुद्रों की सैर करा देता है

एक नदी जो गाँव के समीप बहती है वह किस तरह लोगों के अहंकार के कारण विभाजित होती जाती है । पवित्र नदी का एक

घाट अछूत घाट कहलाने लगता है –

नदी के हिस्से हम सब आ जाते हैं
हमारे हिस्से नदी का घाट
हमारा पवित्र अहंकार लिये आता है
पूरी नदी हमारी नदी नहीं होती
पूरे जन हमारे जन नहीं होते

'जनक की बेटी' 'सीता' लोक में व्याप्त पौराणिक कथारूप को नवीन अर्थ के साथ लिखने की ऐसी काव्य दृष्टि है जिसमें जनक के विदेहराज से अकाल के समय संदेह होने तथा हल चलाकर 'सीता' को प्राप्त करने का परिवर्तित रूपक है। अकाल पड़ने पर राजा के सामने कोई दूसरा विकल्प नहीं होता –

अकाल में/मैं विदेह नहीं रहता
मैं सदेह बाहर निकलता हूँ
जहाँ मिलती है मिट्टी/ मैं खोदता हूँ मिट्टी
फिर मुझे सीता मिलती है/अकाल से लड़के जनक
की
बेटी है सीता

'एक प्रार्थना' पुरखों के द्वारा निर्मित जीवन और इतिहास के प्रति कृतज्ञता से लाद दिये गये विश्वासों के प्रति जरूरी जिज्ञासा भी है। पुरखों की मेहनत से ही आदिम युग का अंधेरा और भाषण युग का संघर्ष पूर्ण जीवन, कृषि संस्कृति और औद्योगिक उपलब्धियों की सुबह की चमकती रोशनी से आज आलोकित है लेकिन कुछ मिथक विश्वास भी संलग्न होकर चला आया है –

आग, पहिया, गति/अक्षर, लिपि
सब बनाया तुमने/सब सीख लिया
यह ईश्वर कैसे बनाया तुमने
ईश्वर बनाना हम सीख नहीं पाए
तुम्हारे ईश्वर को ढो रहे हैं/ओ पुरखो

विचारों की हत्या के गवाह पढ़ते हुए 'रामदास' कविता की याद लौट आती है। किस तरह हत्यारे के भय के कारण चश्मदीद गवाह भी कोर्ट के सामने कुछ स्वीकार नहीं करते और हत्यारे के छूट जाने में सहायक होते हैं –

सारे गवाह हाजिर हुए
कोर्ट में सबने बारी–बारी से कल
हमने कुछ नहीं देखा
सारे गवाह केवल हाजिर होने के लिए
हाजिर हुए थे
कोर्ट में
हत्यारा छूट गया

प्रभाकर चौबे को पढ़ते हुए बार–बार यह अनुभव होता है कि मध्यवर्ग में रहते हुए सभी तरह की चुनौतियों का सामना करते हुए, संघर्ष को झेलते हुए सदैव प्रसन्न रहना और निरंतर लिखते हुए अपने समकालीन रचनाकार मित्रों को सर्जना के समक्ष उपस्थित चुनौतियों से अवगत कराना प्रभाकर भाई की अपनी विशिष्टता है।

***

प्रभाकर चौबे

खेल के बाद भी मैदान खाली नहीं होता

त्रिभुवन पांडेय

अच्छी कविताएं जीवन यथार्थ की खोज में जब निकलती है तब यथार्थ के साथ ऐसा जीवन-सत्य भी साथ लेकर लौटती है जिससे समकालीन धुंधला परिदृश्य साफ साफ दिखलाई ही नहीं पड़ता उसके अबूझे अर्थ भी समझ में आने लगते हैं। प्रभाकर चौबे 'हास्य-व्यंग्य' लिखते हुए भाषा और अभिव्यक्ति के जिस रोचक संसार की रचना करते हैं उससे अभिव्यक्त जीवन का सच सबको अपनी ओर आकर्षित करने के लिए येथेष्ठ होता है लेकिन उनमें 'खेल के बाद मैदान' की कविताओं की तरह मार्मिकता नहीं होती। यहां भाषा अपने शिल्पगत जादू का कमाल नहीं दिखाती और न ही उसकी 'व्यंजना' के जरिये अर्थ का सम्मोहन पैदा किया जाता है। इनमें जिंदगी के प्रति ऐसी संवेदनशील, अन्वेषणपरक दृष्टि है जिसमें प्रचलित स्वरूप के भीतर कुछ नये अर्थ को प्राप्त करने की कोशिश होती है।

इस संग्रह की पहली ही कविता गांव के पास बहता नाले पर केन्द्रित है। विश्वग्राम और भूमंडलीकरण की जटिलताओं में गये बगैर यह कविता प्रकृति के इसी माध्यम के जरिये नाले का नदी में और नदी के महासागर में मिलने के सच को इस तरह प्रस्तुत करती है कि कवि को उपलब्ध यह अनुभूति सबके लिये महत्वपूर्ण बन जाती है। प्रभाकर चौबे के पूर्व शायद ही किसी कवि ने अपने परिवेश के साथ जुड़े इस सच को इस रूप में अभिव्यक्त किया हो

अपने गांव/नाले के पानी में / खड़ा मैं / समुद्र बन जाता हूँ। गांव का नाला/नदी में मिलता है / नदी हिन्द महासागर में

गिरती है / मैं नाले के पानी में खड़ा /हिन्द महासागर से मिल लेता हूँ / और हिन्द महासागर मुझे/सात समुद्रों की सैर करा देता है।

अब नहीं आता कलई वाला स्मृति में मौजूद एक ऐसे पात्र की पुनर्रचना करती है जिसमें तेजी से बदलते समय का दृश्य और अर्थ दोनों मौजूद है। कलई करने वाला व्यक्ति किस तरह मोहल्ले में आता था, किस तरह द्वार पर आवाज देता था, किस तरह बर्तनों के हिसाब से भाव तय होता था फिर किस तरह कलई वाले का बर्तन चमकाने का काम प्रारंभ हो जाता था –

हम बच्चे फिर/कलई वाले को घेरकर खड़े हो जाते/आग तैयार करने की तैयारी से लेकर/कलई लगने/रेत से साफ करने/ फिर पानी में डालकर/छन्न करने तक, देखते

फिर पीतल, कांसे के बर्तन की जगह स्टील के बर्तन और अब प्लास्टिक के कटोरी प्लेट, चम्मच आ गये। चारों ओर 'यूज एंड थ्रो' की संस्कृति फैलती जा रही है लेकिन कवि चिंतित है उस कलई वाले के विषय में सोचकर कि आखिर उसका क्या हुआ होगा –

अब कलइ वाला नहीं आता/मोहल्लों में भी नहीं आता/ कहां गया?/अब क्या काम कर रहा होगा/कलइ वाला

इसी तरह माँ और पिता की स्मृतियां है –

पिता होते हैं तो/निश्चिंत होते हैं/चिंता में होते हैं/पिता के नही होने पर/हम अचानक/पिता हो जाते हैं।

योर्स मोस्ट ओबिडियेंट सर्वेंट/की स्पेलिंग में/कभी गल्ती नहीं की मैने/और मैं/झुका हुआ/उनकी नौकरी बजा रहा हूँ/अच्छा सेवक हूँ।

एक नदी जो गांव के समीप बहती है वह किसी तरह लोगों के अहंकार के कारण विभाजित होती जाती है। पवित्र नदी का एक घाट अछूत घाट कहलाने लगता है।

नदी के हिस्से हम सब आ जाते हैं/हमारे हिस्से नदी का घाट/हमारा पवित्र अहंकार लिये आता है/पूरी नदी हमारी नदी नहीं होती/पूरे जन हमारे जन नहीं होते।

जनक की बेटी सीता लोक में व्याप्त पौराणिक कथारूपक को नवीन अर्थ के साथ लिखने की ऐसी काव्य दृष्टि है जिसमें जनक के विदेहराज के अकाल के समय संदेह होने तथा हल चलाकर 'सीता' को प्राप्त करने का परिवर्तित रूपक है। अकाल पड़ने पर राजा के सामने कोई दूसरा विकल्प भी नहीं होता –

अकाल में/मैं विदेह नहीं रहता/मैं संदेह बाहर निकलता हूँ/ जहां मिट्टी मिलती है।मैं खोदता हूँ मिट्टी/फिर मुझे सीता मिलती है / अकाल से लड़ते जनक की/बेटी है सीता

एक प्रार्थना पुरखों के द्वारा निर्मित जीवन और इतिहास के प्रति कृतज्ञता के साथ लाद दिये गये विश्वासों के प्रति जरूरी जिज्ञासा भी है। पुरखों की मेहनत से ही आदिम युग का अंधेरा और पाषण युग का संघर्षपूर्ण जीवन कृषि संस्कृति और औद्योगिक उपलब्धियों की सुबह की चमकती रोशनी से आज आलोकित है लेकिन कुछ मिथक विश्वास भी संलग्न होकर साथ चला आया है –

आग, पहिया, गति/अक्षर, लिपि/सब बनाया तुमने/सब सीख लिया/यह ईश्वर कैसे बनाया तुमने/ईश्वर बनाना हम नहीं सीख पाए/तुम्हारे ईश्वर को ढो रहे हैं/ओ पुरखों छोटा बच्चा झंडा बेचता है। इस संग्रह की महत्वपूर्ण कविताओं में से एक है। स्वतंत्रता मिलने के बाद भी गरीबी किस तरह स्वतंत्रता की उपलब्धि और उसकी खुशियों को निगलती गई, किसत रह जब दूसरे बच्चे स्वतंत्रता दिवस के उत्सव में सम्मिलित थे तब एक छोटा बच्चा पंद्रह अगस्त के दिन 'तिरंगा' बेचता घूम रहा था–

पंद्रह अगस्त को/तिरंगा बेचता/छोटा बच्चा/झंडे की कीमत जान गया है/पंद्रह अगस्त/का मतलब भी/समझ गया है। ये त्योहार/ उसके लिये/फोटो बेचकर/कमा लेने के/त्योहार है।

विचारों की हत्या के गवाह पढ़ते हुए 'रामदास' कविता की याद लौट आती है। किस तरह हत्यारे के भय के कारण चश्मदीद गवाह भी कोर्ट के सामने कुछ स्वीकार नहीं करते और हत्यारे के छूट जाने में सहायक बनते हैं।

सारे गवाह हाजिर हुए/कोर्ट में सबने/बारी–बारी से कहा/ हमने कुछ नहीं देखा/सारे गवाह केवल हाजिर होने के लिये/हाजिर हुए थे/कोर्ट में/हत्यारा छूट गया।

कविता की आधारशिला शीर्षक अपने वक्तव्य में प्रभाकर चौबे ने कविता के विषय में काफी सचेत होकर विचार किया है – प्रभाकर चौबे के अनुसार – कविता मनुष्य के संघर्ष को पकड़कर आगे बढ़ती है । नये अर्थ देती है । पुराने अर्थ निरूपयोगी होकर छूटते जाते हैं । कविता का शिल्प भी इसी विकास यात्रा की परिणति होती है, विकास के साथ शिल्प विकसित होता है और इस शिल्प की समझ भी नये संस्कारों से पैदा होती है । इस संग्रह की कविताएं इस वक्तव्य के अनुरूप उन संभावनाओं के द्वार खोलती है जहां ऐसे उत्साह से भरे हुए जीवंत लोग हैं –

वे अंधकार को नहीं जानते/उनके अंदर कितने सूर्यों/की तप्त किरणें हैं /वे जीत के सुनहरे पंख हैं / वे कभी उजड़ते नहीं/ युगों से चले आते/खदेड़ दिये जाने के बाद/फिर नया बसाते ।

खेल के बाद मैदान कविता पढ़ते हुए प्रेमचंद के सुप्रसिध्द उपन्यास 'रंगभूमि' के प्रमुख पात्र सूरदास के उस प्रसिद्ध कथन की याद आती है जिससे सूरदास ने कहा था – हमें तब तक खिलाड़ी की तरह मैदान में डटे रहना होगा, हमारी दक्षता और कुशलता को बढ़ाना होगा, जब तक कि हमारी जीत नहीं होती । इन कविताओं में संघर्ष की यही दीप्ति दिखलाई पड़ती है ।

***

जयशंकर 'नीरव'

जीवन अनुभवों के महत्वपूर्ण कथा-प्रसंग

त्रिभुवन पांडेय

सन् 1960 के आसपास जिन कथाकारों ने पाठकों का ध्यान अपनी कहानियों की ओर आकर्षित किया। जयशंकर 'नीरव' उन कथाकारों में एक थे। उनकी कहानियां, विनोद, रेखा जैसी प्रसिद्ध पत्रिका से लेकर उस समय की सभी पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही थी। सातवें दशक में लेखक सहयोगी प्रकाशन से जो बहुचर्चित कहानी संग्रह प्रकाशित सुप्रसिद्ध कहानी "मीठे कनेर का दरख्त" था। नई कहानी तब अपना रूप-रंग संवार रही थी। कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, नई कहानी को स्थापित करने के लिये जैनेन्द्र कुमार, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर जैसे पुराने कथा शिल्पियों से बहस में जुटे हुए थे। कलकत्ता में तब एक निर्णायक कहानीकार सम्मेलन हुआ था जहाँ हुई बहस का सार संक्षेप 'ज्ञानोदय' में प्रकाशित हुआ था। अज्ञेय नई कविता को स्थापित करने के लिए 'तारसप्तक' के जरिये ऐसी ही बहस सन् 1942 में प्रारंभ कर चुके थे। नई कहानी को स्थापित करने के लिये यह काम दस वर्ष बाद शुरू हुआ।

ठीक इसी समय 'जयशंकर' 'नीरव' एक कथाकार के रूप में सामने आये और 'दरख्त' दीवार और कार्बन पेपर, 'मीठे कनेर का दरख्त' और 'चार रूपये के जूते' जैसी कहानियां लिखकर श्रेष्ठ कहानीकारों की पंक्ति में जा खड़े हुए। जिस शिल्प और भाषा का तलाश नये कथाकार अपनी कहानियों के लिये कर रहे थे वह भाषा और शिल्प जयशंकर 'नीरव' को उनकी गहरी कथा दृष्टि और आत्मान्वेषण के सामंजस्य के कारण सन् साठ से सत्तर के मध्य में

लिखी कहानियों में प्रकृत रूप से उपलब्ध हो गई । उनकी कहानियों की अपनी नवीनता के कारण ही चर्चित हुए । यदि वे समकालीन कथाकारों की तरह पारम्परिक शैली में लिखते तो उनकी कहानियाँ लम्बे समय तक लोगों को याद नहीं रहती । इस कथा संग्रह की पहली कहानी प्रेम की उसी परिणति पर केन्द्रित है जो प्रेम करने वाले की स्थायी नियति रही है । नारंग गरीब है । शैल से वह प्रेम करता है । शैल भी उसे प्रेम करती है । लेकिन शैल विवाह मजुमदार से करती है । मजुमदार संपन्न व्यक्ति है । उधर मजुमदार को करोड़ो का घाटा होता है । उसकी आर्थिक स्थिति दयनीय हो जाती है । नारंग इन्ही सब घटनाओं का उल्लेख करता हुआ एक पत्र लिखता है । पत्र पोस्ट करने के बाद जब वह प्रतिलिपि पढ़ने के लिये कार्बन से अलग करता है तब कागज कोरा मिलता है । कार्बन पेपर गलती से उल्टा लग जाता है । इस कहानी का अंत सर्वाधिक प्रभावशाली है । शैल को विस्मृत करने की कोशिश करता हुआ नारंग उसे भूलना भी नहीं चाहता । स्मृति और विस्मृति का यह द्वंद्व उस प्रेम कथा में जिस तरह उभरा है वह सर्वथा नवीन है ।

रीतू गवर्नमेंट हास्पिटल में नर्स है । नर्सेज क्वार्टर में रहती है । मरीजों की दिन रात सेवा करती है । उसकी संवेदना, आत्मीयता, स्नेह से निहारती और दिलासा देती आँखे अस्पताल में सबको प्रभावित करती है । मरीज कभी कभी उसे देर रात तक अपने पास रहने का आग्रह करते हैं । कभी कभी उसके प्रति और अपना प्रेम भी व्यक्त कर देते हैं मगर रीतू किसी बात का बुरा नहीं मानती । वह मरीज के अकेलेपन और पीड़ा को समझती है । रीतू की यह आत्मीयता सुबह की उस किरण की तरह है जो अपने साथ प्रकाश की गुनगुनी ऊष्मा भी लाती है । 'चार रूपये के जूते' मध्यवर्गीय क्लर्क की व्यथा कथा है । मकान मालिक शिवधर तिवारी पंडित है । उनके घर राजमानों के द्वारा दान में दिये कई जोड़े जूते हैं । इधर क्लर्क के जूते घिसकर पहनने के लायक नहीं रह गये थे । श्रीमती तिवारी उसे चार रूपये में जूते दे दती है । नये जूते इतने सस्ते रेट में पाकर क्लर्क प्रसन्न हो उठता है । उसे अपने स्वाभिमान की भी चिंता नहीं रह जाती कि कैसे वह दूसरों के सामने अपनी दयनीय स्थिति प्रदर्शित कर जूते प्राप्त कर ले ।

'मौत की रेखा' मार्मिक कहानी है। इस कहानी को पढ़ते हुए प्रेमचंद की सुप्रंसिद्ध कहानी 'दो बैलों की कथा' याद आ जाती है। भारत पाकिस्तान सीमा पर एक गांव है समस्तीपुर। मधुसुदन उस गांव का किसान है। एक दिन उसके जानवर पाकिस्तान सीमा में रहने वाला नजीर खां चुरा ले जाता है। सीमा पर तैनात सैनिकों की नजर बचाकर वह नजीरखां के घर से अपने जानवर छुड़ा लाता है। इस प्रयास में वह सैनिकों द्वारा चलाई गई गोली से घायल भी हो जाता हे लेकिन इसके बाद भी वह विजयी की तरह अपने जानवरों की ओर देखता है। भारत पाकिस्तान सीमा पर रहने वाले लोगों की परेशानी, मुसीबत से जूझने की उनकी जिजीवसा इस कहानी का अविस्मरणीय बना देती है। आज भी सीमा पर रहने वाले लोगों की स्थिति इसी तरह के हमलों के कारण असुरक्षित बनी हुई है। 'चेतना के स्वर' युद्ध के समय किस तरह भारत के लोग एकता के सूत्र में बंधकर देश के लिये सब कुछ न्योछावर करने के लिये तत्पर हो जाते हैं इस 'राष्ट्र चेतना' पर आधारित कहानी है। यह इस देश की सर्वोपरि विशेषता है।

'वह रहा गाँव' भारत के गावों में रह रहे लोगों की अशिक्षा उनका अंधविश्वास, उनकी रूढ़िवादिता किसी भी नयी चीज के प्रति अविश्वास की कथा है। गाँव में टीका लगाने के लिये जब कर्मचारी जाते हैं तब टीका लगाये जाने से बचने के लिये वे दो सौ रूपये देकर अपना पीछा छुड़ाते हैं। संक्रामक रोगों से घिरे हैं लेकिन टीका लगाने से घबराते हैं। उन्हें तब राहत मिलती है जब कर्मचारी बगैर टीका लगाये गांव से वापस लौट जाते हैं। इसी तरह 'कफ्र्यू' कहानी भी दिलचस्प है। बलरामपुर के छात्र कभी आंदोलन नहीं करते हैं। कभी हड़ताल नहीं करते। पास के शहरों में छात्र आंदोलन करते हैं। लाठी चार्ज होता है फिर स्थिति बिगड़ने पर 'कफ्र्यू' लगा दिया जाता है। बलरामपुर के छात्र 'कफ्र्यू' के विषय में उत्सुक हैं कि आखिर 'कफ्र्यू' क्या होता है। कैसे लगाया जाता है। वे मीटिंग करते हैं। फिर जुलूस निकालते हैं। जुलूस पर लाठी चार्ज होता है। छात्र नेताओं को पकड़ लिया जाता है। जब उनसे मांग के विषय में पूछा जाता है तब छात्र अधिकारियों के सामने

एक मांग पत्र प्रस्तुत करते हैं जिसमें शहर में 'कफ्र्यू' लगाये जाने की मांग होती है । अधिकारी मांग पत्र पढ़कर आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

'मीठे कनेर का दरख्त' जय शंकर 'नीरव' की सुप्रसिद्ध कहानी है। यह कहानी जब प्रकाशित हुई तब काफी चर्चित हुई थी। किस तरह एक अध्यापक अमीर पिता से अपमानित होकर उसका बदला बेटे से लेना चाहता है लेकिन 'अध्यापक और छात्र' का पवित्र रिश्ता उसे बदला लेने से रोक देता है। अंततः वह अपने छात्र को गले लगाकर पश्चाताप करता है कि किस तरह पिता द्वारा अपमानित होने का बदला उस मासूम और निर्दोष बच्चे से लेने के लिये वह कटिबद्ध हो जाता है । अध्यापकों के साथ होने वाला असहनीय व्यवहार और उसकी प्रतिक्रिया में अध्यापकों के भीतर उत्पन्न होने वाले आक्रोश और उसके परिणाम का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण इस कहानी में मिलता है ।

'यम की समस्या' व्यंग्य कथा है। नयी कविता की अस्पष्ट अभिव्यक्ति पर लिखा गया यह व्यंग्य किसी भी श्रेष्ठ व्यंग्यकार की रचना के समकक्ष है। राकेश नयी कविता लिखता है। चित्रगुप्त जब उसके कृतित्व के आधार पर अच्छे और बुरे का हिसाब लगाता है तो वह असमर्थ हो जाता है। जब कृति ही समझ में न आये तो उसके परिणाम का मूल्यांकन कैसे हो ? अंततः बात यमराज तक पहुंचती है और यह तय होता है कि नये कवि के कर्म का लेखा जोखा उसके कृतित्व के बदले उसके व्यक्तित्व की अच्छाई और बुराई के अनुसार हो। इस तरह मनुष्य के कर्म का लेखा जोखा रखने की नयी शुरूआत नयी कविता के कारण होती है। 'कायर' इस संग्रह की ऐसी कहानी है जो यह विश्वास दिलाती है कि मनुष्य तब तक बुरा होता है जब तक कोई उसकी चेतना पर प्रहार करने वाला नहीं मिलता । गांव का जमींदार ज्योति विलासिता की जिंदगी जीता है । गांव की युवतियों से दुर्व्यवहार करता है। एक युवती जब उसे 'कायर' कहती है तब उसमें आत्मचेतना जागृत होती है। वह आजाद हिन्द फौज में भरती हो जाता है और शत्रुओं से युद्ध करते हुए घायल हो जाता है। घायल अवस्था में वही युवती नर्स के रूप में मिलती है जिसके

मर्मभेदी शब्द से उसकी जिंदगी बदल गई थी। युवती उसे देखकर पश्चाताप के स्वर में कहती है कि वह वस्तुतः कायर नहीं है। केप्टन की आँखे इसके बाद सदैव के लिये मुंद जाती है।

जयशंकर 'नीरव' का कथा–संसार व्यापक है। किसी कहानी में मध्यवर्गीय परिवार की ढहती हुई आर्थिक स्थित का चित्रण है (चार रूपये के जूते) तो किसी कहानी में प्रेम संबंधों के तनाव और उससे उत्पन्न विवाद तथा आक्रोश का चित्रण है (दरख्त दीवार और कार्बन पेपर) 'रीतू एक खुली हुई ...दिल' जैसी कहानी चरित्र प्रधान कहानी है जिसमें रीतू के उदार दृश्य और आत्मीय स्वभाव का परिचय मिलता है। ऐसी कहानियाँ आसानी से भूलती नहीं है क्योंकि रीतू जैसी मानवीय करूणा से अनुप्रमाणित पात्र की जरूरत सदैव रहेगी। जयशंकर 'नीरव' की कहानियों को पढ़ते हुए प्रेमचंद की निम्नलिखित पंक्तियाँ फिर से याद आने लगती है। कहानी के शिल्प और विषय, उसकी रचना प्रक्रिया पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है 'प्रकृति में जो कला है वह प्रकृति की है, मनुष्य की नहीं। मनुष्य को तो वही कला मोहित करती है, जिस पर मनुष्य के आत्मा की छाप हो जाती है जाहिर है प्रेमचंद जी कथाकार के संवेदनशील अनुभवों को व्यापक मानवीय परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। जयशंकर 'नीरव' की इन कहानियों में मनुष्य के उसी अंतरंग स्वरूप का परिचय मिलता है।

***

विश्वेन्द्र ठाकुर
अपने समय के प्रति
सजग श्रेष्ठ रचनाकार

त्रिभुवन पांडेय

1958 के आसपास महासमुन्द आज जैसा नहीं था। एक छोटा सा गांव नगर। चौक के आसपास होटल पान दुकान। एक हाईस्कूल। एक सिनेमा हॉल। चौक से रेल्वे स्टेशन जाने वाली सड़क के किनारे एक छोटा सा बस स्टैण्ड। गिनी चुनी बसें यहां आती और कुछ देर रूककर रायपुर या बागबाहरा की ओर बढ़ जाती। इसी बस स्टैण्ड के समीप 'मनोहर होटल' बस हम सबके लिए दिल्ली के काफी हाऊस जैसा आकर्षण का केन्द्र था। यहां विश्वेन्द्र ठाकुर, मनोहर शर्मा, जयशंकर 'नीरव', मनमोहन सिंह ठाकुर तथा सप्ताहांत में नारायणलाल परमार नियमित रूप से बैठा करते। मैं इस गोष्ठी में बराबर उपस्थिति रहता। चेतनआर्य की उम्र तब काफी कम थी। वह भी इस होटल में हम लोगों के असपास मौजूद रहता। विश्वेन्द्र भाई रेल्वे स्टेशन के समीप एक कॉलोनी में रहा करते। दो तीन कमरे। एक छोटा सा आँगन। छह फुट की दीवार। जब कभी इच्छा होती वहां पहुंच जाते। चाय पीते। भाभी जी प्रसन्न होती तो नाश्ता भी मिल जाता फिर रेल्वे स्टेशन की ओर निकल जाते। तब बहस के लिये कई महत्वपूर्ण विषय थे। नई कविता किस रूप में स्वीकार्य हो। छंद मुक्त कविता क्या पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगी। यथार्थ और आदर्श का साहित्य में क्या अनुपात हो। विश्वेन्द्र ठाकुर नयी कविता के अग्रणी कवियों में एक थे। छत्तीसगढ़ में गुरूदेव कश्यप, सतीश चौबे, जैसे महत्वपूर्ण नये कवियों के साथ विश्वेन्द्र ठाकुर का नाम लिया जाता था। नयी कविता के शिल्प को जैसा विश्वेन्द्र ठाकुर ने अपने में रचा बसा लिया था। वे जीवन भर नयी कविता लिखते रहे यद्यपि

कवि सम्मेलन में वे कभी–कभी छंदबद्ध कविता भी सुनाया करते। 1958 से 61 का वह समय सृजन यात्रा की दिशा निर्धारित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। जितनी गंभीर चर्चा तब हुआ करती रचना परिदृश्य को समझने की जितनी कोशिश तब होती वैसी चर्चा और वैसी कोशिश अब कहीं होती नहीं दिखलाई पड़ती।

महासमुन्द से जाने के बाद विश्वेन्द्र ठाकुर से बराबर मुलाकात होती रही। पत्र व्यवहार चलता रहा। वे काफी दिनों भाटापारा में रहे फिर सेवानिवृत्त होने के बाद रायपुर में ही निवास करने लगे। वे जब मिलते ठहाकों का सिलसिला शुरू हो जाता। फिर वे जल्दी ही गंभीर हो जाते। समकालीन साहित्य से लेकर छत्तीसगढ़ के रचनाकारों पर बात चल पड़ती। महासमुन्द का प्रसंग आत्मीय स्मृति में परिवर्तित हो जाता। इस बीच विश्वेन्द्र ठाकुर की किताबें बराबर प्रकाशित होती रहीं। किस्सा बहराम चोट्टा का (1961) सुबह का भूला (1991) जवाहर बँडी (1996) और रौशनी जंगल में (1997) दो उपन्यास, एक एकांकी संग्रह, एक काव्य संग्रह और एक आत्म कथात्मक उपन्यास उनके जीवन अनुभवों की रचनात्मक उपलब्धि है। वे श्रेष्ठ रचनाकार थे। अपने समय के प्रति सजग। अपने समकालीन मनुष्य की पीड़ा को जानने समझने के लिये उत्सुक और उसे अभिव्यक्त करने के लिये व्यग्र।

'रोशनी जंगल में' काव्य संग्रह की कविताएं वर्तमान समय और मनुष्य का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। कवि दो टुक शब्दों में पूछता है –

सवाल है
कि क्या हम
अंधे को रास्ता दिखा सकते हैं
लंगड़े को दौड़ा सकते हैं
और ला सकते हैं / भटकों को रास्ते पर
यदि नहीं/तो इस रास्ते से वास्ता क्या ?
कोई फर्क नहीं पड़ता
चाहे वहां से निकले
रथयात्रा/शवयात्रा

घटनाओं के प्रति संवेदनहीन होते समाज और मनुष्य के प्रति चिंतित कवि यह देखकर उद्विग्न हो उठता है कि किस तरह बड़ी–बड़ी घटनायें इतिहास में चुपचाप विसर्जित होती जा रही है। मरने वाले लोग इतनी खामोशी से मर रहे हैं जैसे यह मौत नहीं कोई महानिर्वाण है। ऐसे में एक सजग कवि कितनी पीड़ा और असहाय स्वर में कहता है –

सभा जुलूस / घेराव आंदोलन
पहले जैसा आज भी
शहर में / नया कुछ भी नहीं है
लोग जी रहे हैं। मर रहे हैं
मर रहे हैं/जी रहे हैं
मर रहें हैं /जी रहे हैं
समाचार देने में / कोई खास तुक नहीं है

कारखाना खुलने के बाद गाँव, जमीन की बात, गाँव मेरी नाक है, पलायन जैसी कविताओं में छत्तीसगढ़ के उजड़ते हुए गाँव, औद्योगिक प्रदूषण से घिरते गाँव, बड़ी–बड़ी कम्पनी के घेरे में कैद होते गांवों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है। प्रलायन करते मजदूरों को देखकर, उनकी हालत देखकर, गाँधी की स्मृति साकार हो उठती है।

ये क्या करने लगे हैं लोग
जो दो अक्टोबर के पूर्व
गाँव छोड़ दूर दिशा की ओर
जाने लगे हैं
इनकी पसलियाँ गिनो
लंगोटी देखे
हूबहू बापू

विश्वेन्द्र ठाकुर की रचना यात्रा एक सार्थक कवि की रचना यात्रा थी। चाहे उपन्यास हो या कविता उनके सामने सवाल था संकट में घिरते मनुष्य को सचेत करना। उसे साहस बाँधना। वे स्पष्ट

रूप से उद्घोषित करते हैं –

मैं/तूफान पीड़ित
लोगों की तलाश में हूँ
मैं इस खोज में
आदमी के आचरण पर नहीं जाता
केवल उच्चारण सुनना चाहता हूँ
क्योंकि वे /डूब मरने का खतरा
भोग रहे हैं
उन्हें उबारना जरूरी है

हरि ठाकुर के बाद विश्वेन्द्र ठाकुर का अवसान छत्तीसगढ़ के सृजन परिदृश्य को रिक्त कर गया। दोनों समकालीन थे। रचना प्रवृत्ति भी एक जैसी थी। मनुष्य के खिलाफ जारी षड़यंत्र को लेकर दोनों बेचैन थे। दोनों छत्तीसगढ़ की आत्मा के निकट थे। दोनों एक दूसरे के आत्मीय थे। मुझे दोनों को निकट से जानने, सुनने, समझने का महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। छत्तीसगढ़ के रचनाकार, और पाठक उन्हें कभी विस्मृत नहीं कर पायेंगे। विश्वेन्द्र ठाकुर की इन पंक्तियों के साथ उनकी स्मृति को मैं संरक्षित रखना चाहता हूँ।

मेरा मन/जन्मजात
शुकदेव कथाकार
वर्तमान का नहीं भाष्यकार
परीक्षित गर्भस्थ है
मेरा यह भागवत
उसे ही समर्पित है

***

मुकीम भारती

मेरी यादों में...

त्रिभुवन पांडेय

सन् 1957 के आसपास जब नौकरी के सिलसिले में मैं बस्तर चला गया और लिखने के लिये भाषा की तलाश में काफी कुछ पढ़ना शुरू किया तभी मेरे ही मोहल्ले में रहने वाले भाई मुकीम भारती से साहित्य पर बातचीत शुरू हुई। वे तब तक गीतकार के रूप में धमतरी सहित आसपास के शहरों में सुपरिचित हो चुके थे। अपने लालित्यपूर्ण और अभिनव अभिव्यक्ति के कारण इन गीतों को चारों ओर प्रशंसा मिली। इसमें कुछ योगदान उनके सस्वर पाठ का भी था। वे अपने गीतों को जिस माधुर्य के साथ प्रस्तुत करते, जिस तरह के राग में निबद्ध करते वह सर्वथा मौलिक होता। गीत लिखने के बाद का वक्त उसकी मधुर प्रस्तुति के तरीके पर विचार करने में गुजार देते। उनके अधिकांश गीत देखते ही देखते छत्तीसगढ़ के लोगों के कंठहार बन गये। लोग मुकीम भारती के गीतों को उसी तरह गाने गुनगुनाने लगे जैसे आमतौर पर किसी भी प्रसिद्ध लोकप्रिय गीत के साथ होता है। सैकड़ों कवि सम्मेलन में उनके साथ भाग लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ। हर बार उन्हें सुनना एक नया अनुभव होता। रात के अंतिम प्रहर में जब वे माइक के सामने खड़े होकर पूरी तन्मयता के साथ 'देखो तो प्यार की किताब पन्ने तक अब पीले हो गये' डालियाँ बदले सुमन बदले चमन लेकिन वही है, या 'तुम मुझे मोहब्बत दो मैं तुम्हें गजल दूंगा' जैसी रचनाएं सुनाते तो हजारों लोगों के साथ शहर के हर हिस्से में यह अविस्मरणीय आवाज गूंजती चली जाती। कवि सम्मेलन का आखिरी दौर मुकीम के नाम होता। मुकीम सुनाकर नहीं थकते लोग वाह-वाही करते नहीं थकते। मुकीम भारती की यह लोकप्रियता सन् 1992 तक थोड़ी भी कम नहीं हुई। गजल, गीत, छत्तीसगढ़ी गीत सभी कुछ वे इस सहजता से सुनाते जैसे वे गीत और गीतकार के

अभिन्न रूप हों। समझ में नहीं आता था उनकी गायकी प्रशंसा करें या उनके गीतों की।

पहले रामसागर पारा के उस मोहल्ले में जहां हम साथ–साथ रहते फिर टिकरापारा के किराये के मकान में फिर सिविल लाईन्स के क्वार्टर में साहित्य की सभी विधाओं पर बराबर बहस जारी रही। वे समकालीन राजनीति, सांस्कृतिक गतिविधि, प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील ताकतों के बीच चलते संघर्ष को तथा साहित्य पर पड़ते उसके प्रभाव को गहरी दिलचस्पी से देखा करते। इतिहास के वे अध्यापक थे। अंग्रजी, उर्दू और हिन्दी पर उनका समान अधिकार था। आर्थिक अभाव को उन्होंने काफी करीब से देखा। लोगों की गरीबी देखी। संपन्नता और विपन्नता के बीच बढ़ती दूरी का अंदाजा लगाया। फिर बड़ी बेबाकी से उसे लिखा। अतिक्रमण के विरूद्ध लिखी उनकी आखिरी चार कविताएँ उन्हें देश के प्रसिद्ध शायरों की पंक्ति में सम्मिलित कर देती हैं।

हम किसी फुटपाथ पर सो लेंगे अम्बर के तले
झोपड़ी अपनी बनाने से हमें अब डर लगे
फर्श सब उखड़े दरों दीवार टूटी, छत गिरी
क्या बतायें घर सरीखा अब न अपना घर लगे

वे मंचों से बार–बार उनकी ओर से आवाज देते रहे, चुनौती देते रहे जो व्यवस्था की चक्की में पिस रहे थे। वे कविता के अभिप्राय को जान चुके थे। इसीलिये उनके गीतों गजलों और कविताओं मे उस आदमी की परछाई बार बार उभरकर आती है जो बाहर से डरा हुआ है लेकिन भीतर से जो चट्टान की तरह सख्त है।

गर्मियों की छुट्टी में जब धमतरी आता तो मुकीम भाई के कमरे में बैठकर घंटों बात करता। वे तब कहानियां भी लिख रहे थे। उनकी एक कहानी 'तकियेदार' मुझे शानी की याद दिला देती। उनके पास एक कथाकार की मार्मिक दृष्टि थी। हिन्दी और उर्दु की मिली जुली प्रभावी भाषा थी। वे कहानी में जिस स्थिति का वर्णन करते वह आंखों के सामने उपस्थित हो जाती। यदि वे कहानी लिखते होते तो उन्हें एक कथाकार के रूप में सहज ही ख्याति मिल जाती।

एक बार एक पुराने रजवाड़े में कवि सम्मेलन था। वहाँ के राजकुमार कवि सम्मेलन के मुख्य अतिथि थे। कवि सम्मेलन समाप्त

हाने के बाद उन्होंने सुबह राजमहल में स्वल्पाहार के लिये आमंत्रित किया। राजमहल भव्य था। युनान की प्रतिमाएं, फारस का गलीचा, बेल्जियम का शीशा सब बेशकीमती था। उनका सेवक हम सबको दरबार हॉल ले गया। वहाँ चाँदी का सिंहासन रखा था। मुकीम भाई ने उस सिंहासन को चारों ओर से देखा फिर परमार जी से कहा – गुरू अगर इस सिंहासन का केवल एक हत्था हम लोगों को मिल जाये तो साहित्य के समक्ष उपस्थित सारा संकट समाप्त हो जाये। मुकीम भाई की इस बात पर जो ठहाके लगे तो एक मिनट के लिये दरबार हॉल भी जैसे जीवंत हो उठा।

वे लिखने में जितने सतर्क थे जीवन में उतने ही बिखरे हुए थे। गीत लिखते समय एक-एक शब्द का चयन सावधानी से करते। एक-एक बिम्ब की खोज वे पूरी तन्मयता से करते लेकिन जीवन को संवारने, उसे सुविधायुक्त बनाने की वे ज्यादा चिंता नहीं करते। सामान्य लोगों के प्रति गहरी सहानुभूति उनके रहन सहन का हिस्सा बनती गई। जीवन का वैभव उन्हें आकर्षित करता। एक बार उज्जैन के पास आयोजित कवि सम्मेलन में जाते हुए भोपाल के एक भव्य हो होटल में रूके। कुछ देर बार वेटर चाय लेकर आया तब कप प्लेट समेटने के बाद सलामी ठोककर सावधान की मुद्रा में खड़ा हो गया। मैने उसे 'टिप' दिया। वह सिर झुकाकर चला गया। ऐसा दूसरी बार भी हुआ। तीसरी बार मुकीम भाई ने मुझसे कहा इस होटल में चाप पीने में मजा नहीं आ रहा है। चलो नीचे ठेलेवाले के पास चाय पीते हैं। हमें उस ठेले में चाय पीते हुए वेटर ने देखा तो वह हैरान रह गया। उस भव्य होटल के अतिथि एक छोटे से ठेले में चाय पियें यह उसके लिए एक पहेली थी।

मुकीम भाई सभी समकालीन कवियों, कथाकारों की बराबर समीक्षा करते रहते। यद्यपि समीक्षा लिखने के कवायद से दूर थे लेकिन रचनाकारों की वे गहरी पड़ताल करते। पढ़ने के शौकीन थे। अच्छी रचनाओं का बराबर उल्लेख करते और पढ़ने का आग्रह करते। गीतकारों को वे शौक से सुनते। लेकिन नयी कविता के प्रति उनमें थोड़ी भी उदासीनता नहीं थी। वे नई कविता के महत्वपूर्ण कवियों को अच्छी तरह जानते थे। उर्दु साहित्य की उन्हें सम्पूर्ण

जानकारी थी। कई बार वे गालिब, जौक, मोमिन से लेकर मजरूह और साहिर का जिक्र करते।

जीवन के वे प्रमाणिक गीतकार थे। सहज सरल भाषा में वे गहरे जीवन दर्शन को कहने में सफल हो जाते –

हर चीज जिसके पास है पहले से जियादा, हर व्यक्ति और उदास है पहले से जियादा हर फूल के चेहरे पे खुशी पहले से कम क्यों, जब बाग में मधुमास है पहले से जियादा जिन्दगी की तल्ख सच्चाई को उन्होंने निकट से देखा था। वे आदमी की गहरी विवशता को जानते थे। राजनीति में धीरे–धीरे फैल रही संक्रामक रूग्णता को वे करीब से देख रहे थे। चारो ओर बढ़ती हुई निराशा और गहन अंधेरे में घिरते हुए लोगों का चेहरा उन्हें साफ दिखलाई पड़ रहा था। उन्होंने अपनी एक गजल में साफतौर पर इसे दो टूक शब्दों में कहा –

हमने तो इंकलाब देख लिया, आपने भी जनाब देख लिया
एक ही था सवाल रोटी का, आ गया क्या जवाब देख लिया

लेकिन इसके बाद भी वे मनुष्य की जिजीविषा पर विश्वास करते थे। उन्हें भरोसा था कि मनुष्य अपराजेय है। उसे कभी कोई नहीं हरा सका। उन्होंने पूरे आत्मविश्वास के साथ लिखा–
मेरे सारे पंछी हैं पिंजरे में तुम्हारे बंदी
आकाश में लेकिन उड़ती एक आबाबील बची है

आकाश में उड़ती आत्मचेतना की वह मजबूत आबाबील कभी कैद नहीं की जा सकी।

***

भगवती सेन

लोक अभिव्यक्ति की नई दिशायें

त्रिभुवन पांडेय

किसी भी जीवन्त और प्रासंगिक रचना के लिये सबसे प्रमुख शर्त है मनुष्य के खिलाफ जारी हर षड़यंत्र का पर्दाफाश करना। मनुष्य को छोटा करने के लिये प्रयत्नशील हर प्रयास का प्रतिरोध करना। उन मूल्यों की वापसी के लिये संघर्ष करना जिन्हें खोकर कोई व्यवस्था मनुष्य का पक्षधर नहीं हो सकती। जीवन्त रचना के संदर्भ में एक्तुशेंको ने बेहद महत्वपूर्ण बातें कही हैं। खासतौर पर कवि और काव्य के संदर्भ में। एक्तुशेंको का कथन है- "दूसरों के बारे में निर्मम सच्चाई से लिखने का अधिकार कवि को तभी मिल सकता है जब वह अपने बारे में लिखते समय भी निर्मम सच्चाई से काम ले। कवि के व्यक्तित्व को दो हिस्सों, वास्तविक मनुष्य और कवि में बांटना अनिवार्यतः आत्मघाती कलात्मकता की ओर ले जाता है।

दुर्भाग्यवश अनेक जब उनकी जिंदगियां उनकी कविता से टकराने लगती है, तब भी कविता लिखना जारी रखते हैं, वैसे वे होते हैं, उससे अपने आप को अलग दिखलाते हुए। लेकिन जब वे यह समझते हैं कि वे कविता लिख रहे हैं, तब वे सिर्फ अपने से छल कर रहे होते हैं। कविता से छल नहीं किया जाता। और कविता उन लोगों से किनारा कर लेती है जो उसके प्रति सच्चे नहीं होते। कविता उस प्रतिशोधी स्त्री की तरह है जो कभी किसी झूठ को क्षमा नहीं करेगी जो सच से कम हो। कविता में अपनी यातना के खिलाफ चुप्पी अनिवार्यतः दूसरों की यातनाओं और दुखों के खिलाफ चुप्पी बन जाती है।"

कवि के व्यक्ति और कृतित्व के बीच जिस सामंजस्य की अपेक्षा एक्तुशेंको करते हैं वह सामंजस्य भगवती सेन के कृतित्व और व्यक्तित्व में आद्यान्त दिखलाई पड़ता है। अन्याय और शोषण

का विरोध केवल कविताओं में ही नहीं व्यावहारिक जीवन में भी करना, शोषित और उत्पीड़ित व्यक्ति की पक्षधरता सैद्धांतिक रूप में ही नहीं, क्रियात्मक धरातल पर भी रूपांतरित करना भगवती के व्यक्तित्व और कृतित्व की विशिष्टता थी। अपनी कविताओं में वे मनुष्य की नियति के खिलाफ रचे जा रहे षड़यंत्रों का पर्दाफाश करते रहे, उन लोगों को ललकारते रहे जो सही आदमी का अभिनय करते हुए मानवीय सपनों के साथ सौदेबाजी करते हैं। उनकी कवि दृष्टि जीवन के चारों ओर व्याप्त असंगतियों पर बराबर केन्द्रित रही इसलिए उनकी कविता कभी ठंडी और क्लान्त नहीं होने पाई। धीरे-धीरे दीवारें और अधिक जर्जर हुई, पोस्टर मटमैले हुए, सपनों का मायाजाल समेट कर चला गया विकास का बहेलिया सोनपांखी बटोर कर। इस सम्पूर्ण राष्ट्रीय परिदृश्य को कितनी व्यथा के साथ व्यक्त करते हैं भगवती सेन –

मरखण्डा मन
भुकूंर भुकुंर के खाथें
सिधवा गरूवा
भुखन मर जाथे
भड़गे भइया अब तो
गोल्लर मन के चलती हे
जाने कहां गल्ती हे ?

भगवती की कविताओं में ऐसे ही सैकड़ों सवाल है। कवि किसी अस्थायी समाधान से आश्वस्त नहीं होना चाहता। वह चाहता है लोगों के मन में यही सवाल ज्यादा तल्खी के साथ उत्पन्न हों। जब तक पूरी गंभीरता के साथ प्रश्न नहीं उठेंगे तब तक संघर्ष की स्थिति नहीं आ सकती। प्रश्नहीनता एक ठंडी चुप्पी में बदल जाती है, चुप्पी निष्क्रियता में और निष्क्रियता धीरे-धीरे मौत में तब्दील हो जाती है।

भगवती सेन अपने कविताओं में इस प्रश्नहीनता, ठंडी चुप्पी, निष्क्रियता और मौत के खिलाफ पूरी शक्ति से आवाज लगाते हैं। यह आवाज पूरी तल्खी और व्यग्रता के साथ जब कभी, जिस किसी रचना के माध्यम से उठेगी वह रचना उतनी ही सार्थक और प्रासंगिक

होगी। जब तक यह चुप्पी नहीं टूटती इन रचनाओं की प्रासंगिकता भी समाप्त नहीं होगी। चाहे भगवती सेन हो या दुष्यंत शिल्पगत दूरी के बावजूद अपनी कविताओं के माध्यम से सदैव प्रांसगिक बने रहेंगे क्योंकि बकौल दुष्यंत –

हो गई है पीर पर्वत सी, पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए
मेरे सीने में न सही, तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए ॥

संघर्ष की आग उनकी कविताओं में सदैव धधकती रही। कभी उसकी आंच अलाव की आग की तरह धीमी होती थी तो कभी जंगल में लगी हुई आग की तरह व्यापक और तेज होती थी। उनकी कविताओं को पढ़ते हुए बराबर उसी उष्णता का आभास मिला है। उनकी कविताओं में मौजूद इसी विशिष्टता को नारायणलाल परमार इन शब्दों में रेखांकित करते हैं –

"यह आदमी प्रारंभ से ही जीवन से साहित्य की ओर चला है। अपने भीतर की आग का विज्ञापन वह भला क्यों देने चला। आग तो अपनी दिशा तलाशने में खुद समर्थ होती है। एक ओर वह श्रम के महत्व को रेखांकित करता है तो दूसरी ओर पूंजीवादी" षड़यंत्रों का मुखर विरोध। देश की बदहाली, गरीबी और मंहगाई के प्रति उसका आक्रोश बेहद साफगोई और तल्खी के साथ सामने आता है। किसी भी सच्चे कवि के लिये अपनी धरती से जुड़ा रहना जरूरी है। वह जानता है कि कविता का ध्यान यदि अपनी ही ईमानदार भूमिका से विकेन्द्रित हो जाय तो फिर उसके अस्तित्व पर भरोसा करना मुश्किल हो जायेगा।

भगवती सेन की सबसे बड़ी विशिष्टता उन कविताओं में दिखलाई पड़ती है जिन कविताओं में मानवीय नियति के खिलाफ आयोजित किये जा रहे षड़यंत्रों का बेबाक चित्रण है। लोक भाषा की शक्ति का जिस सामर्थ्य और कौशल के साथ उन्होंने उपयोग किया वह अपनी अपनी उपलब्धि है।

वे सामान्य आदमी की पीड़ा के इतने अभिन्न रूप में जुड़े हुए थे, इस तरह उस जीवन में उनकी हिस्सेदारी थी कि उस पीड़ा को व्यक्त करने के लिए किसी कृत्रिम बनावट, वायवीव बिम्ब या रूपक की आवश्यकता नहीं पड़ी। भीतर ऐसी थरथराती हुई संवेदना थी कि कविता स्वयं उमड़ती थी, उस प्रबल जलधारा की तरह जिसकी शक्ति किनारों को तोड़कर सम्पूर्ण कछार में फैलती चली जाती है।

आजादी के बाद विकास के जो सोनपांखी राजधानियों से उड़े, वे जाने किन बहेलियों के जाल में कैद हो गये। सुदूर ग्राम्य प्रदेशों तक पहुंची केवल सोनपांखी के रवाना होने की खबर। भग्न दीवारों पर बड़े-बड़े पोस्टर चस्पा हो गये जिसमें नयी जिंदगी के आगमन की सूचना थी। धान की सुनहरी बालियों के साथ हंसता हुआ किसान था, खेतों में पम्पसेट लगा हुआ, दुग्ध-धवल, छल-छल करता हुआ जल प्रवाह चारों ओर फैलता हुआ, विद्युत प्रकाश से जगमगाता, लघु-उद्योगों और राष्ट्रीयकृत बैंकों से सजे गांवों की तस्वीर उन पोस्टरों पर अंकित थी।

***

विभु कुमार

हम अपनी सही भूमिका और लक्ष्य को पहचानें-

त्रिभुवन पांडेय

दो कथा संग्रह 'सही आदमी की तलाश' मेरे साथ यही तो दिक्कत है, पांच नाटक तालों पे बंद प्रजातंत्र, अपरिभाषित, कहे ईसा सुने मूसा, हवाओं का विद्रोह तथा मुन्नी बाई सहित बहुचर्चित कहानियों के कथाकार तथा नाट्य लेखक विभुकुमार का पैसठ वर्ष की आयु में अकस्मात निधन हो जाना सबको हतप्रभ कर देने वाला समाचार था। 13 मार्च 1942 को सागर में जन्मे विभुकुमार देवेन्द्र नगर रायपुर में निवास कर रहे थे। वे दुर्गा महाविद्यालय के लोक प्रिय हिन्दी प्राध्यापक रहे और यही से सेवा निवृत्त हुए।

लेखक के प्रति उनके मन में किसी तरह का द्वैत भाव नहीं था। जैसा सोचते थे वही लिखते थे। वे अपने लेखन पर प्राध्यापकीय आदर्श को हावी होने नहीं देते थे। कई बार ऐसा हुआ कि बेबाक लिखने के लिये आलोचना का शिकार होना पड़ा। लेकिन वे इससे कभी विचलित नहीं हुए। 16 जनवरी 1969 को 'सारिका' में विभुकुमार का एक संक्षिप्त लेख प्रकाशित हुआ था। आवश्यकता अपनी सही भूमिका और लक्ष्य पहचाननें की है। साहित्यकार के दायित्व पर विचार करते हुए इस लेख में विभु ने लिखा था आश्चर्य की बात थी कि हमारा साहित्यकार (जो समाज का जागरूक और बुद्धिजीवी व्यक्ति कहलाता है) भी व्यवस्था के उस घिनौने षड़यंत्र को (अपने सही दुश्मन को) पहचान पाने में असमर्थ था और अगर मैं यह कहूं कि असमर्थ नहीं था वरन जानबूझकर आंखे चुरा रहा था तो बहुतों को कष्ट होने लगेगा। और इसका परिणाम यह हुआ कि आने वाले समय की सारी पीढ़ी भी उसी तरह के गलत रास्तों पर

चलती रही और खोज सही रास्ते की करती रही और हमने बेश कीमती तीस वर्ष यूं ही गुजार दिये । नंगी – अधनंगी, भूखी–अधभूखी पीढ़ी के नाम पर। इसलिये जरूरत इस बात की है कि हम अपनी सही भूमिका और लक्ष्य को पहचाने और तद्नुरूप लिखें। आज जरूरत ऐसी रचनाओं की है जो उस आग को पैदा करें जो इस देश से प्रजातंत्र की रखैल स्थिति को समाप्त करें इसलिए आज की संपूर्ण स्थिति को देखकर हमें अपने लेखन के तेवर को बदलना पड़ेगा।

इसी तरह की चिंता वे तब भी व्यक्त करते हैं जब 'मीर–ओ–गालिब' का संपादन का दायित्व विभु को मिलता है। डॉ. प्रमोद वर्मा के साथ सहयोगी संपादक के रूप में उर्दू और हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए साफ शब्दों में कहते हैं जब भाषा ही नहीं रहेगी तो जिंदगी कहां रहेगी। रस और आनंद कहां रहेगा। मनुष्य के मनुष्य होने की पहचान ही भाषा से है वरना उसमें और जानवर में क्या फर्क है। भाषा में रचा साहित्य ही इस बात का द्योतक है कि मनुष्य भी सृष्टा है। एक समानांतर दुनियां रच सकता है। रचता है तथा ईश्वर से कहीं ज्यादा चिंता करता है। इस दुनिया की ओर निरंतर प्रयासरत रहता है इस दुनियां को बेहतर से बेहतर बनाने के लिए। वैश्विक राज्य (वसुधैव कुटुम्बकम) की कल्पना किसी धर्म में से नहीं, साहित्य से ही संभव होगी। आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व विभुकुमार से पहली मुलाकात धमतरी में आयोजित नई कलम सम्मेलन के अवसर पर हुई थी। छत्तीसगढ़ के सभी प्रमुख साहित्यकार इस सम्मेलन में उपस्थित थे। हरशिंकर परसाई, अशोक बाजपेयी, रश्मि बाजपेयी, मायाराम सुरजन विशिष्ट अतिथि थे। विभुकुमार कथागोष्ठी में सवक्तव्य कहानी पढ़ने के लिये आमंत्रित थे। विभु कथा सत्र के साथ काव्य गोष्ठी में भी सम्मिलित हुए। 'घर आंगन बुहार गई भोर की फिरनियां' 'गीत सुनाते हुए कुछ देर के लिये भाविभोर हो उठे। कार्यक्रम अमर टाकीज हॉल में संपन्न हुआ था। पंचशील होटल के संचालक श्री बालमुकुन्द वर्मा एवं श्री जागेश्वर शिंदे इस आयोजन के प्रमुख सहयोगी थे। हरिशंकर परसाई और अशोक बाजपेयी के विचारों को सुनना सम्मेलन में उपस्थित साहित्यकारों के लिये सुखद अनुभव था।'

विज्ञान कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा नवोदित युवा छात्र लेखकों के लिये आयोजित रचना शिविर 'युवा सृजन की दिशाएं' में भाग लेने के लिये छत्तीसगढ़ के सभी प्रमुख रचनाकार समय समय पर उपस्थित होते रहे। विभुकुमार भी दो बार इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। तब तक वे 'यात्रा शवयात्रा' कहानी के लिये अखिल भारतीय कथा लेखन प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर चुके थे। सड़क-नाटक लिखने और प्रस्तुत करने की दिशा में वे अग्रणी थे। सड़क-नाटक में वे स्वयं अभिनय भी करते। वे छत्तीसगढ़ी नाटक लिखते हुए बहुत उत्साहित थे। 'बेदरोदीवार शीर्षक छत्तीसगढ़ी नाटक' का एक अंश लोकाक्षर, दिसम्बर 2001 में प्रकाशित हुआ। इस नाटक में भी विभुकुमार के तीखे तेवर को साफ तौर पर देखा जा सकता है।

पुरूष (झुंझलाकर मिस्त्री से) मिस्त्री ये रेजाएं साथ काम करती है। इज्जत किया करो। अपमानित होने या गाली सुनने घर से बाहर नहीं निकली है। (थोड़ी देर रूककर) कामचोर कौन नहीं है। मिस्त्री, मै, तुम इस देश के नेता, अफसर कौन नहीं है।

कामचोरी। ये बेचारी तो मजबूरी में ऐसा करती है। सुस्ताने के लिये।

विभुकुमार अपनी कहानियों और नाटकों में पूरी तरह यथार्थ को जानने, समझने और बेबाकी के साथ लिखने की कोशिश करते रहे। लेखक की भूमिका प्रारंभ होते ही वे अपने प्राध्यापिकीय दायित्व को थोड़ी देर के लिए एक ओर सहेजकर रख देते थे। यह एक मुश्किल काम था। लेकिन जो लोग लेखक की भूमिका को सर्वोपरि मानते हैं वे किसी भी स्थिति में इसे सीमित नहीं करते। किसी आग्रह को स्वीकार किये बगैर केवल लेखकीय आवश्यकता का निर्वाह करते हैं। विभुकुमार ऐसे ही लेखक थे। छत्तीसगढ़ के वे महत्वपूर्ण कथाकार और नाट्य लेखक थे। नाटकों के जरिये सीधे लोगों से देश और समाज की ज्वलंत समस्याओं पर बातचीत का जो सिलसिला शुरू हुआ था, वह धीरे-धीरे कम होता गया। सड़क नाटकों में विभुकुमार को अभिनय करते हुए देखना एक लेखक की सामाजिक भागीदारी और उसके सरोकारों के विस्तार को देखना था। विभुकुमार एक महत्वपूर्ण नाट्य लेखक के रूप में सदैव हमारे मध्य उपस्थित रहेंगे।

***

बसंत दीवान

स्मृतियों के अंतरिक्ष में

त्रिभुवन पांडेय

बसंत दीवान से मेरी आखिरी मुलाकात वैभव प्रकाशन में हुई थी। डॉ. सुधीर शर्मा के प्रेस में एक बैठक आयोजित थी। बसंत दीवान इस बैठक के संयोजक थे। बैठक का विषय था छत्तीसगढ़ के जरूरतमंद साहित्यकारों को आर्थिक सुविधा उपलब्ध कराना। योजना थी कि इसके लिए राशि जुटाकर एक कोष निर्मित किया जाए। इसके संचालन के लिए एक समिति गठित करने पर भी विचार हुआ। बैठक के बाद बसंत भाई बाहर खड़ी गाड़ी तक छोड़ने आये। पूरी आत्मीयता के साथ हाथ मिलाया और विदा करते हुए इस योजना पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिए कहा।

कुछ दिनों बाद डॉ. सुधीर शर्मा का पत्र आया। बसंत दीवान के समग्र योगदान पर केन्द्रित एक किताब प्रकाशित हो रही है। मैं एक संस्मरणात्मक लेख उस पुस्तक के लिए भेज दूं। रचना मिलने के बाद भाई ने टेलीफोन पर धन्यवाद देते हुए प्रसन्नता व्यक्त की। उन्हं संस्मरण बहुत अच्छा लगा था और उन्हें आश्चर्य होता रहा कि मैं कवि सम्मेलन की छोटी-छोटी बातें कैसे याद रख सका। मार्च के मध्य में उनका टेलीफोन आया। पुस्तक विमोचन के अवसर पर चाहते थे कि हम सब धमतरी के मित्र उपस्थित रहे। आने जाने के लिए गाड़ी की सुविधा आयोजन समिति की ओर से उपलब्ध थी। टेलीफोन पर बात करते हुए इस बार आवाज में वैसी ओज और खनक नहीं थी। जिस आवाज को सुनकर लोग उठकर बैठ जाते थे। लगता था अकबर बादशाह के दरबार में अबरार अल्वी का लिखा कोई भारी भरकम डायलाग बोला जा रहा हो। बसंत कवि सम्मेलनों में कहा भी करते थे सबकी आवाज गली तो अपनी आवाज मानो मोहल्ला। कई बार वे अपनी आवाज के विषय में कहा करते सुनकर

लग रहा होगा भाखरा नंगल का बांध फूट गया। आवाज थोड़ी कमजोर जान पड़ी तो मैने स्वास्थ्य के विषय में पूछा। बसंत भाई ने कहा स्वास्थ्य अब ज्यादा ठीक नहीं है। कुछ न कुछ गड़बड़ है। उम्र के हिसाब से तो यह सब चलता रहेगा। संस्मरणों की किताब छपकर आ गई है। कुछ गिने-चुने मित्रों को आमंत्रित किया है। जरूर आना। मैं इंतजार करूंगा। लेकिन जाने वाले कहां इंतजार करते हैं। संस्मरणों की किताब का विमोचन यथा समय संपन्न हुआ। बसंत भाई के व्यक्तित्व और कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश डाला गया। उनके बहुआयामी योगदान की चर्चा हुई। प्रत्येक के पास कहने के लिए बहुत कुछ था। सभी उनकी लोकप्रिय कविताओं को याद करते रहे - श्रृंगार किसे कहते हैं, मैं फेल हुआ परवाह नहीं, बोल रे मिट्ठू तू जय बोल, लीडर जैसे कितनी ही कविताएं सबके स्मृतियों में मौजूद थीं। सन् 1965 के आसपास लोकप्रिय कवियों के रूप में जिनका नाम छत्तीसगढ़ के काव्य मंच में प्रतिष्ठित हुआ बसंत दीवान उनमें से एक थे। वे विद्युत की कौंध की तरह देखते ही देखते छत्तीसगढ़ के काव्य मंच पर स्थापित हो गये। दल्लीराजहरा के जिस कवि सम्मेलन में मुझे बसंत दीवान की आवाज के साथ हास्य व्यंग्य कविताओं के प्रभाव का पहली बार अंदाजा लगा उसमें सर्व श्री नारायण लाल परमार, मुकीम भारती, सुरजीत नवदीप, भगवती सेन तथा नीलू मेघ भी सम्मिलित थे। आगे चलकर बसंत दीवान के साथ कितने ही कवि सम्मेलनों में भाग लेने का अवसर मिला धमतरी के वे चहेते कवि थे। कई बार ऐसा होता था कि कवि सम्मेलन का अंतिम दौर बसंत दीवान नाइट में परिवर्तित हो जाता था। स्रोता सिर्फ बसंत दीवान की कविताएं सुनते थे। बाद में जब परिचय और ज्यादा अनौपचारिक होने की हद तक बढ़ा तो उन्हें निकट से जानने समझने का अवसर प्राप्त हुआ। रायपुर स्थित उनका फोटो स्टूडियो सभी साहित्यकारों कवियों का आश्रय स्थल था। वे जिस आत्मीयता के साथ मिलते, परेशानियां सुनते और अपने प्रभाव के चलते सहयोग देते उससे सभी उनसे प्रभावित थे। वे छत्तीसगढ़ के श्रेष्ठ कवि थे। अभिनेता थे प्रोफेशनल फोटोग्राफर थे। वे पृथक छत्तीसगढ़ के लिए समर्पित कार्यकर्ता थे और अपनी किसी भी बात

को पूरी बेबाकी के साथ कहने में अग्रणी थे। वे जहां जाते उनकी प्रभावशाली आवाज चारोंओर गूंजने लगती। छत्तीसगढ़ के वे ऐसे एकमात्र कवि थे जो अपनी आवाज से चारों ओर सम्मोहन की स्थिति पैदा कर लिया करते। कविता सुनाने के पहले उनकी स्थिति मजेदार होती। मैं फेल हुआ परवाह नहीं कविता सुनाने के पूर्व जब वे अपने फेल होने की अनिवार्यता और उसके कारण बताते तो कविता के पहले ही ठहाके लगने लगते। वे ऐसे छात्र थे जिनका फेल होना सुनिश्चित था। स्कूल के प्रधानाध्यापक अध्यापक और छात्र सभी इस बात को जानते थे। कारण इस कविता में मौजूद हैं। मैं फेल हुआ परवाह नहीं मैं लिखा कि रसिया में गेहूँ के झाड़ बहुत होते हैं मैं लिखा हिमालय बहुत बड़ा सागर है अपने देश में और पैसेफिक छोटा सा पर्वत है मध्यप्रदेश में तब कैसे होता पास फेल के सिवा अन्य थी राह नहीं .. मैं फेल हुआ परवाह नहीं।

इस कविता को सुनते हुए लोग जिस उन्मुक्त भाव से ठहाके लगाते उससे बसंत दीवान का सम्मोहन असर करने लगता। फिर बसंत दीवान चाहे कविता सुनाये, टिप्पणी करें। लतीफा सुनायें ठहाकों का यह सिलसिला आखिरी तक जारी रहता। मैंने कई बार अपने स्थान पर बैठने के बाद बसंत को वापस माइक के सामने फिर आने के लिए बाध्य होते देखा है। लोगों का ऐसा प्यार जिस कवि को मिलता है उससे उसकी कविता की शक्ति का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। कवि सम्मेलन की लोकप्रियता में जिन कवियों ने चार चांद लगाया उनमें बसंत दीवान का नाम शीर्ष पर है। उनकी हास्य व्यंग्य की कविताएं तब अपनी शिल्पगत विशेषताओं के साथ प्रस्तुति के प्रभावी गुण के कारण काफी रोचक लगती थीं। सुनहरे कल की ओर हो या धक्का लगाईये। बुखार हो या पुलिस थाना सभी कविताओं में व्यंग्य और हास्य का आनुपातिक उपयोग देखते ही बनता है।

कभी-कभी कैसे दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं नारे
एक बस उलट गई नदी के किनारे
पंद्रह घायल हुए, पांच स्वर्ग सिधारे
ड्रायवर, कंडक्टर दोनों बच गये बेचारे
दुर्घटना के कारणों के लोग

अपने अपने ढंग से गढ़ रहे हैं
और उल्टी हुई बस में लिखा था
हम सुनहरे कल की ओर बढ़ रहे हैं

रोये रे कबीरा कविता में एक जगह हाथी की सवारी का उल्लेख आता है। बसंत भाई जब बहुत अच्छे मूड में होते बकायदा हाथी किस तरह द्वार पर खड़ा हो सूंड उठा आवाज लगाता है। उसे अभिनय सहित प्रस्तुत कर देते। लोग कविता से मुग्ध होते तो अभिनय से विमुग्ध। वाह-वाह और हास्य कवि मुकाबला जैसे टीवी कवि सम्मेलनों में अभिनय का सिलसिला जो अब शुरू हुआ है। उसकी शुरूआत पहले ही छत्तीसगढ़ के इस लोकप्रिय कवि के द्वारा हो चुकी थी। आवाज की बुलंदियों के कारण श्रृंगार किसे कहते हैं। जैसी ओजस्वी कविता जिस प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते वह प्राय: कवि सम्मेलन के बाद देर तक ध्वनित होती रहती। प्राय: यह कवि सम्मेलन की आखिरी कविता होती और इसे स्रोता काव्य उपलब्धि के रूप में संजोकर रखते। बसंत भाई पैरोडी लिखने में भी बेजोड़ थे। छत्तीसगढ़ के विभिन्न गायक कवियों की लोकप्रिय कविताओं को इस तरह प्रस्तुत करते कि सुनने वाले मूल और पैरोडी का एक साथ आनंद लेते। कवि सम्मेलन में भाग लेने जा रहे इस कवियों को ले जा रहे हवाई जहाज में अचानक आग लग जाती है। उसे बसंत दीवान ने बड़े ही कौशल के साथ उसी छांदिक विशेषताओं सहित प्रस्तुत किया है। ऐसी ही एक पैरोडी ओमप्रकाश आदित्य सुनाया करते हैं। इस लंबी पेरोडी का एक उदाहरण इस प्रकार है।

मोर संग मरो रे, मोर संग मरो गा
ओ गिरे परे हपटे मन अऊ परे डरे मनखे मन
मोर संग मरो रे मोर संग मरो गा

इस सुप्रसिद्ध पेरोडी में छत्तीसगढ़ के दस-बारह कवियों की लोकप्रिय कविताओं को यथा रूप यथा छंद प्रस्तुत किया गया था। वस्तुतः बसंत दीवान की सृजन यात्रा एक ऐसे कवि के रूप में

हुई जिसके पास कविता लिखने के लिए काव्य वस्तु के चयन से लेकर काव्य शिल्प तक सब कुछ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। देशबन्धु में प्रकाशित होने वाली उनकी कविता प्रतिदिन प्रकाशित होने के बाद भी अपनी अभिव्यक्ति में कहीं न्यून नहीं लगती थी। घटनाओं को काव्य रूप देना काफी कठिन होता है। बसंत दीवान की काव्य संवेदना उन्हें जीवन सत्य के निकट ले जाने में सदैव सफल रही है। श्री हरि ठाकुर ने लिखा दीवान की कविताएं मुझे रूचिकर और हृदयस्पर्शी लगी। वे कभी हृदय के बंद कपाटों पर दस्तक देती है। कभी हमारी मानसिक उदासीनता को झकझोरती है, कभी चिकोटी काट कर चुपचाप खिसक जाती है। जीवन में जो कुछ भी जीवंत है, वह बसंत है। बसंत दीवान के साथ यात्राओं में कवि सम्मेलन के मंच पर रेस्ट हाऊस और होटल के कमरों में जितने ठहाकों और मजेदार टिप्पणियों के साथ सदैव रास्ते की थकावट भूल जाया करते। कवि सम्मेलन में काव्य पाठ करते हुए पचास वर्ष व्यतीत कर देना आसान नहीं होता। स्रोताओं की बदलती हुई रूचि बदलते हुये कवि, बदलती हुई कविता के मध्य सदैव लोकप्रिय बने रहना, प्रासंगिक बने रहना विशिष्ट प्रतिभा के बगैर संभव नहीं होता। श्री बसंत दीवान काव्य मंच में पचास वर्ष मौजूद ही नहीं रहे, सार्थक और श्रेष्ठ काव्य रचनाओं के साथ संपूर्ण साहित्यिक परिदृश्य को अपनी आवाज से अनुप्राणित भी करते रहे। काव्य मंच सीधे संवाद का मंच होता है जहां कवि और सुनने वालों के मध्य कोई व्याख्याकार नहीं होता है। वह कविता प्रस्तुत करते हुए अपनी टिप्पणीयों से उसे सरल बनाता चलता है। काव्य मंच में उपस्थिति के स्वर्ण जयंती वर्ष के अवसर पर यह सोचकर प्रसन्नता होती है कि लोकप्रिय होने के साथ सार्थक सृजन यात्रा का साक्षी होना कितनी बड़ी उपलब्धि होती है।

***

गजेन्द्र तिवारी

व्यंग्यकार आत्मनियुक्त प्रहरी है

त्रिभुवन पांडेय

किसी भी लेखक के सामने बार–बार यह सवाल उपस्थित होता है कि वह क्यों लिख रहा है? किसके लिये लिख रहा है ? उसके लिखने का क्या प्रभाव पड़ रहा है ? पड़ भी रहा है या सब कुछ व्यर्थ जा रहा है ? इस सवाल से गजेन्द्र तिवारी भी जूझते रहे हैं। अपने व्यंग्य संग्रह 'ला खर्चा निकाल' की भूमिका में वे ऐसा ही सवाल करते हैं क्या लिखें ? कितना लिखें ? क्या होगा हमारे लिखने से ? फिर लिख लिख कर कागज काले करने से क्या होगा ? लेकिन फिर भी लाख टके का सवाल है कि अगर लिखें नहीं तो और क्या करें ? इस संदर्भ में जब हिन्दी व्यंग्य के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने विचार किया तब उन्होंने यह अनुभव किया कि 'मेरे व्यंग्य लेखन से कोई सामाजिक परिवर्तन हो जायेगा एकदम से मैं इसकी अपेक्षा नहीं करता। मैं अपनी लेखन की सीमाएं जानता हूँ। तो फिर मैं क्यों लिखता हूँ, इसका सामाजिक प्रयोजन क्या है ? मेरा प्रयोजन यह है कि मैं परिवर्तन की चेतना पैदा करता मैं समाज को आत्माक्षात्कार कराऊं। मैं समाज को इतना समर्थ करूं कि आत्मालोचन कर सके। चूंकि मनुष्य सोचता, है तो वह सोचेगा कि हममे ये अंतर्विरोध है, अतः हमें इन्हें दूर करना चाहिये।' आगे चलकर 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं में साक्षात्कार देते हुए दोबारा यह प्रश्न जब उनके सामने उपस्थित हुआ तब उन्होंने उत्तर दिया 'अभिव्यक्ति का अपना सुख है, अपना पीड़ा की चाशनी में पगा हुआ है सच मानिए इंसान को वहशी देखकर बड़ी मर्मातक पीड़ा होती है। विसंगतियों, विडंबनाओं और अंतर्विरोधों तथा विरोधाभास को देख, सुन व महसूस कर बहुत कष्ट होता है। यह कष्ट ही लिखने को प्रेरित करता है। इसकी तासीर और व्यंग्य की तासीर में शायद पटरी खूब बैठती है, इसलिए अपने आपको अभिव्यंजित करने के लिए व्यंग्य का चयन करना पड़ा।'

गजेन्द्र तिवारी का पांचवां व्यंग्य संग्रह इसलिये महत्वपूर्ण नहीं है इसमें इक्यावन व्यंग्य रचनाएं हैं जो विषय और भाषा की दृष्टि से सर्वाधिक रोचक किंतु तिलमिला देने वाली है। बल्कि इसलिए महत्वपूर्ण है कि व्यंग्य लिखते हुए चार दशक बीत जाने के बाद और लगभग 300 व्यंग्य रचना लिख लेने के बाद भी न उनके पास जीवन अनुभवों की कमी है न विसंगतियों की देखने को दृष्टि क्षमता में कोई कमी है।, वस्तुतत्व के अनुरूप भाषा में परिवर्तन करने के सामर्थ्य में कोई कमी है और यह किसी भी रचनाकार के लिये बहुत बड़ी उपलब्धि होती है जब वह अपनी सुदीर्घ रचना यात्रा के किसी भी पड़ाव पर स्वयं को सीमाओं से मुक्त पाता है। गजेन्द्र तिवारी के इस व्यंग्य संग्रह को पढ़ते हुए बार बार यह अनुभव होता है कि उनके पास अभी भी अनुभवगत विविधताओं की कोई कमी नहीं है। इस संग्रह की 'वायरस कैसे–कैसे ? फर्राटासिंह की टैक्सी, फॉरेन जा फॉरेन, अभिनंदन पत्र और अपुन को तो डुप्लीकेट लगता है। व्यंग्य का विषय सर्वथा नवीन है और कथ्य के अनुरूप भाषा में निरंतर परिवर्तन होता गया है।' वायरस कैसे–कैसे व्यंग्य में नगर निगम द्वारा नगर की सफाई के लिये सुपर कम्प्यूटर खरीदा जाता है लेकिन होता क्या है – सुपर कम्प्यूटर बिगड़ जाता है। सुधारने के लिये जो व्यक्ति आता है वह अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहता है – यह हिन्दुस्तान की नौकरशाही का डेडली वायरस है जिसका एंटीडोट (विषहर) मेरे पास तो क्या, गॉड आलमाइटी (सर्वशक्तिमान ईश्वर) के पास भी नहीं है। इसे भी गार्वेज डिस्पोजल कारपोरेशन यानी कचरा निपटान निगम में गार्वेज गोडाउन (कचरा गोदाम) में डंप कर दीजिए। इसी तरह 'फर्राटासिंह की टैक्सी' का कमाल देखिये। वह पैंतीस सवारियां बिठाने का कीर्तिमान स्थापित कर चुका है। वह बड़े गर्व के साथ इस अपूर्व कारणों का इन शब्दों में उल्लेख करता है –

'रिकार्ड में है जो पैंतीस सवारियाँ तो। अभी दो साल पहले की ही बात है आर.टी.ओ. साहब ने गाड़ी रोक ली बीच रास्ते में और कहा–' सवारियाँ उतारो, गिनती करेंगे। हमने उतार दी सवारियाँ पूरी पैंतीस थीं।

हमने पूछा फिर ? फिर तो उसने तगड़ा जुर्माना किया होगा। फर्राटासिंह हँस पड़ा – 'जुर्माना कहां जी, उसने तो हमें इनाम दिया। हुआ यह कि पैंतीस सवारियां गिनकर उसे तो पसीना आ गया। वह मानने को तैयार ही नहीं हुआ कि पैंतीस सवारियों को मैं उसी एक जीप में कैसे बैठाकर ले जा रहा था। साहब ने कहा कि फिर मेरे सामने इन सबको जीप में बैठाकर बता दो तुम्हारा जुर्म माफ। मैने वापस बैठाने के बाद कहा कि साहब अभी भी थोड़ी बहुत गुंजाइश है। अगर आप हुकुम दें। साहब ने अपने बोल नोचते हुए कहा 'जाओ बाबा जाओ ! ओह गॉड।''

'फॉरेन जा फॉरेन' भारतीय नेताओं और नौकरशाहों की विदेश यात्रा पर जाने की व्यग्रता पर व्यंग्य है। प्रत्येक नेता या नौकरशाह अवसर मिलते ही विदेश जाना चाहता है। चाहे विदेश यात्रा की कोई जरूरत हो या ना हो। विदेश प्रवास की दुर्गति देखिये – 'एक मंत्री अमरीका गए हैं गोबर के कंडे बनाने की आधुनिक टेक्नालॉजी सीखने। एक महाशय इंग्लैण्ड गए हैं यह देखने के बिजली के खम्बे कैसे गड़ाये जाते हैं एक झाड़ लगाना सीखने के लिये कनाड़ा गए हैं। धान का रोपा लगाने की विधि सीखने के लिये कृषि मंत्री फिलीपिन्स गए हैं। स्वदेशी का प्रोत्साहन कैसे दिया जाए इस विषय पर सलाह लेने के लिए मानव संसाधन मंत्रालय का एक उच्चधिकार प्राप्त प्रतिनिधि मंडल रूस गया है।'

'अपुन को तो डुपलीकेट लगता है' पुलिस के व्यवहार पर लिखा दिलचस्प व्यंग्य है। व्यंग्य तब और प्रभावशाली हो जाता है जब व्यंग्यकार गजेन्द्र तिवारी वक्रोक्ति का बढ़िया प्रयोग करते हैं – 'अभी अभी अखबार पढ़ रहा था एक खबर पर नजरें रूकी। पुलिसवालों के खिलाफ थी खबर। छपा था कि पुलिस वालों से पान दुकान और होटल वाले परेशान हैं क्योंकि पुलिसवाले चाय नाश्ता जमकर फटकार लेते हैं पर पैसे नहीं देते। यह खबर पढ़ कर हम तो शर्म से गड़ गए। ऐसे देश में अतिथि देवो भव जैसी उदात्त भावनाएं विद्यमान थीं उस देश में इस प्रकार के शिकवे। अगर तुम्हारे अतिथियों ने जलपान कर ही लिया तो क्या तुम अपने अतिथियों से उस का मूल्य मांगोगे। कुछ तो सोचो।'

गजेन्द्र तिवारी ने अपने व्यंग्य संग्रह 'अलादीन की ख्वाहिश' की भूमिका में लिखा था – व्यंग्यकार आत्मनियुक्त प्रहरी है। व्यंग्यकार की अंतर आत्मा उसे ऐसा चौकीदार बनाती है जो कुछ हानिकारक है, अस्वास्थ्यकर है, प्रदूषित है, जहरीला है, कुरूचिपूर्ण है, असांस्कृतिक है, अनैतिक है, अवैध है, खतरनाक है, उससे आगाह करना, उसके प्रति सावधान करना व्यंग्यकार का दायित्व है। 'श्रेष्ठ और प्रभावी व्यंग्यकार के रूप में गजेन्द्र तिवारी अपना दायित्व बहुत ठीक से जानते हैं और ठीक उस स्थान पर प्रहार करते हैं जहां प्रहार किया जाना बेहद जरूरी होता है। वे श्रेष्ठ अभिव्यक्ति के लिये भाषा के साथ खेलते हैं लेकिन यह पाठक को चमत्कृत करने या आकर्षित करने के लिये नहीं होता बल्कि यह व्यंग्य की मारक शक्ति की अभिवृद्धि के लिये होता है।'

***

पवन दीवान

बोधिवृक्ष की छाया में

त्रिभुवन पांडेय

प्रखर उद्वेग और शाँत चेतना के मध्य राग और विराग के दो ध्रुवों को स्पर्श करती हुई पवन दीवान की कविताओं में प्राणों की ऊष्मा भी है और जीवन के द्वंद से साक्षात्कार की कोशिश भी। अपने पहले संग्रह 'मेरा हर स्वर इसका पूजन' के बाद प्रकाशित दूसरा काव्य संग्रह 'अम्बर का आशीष' लगभग एक सौ सत्रह छोटी बड़ी कविताओं का संग्रह है। पहले संग्रह की समीक्षा के अंत में लिखा निष्कर्ष आगामी संग्रह की भूमिका के रूप में उद्धरित किये जाने योग्य है – 'पवन दीवान के काव्य संसार से गुजरना नए भाावबोध के समीप से गुजरना है। इन कविताओं शब्दों के परे एक अर्थपूर्ण संसार की उपस्थिति अपने संपूर्ण नवीन परिदृश्य के साथ उजागर होती है।'

कभी–कभी श्रेष्ठ कविताओं को पढ़ते हुए श्रेष्ठ काव्य मूल्य की ओर भी ध्यान चला जाता है। श्रेष्ठ कविता के संदर्भ में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है 'हम जब भी विश्व की जिस किसी वस्तु या व्यापार को भाव की दृष्टि से देखते हैं, इसे देखने में स्वतः प्रभेद हो जाता है। उस प्रभेद को व्यक्त करने के लिये जो भाषा सफल होती है वह कुछ कहती है और कुछ छिपाती है जिससे कुछ अर्थ होता है कुछ स्वर। इस भाषा को कुछ आड़ी करके, कुछ बांकी करके, उसके साथ रूपक मिलाकर, उसके अर्थ को उलट पुलट कर व्यक्त करना अनिवार्य है।' रामधारी सिंह दिनकर श्रेष्ठ कविता उसे मानते हैं जो अपने युग के संचित आख्यान होने के बदले वह संकेत में इस प्रकार बोलेगी मानो आगामी पीढ़ियों को कवि चिट्ठी नहीं तार भेज रहा है। कविता का क्षेत्र ज्यो–त्यों नवीन होता जाता है कवि त्यों–त्यों अधिक गहराई में उतरता जाता है और ज्यों–ज्यों वह गहराई में उतरता जाता है त्यों–त्यों यह बताने में वह अधिक असमर्थ होता

जाता है कि यह सत्य है और वह सत्य नहीं है।' ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करने के बाद अज्ञेय ने कहा था – 'आज का भारतीय भाषाओं का लेखक जिन कठिन और प्रतिकूल परिस्थितियों में साहित्य रचना करता है वैसी प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना किसी युग में किसी देश के साहित्यकार को नहीं करना पड़ा होगा। फिर भी वह अडिग निष्ठा से काम करता है, इसका श्रेय स्वयं उसकी संकल्प शक्ति को है उतना ही उन मनीषियों की दृष्टि को जिसने भारत के लोक मानस को न केवल गूँगा हो जाने से बचाया बल्कि उसके लिये आत्म प्रकाशन का एक पुनः संस्कृत, तेज पूत माध्यम भी प्रस्तुत किया।'

नदियों के किनारे विश्व की संस्कृति विकसित हुई। भारत की संस्कृति भी। नदियों के नाम केवल संबोधन भर नहीं है उसके साथ मनुष्य की जिंदगी के विकास और आस्था की महागाथा भी जुड़ी है। पवन दीवान की कविताओं का विकास भी संस्कृति के प्रवक्ता के रूप में नदी के किनारे हुई। उनकी कविताओं में महानदी का विस्तार पैरी के लहरों का संगीत और सोंढूर के वनांचल यात्रा की स्मृति है।

बहती नदियाँ बीती सदियाँ
धुलती माटी सूनी घाटी
जंगल जंगल कैसा मंगल
पर्वत पर्वत जीवन शाश्वत

संस्कृति और प्रकृति के बाद याद आती उस किसान की जो कवि को उत्प्रेरित करता है कि वह एक बार उसके खेतों में आये, उसके माल पर अंकित स्वेद की बूंदों को देखे और फिर अपने गीतों में व्यक्त करें –

मेड़े खुली चली पुरवाई धान झरे चरणों पर
पेड़ों से गिर रहा पसीना श्रम के आभरणों पर
खेती से खलिहानों तक है पके हुए सपने
धाम भरे यह चेहरे कितने लगते हैं अपने

संस्कृति सामंजस्य की ओर ले जाती है तो कविता द्वंद्व की ओर। द्वंद्व को समझने का अर्थ है जीवन के सामंजस्य को उपलब्ध करना।

पवन दीवान विभाजित होते हुए मनुष्य और उसे विभाजित करने वाली शक्तियों की ओर जब देखते हैं तब उनकी काव्य चिंता इस संदर्भ के साथ व्यक्त होती है

मजहब के नाम पर तुम कितने अलग–अलग
भाषा के नाम पर तुम कितने अलग–अलग
दोनों के नाम पर तुम कितने अलग–अलग
किस किस के नाम पर तुम कितने अलग–अलग
कवि की चिंता तब और व्यापक हो जाती है जब वह
भविष्य के सामने उपस्थित संकट
और अपने काव्य सामर्थ्य को देखता है
अभी ठिठुरता है भविष्य के तेज व्यास तक
आँखों की बरसात बड़ी लम्बी होती है
थकते हुए जहाज और पानी ही पानी
तूफानों की रात बड़ी लम्बी होती है

इस बीच जिंदगी के स्वायत्व होने के सभी प्रयत्न किस तरह निष्फल हो रहे हैं और किस तरह मनुष्य 'व्यक्ति' से 'वस्तु' और संबोधन से सामग्री के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है इसे अनुभव करते हुए कवि की संवेदना कितनी तीव्रता से उपस्थिति को व्यक्त करने के लिए व्यग्र हो उठती है

ये खदानों के लिये खाई बने चेहरे
ये मकानो के लिये पत्थर बने चेहरे
ये शहर के वास्ते पिघले हुए डामर
मंदिरों के मौन शिल्पी युगों के पामर

गाँव के जीवन, परिवेश और जीवन संघर्ष को बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त करती कई कविताएं उस संग्रह में है। टूटती दीवार और जर्जर होते दरवाजें, खंडित होते स्वप्न के बीच –

शहर के पास एक गाँव

जैसे सागर में अकेली नाव
मॉझी डूब गया लहरों में
वापस आया नहीं
शायद आया नहीं
शायद निगल गया हो
कोई महामगर (महानगर)
टूटी फूटी झुग्गी के
चिथड़े–चिथड़े घूंघट नीचे
बैठी शाम उदास

गाँव की दोपहरी का यह चित्रण 'बिहारी' की कविता की याद दिला देता है।

***

विनोद कुमार शुक्ल
काव्य -अनुभवों से साक्षात्कार

त्रिभुवन पांडेय

विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं को पढ़ते हुए दो तरह की रचना प्रक्रिया से साक्षात्कार होता है। पहली अस्पष्ट और अमूर्त, दूसरी पारदर्शी और सूरज की रोशनी की तरह चमकदार, स्पष्टता और साफगोई से सरोकार रखने वाली रचना प्रक्रिया। विनोद कुमार शुक्ल की रचना प्रक्रिया के इस विरोधाभास को किसी कवि की सीमा और संभावना दोनों ही मान सकते हैं। कमोवेश आज की कविता पर भी इस निष्पत्ति को यदि चस्पा कर दें तो समकालीन कवियों की रचना प्रक्रिया स्पष्ट हो जाती है। ऐसी कविताएं जो जिंदगी और उसकी संश्लिष्ट स्थितियों को साफगोई के साथ सामने रखती है और दूसरी ऐसी कविताएं जो जिंदगी की व्याख्या करते हुए स्वयं अव्याख्येय बन जाती है। संभव है इस अमूर्त, अस्पष्ट, उलझी हुई अभिव्यक्ति को भविष्य की कविता कहकर संतोष कर लें (आखिर ऐसा कहने का आधार भी तो स्पष्ट हो) मगर आज इस अभिव्यक्ति के साथ पाठक के जूड़ने की संभावना बहुत क्षीण हो जाती है।

आश्चर्य की बात यह भी है कि एक ही कवि की रचना प्रक्रिया इस कदर विरोधाभासी क्यों है ? एक तरफ किसी भाषिक चमत्कार या रूपगत जटिलता या अमूर्त और उलझे हुए बिम्बों के बगैर जीवन के किसी भी सघन संलिष्ट और मार्मिक क्षण को कविता में रूपांतरित कर देना और दूसरी तरफ छोटे छोटे जीवन यथार्थ या अनुभव खंडों को इस कदर वायवीय, अस्पष्ट और अमूर्त बना देना कि पूरे प्रयास के बाद भी कथ्य पकड़ में न आये। आये भी तो आंशिक रूप में मगर इस विश्वास के अभाव के साथ कि जो अर्थ हमारी पकड़ में है वही अभीष्ट अर्थ कवि का भी है और उसे दूसरों ने भी उसी तरह अनुभव किया है।

इस संदर्भ में यह प्रश्न भी विचारणीय है कि क्या कविता की जटिलता की तरह सचमुच हमारी अपनी जिंदगी भी उतनी ही जटिल बन चुकी है। क्या समकालीन स्थितियां इतनी अमूर्त और एक दूसरे के भीतर उलझी हुई है कि उसे साफतौर पर कह पाना कवियों के लिये मुश्किल हो गया है। क्या देश की विकटतर समस्याएं जो साफतौर पर सामने हैं कवियों के लिये महत्वहीन हो चुकी है ? या इसके विपरीत जीवन के बदलने की प्रक्रिया ही इतनी जड़ हो चुकी है कि उस जड़ता से हताश होकर कवि अपना ही एक ऐसा शब्द संसार बुन रहे हैं जो रहस्य पूर्ण तिलस्म की तरह मायावी है, जिसके भीतर प्रविष्ट होने अदृश्य दरवाजे कवि को ही विदित है। पाठक उस तिलस्मी संसार के बाहर विस्मय और आतंक में डूबा हतप्रभ खड़े हुए हैं।

प्रश्न यह भी है कि कविता से किस तरह के दायित्व निर्वाह को अपेक्षा पाठक रखते हैं। या तो कविता पाठक के अनुभव संसार को समृद्ध करती है उसे सश्लिष्ट जीवन स्थितियों को समझने का अवसर देती है उसे संघर्ष के लिये उत्प्रेरित करती है या उसे संवेदना के धरातल पर वृहत्तर मानवीय प्रश्नों के साथ जुड़ने का मौका देती है। कविता को पारम्परिक सौन्दर्य मूलक रूमानी अवधारणा तो पहले ही रद्द हो चुकी है। कविता की स्वीकृत अवधारणा तो उसे वैचारिक पक्ष पर ही जोर देती है। अगर इस स्वीकृत अवधारण के अनुसार कविता विचारों को उत्प्रेरित करने में सफल होती है तो उसे कविता की सार्थक भूमिका स्वीकार करने में किसी को क्या असुविधा हो सकती है लेकिन यदि कविता विचारों को संप्रेषित करने में भी असमर्थ हो जाय या वैचारिक निष्पत्तियों को इस तरह प्रकट करें कि उन निष्पत्तियों तक आसानी से कोई पहुंच ही न सके तो कविता यदि स्वयं किसी बात को संप्रेषित नहीं कर सकती तो संप्रेषण के शेष सभी सहयोग माध्यम भी कविता का अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकते।

विनोद कुमार शुक्ल जब फेंटेसी और बौद्धिकता के आत्मकेन्द्रित संसार से बाहर निकलकर स्थितियों और विदुपताओं को सहज और मानवीय सरोकारों के साथ देखते हैं तब उनकी कविता

वृहत्तर मानवीय करूणा के साथ जुड़कर उस स्थिति से साक्षात्कार कराती है जिस स्थिति का अहसास सबके भीतर कहीं न कहीं आग की तरह प्रज्ज्वलित है –

मैं दीवाल के ऊपर
बैठा
थका हुआ भूखा हूँ
और पास ही एक कौंआ है
जिसकी चोंच में
रोटी का टुकड़ा
उसका ही हिस्सा
छीना हुआ है
सोचता हूँ
कि हाय !
न मैं कौंआ हूँ । न मेरी चोंच है –
आखिर किस नाक नक्शे का आदमी हूँ
जो अपना हिस्सा छीन नहीं पाता ।
मानवीय चिंता का यह क्रम अनेकों बार साफतौर पर
विनोद शुक्ल की
कविताओं में उभर कर आया है ।
मैदान इधर–उधर
अपने लम्बे चौड़े फैलाव में दूर तक चारों तरफ से
इंतजार करता हुआ
बढ़ई, कारीगर, मिस्त्री
रेजा–कुली का, घर होने के लिए ।

पांच साल की सबसे छोटी लड़की 'शीर्षक कविता भी अप्रत्याशित रूप से शुरू होती है मगर कविता समाप्त होने के पूर्व अचानक सतर्क और वृहत्तर मानवीय नियति का हिस्सेदार बन जाती है –'

मैने कहा कि मतलब है
पल स्तर घर का नहीं

प्रांत का झरता है
झंझट अपने रसोई घर में ही नहीं
चूल्हे सबके हैं।

इधर देश में पूंजीवादी ताकतें जिस तरह बढ़ी है और अपने मुनाफे के लिये जिस तरह उन्होंने देश का शोषण किया है। एक आदमी की चरबी के नीचे हजारों कंगालों की अस्थि परत दर परत बिछती हुई, एक घर की विलास सामग्री के लिये हजारों हजार घर उजड़ते हुए –

रोज रात को दो बजे
दो सोने की गिन्नियाँ देकर
दो जलेबियां खाने आता है
बड़ा सिरफिरा
पहुंचा हुआ पीर
छः साल जिसकी मजार
एक बीता बढ़ जाती है
और शहर अपने अंदर
एक बीता कम हो जाता है

इसी क्रम में मनुष्य और पशु के स्वभाव का विश्लेषण करते हुए जब कवि की दृष्टि मनुष्य के शोषक, रक्तलोलुप और हिंसक प्रवृत्ति पर पड़ती है तब जैसे मनुष्य होने की पहचान ही गायब हो जाती है–

पेट भरे रहने पर
खाता रहता
भूख खत्म होने पर भूखा
जमाखोर जानवर
भयानक सबसे
आमदखोर शेर भी जबकि
हमला करने की नहीं सोचता

अनिवार्य आवश्यकताओं और अप्रत्याशित विवशता का शिकार व्यक्ति आर्थिक प्रलोभन में फंस जाये तो अस्वाभाविक

बात नहीं मगर जो अपनी विलासी प्रवृत्ति को बुभुक्षा शांत करने के लिये । बड़ी बड़ी कोठियों की भव्य सज्जा के लिये, आयातीत कारों के लिये, स्कांच और शेम्पेन के लिये गरीबों का खून चूसे उसे जंगली जानवर से भी ज्यादा खूंखार कहा जाये तो इसमें अनौचित्य क्या है क्योंकि आदमखोर शेर की भी अपनी एक नैतिकता होती है कि जब तक भूखा न हो शिकार पर हमला नहीं करता । ''रायपुर बिलासपुर संभाग'' इस संग्रह की आखिरी कविता है जिसमें सूखे की मार से परेशान, फटेहाल, अधनंगे भूखे लोग रोजगार की खोज में कहीं भी चल पड़ने के लिये एकत्रित होते हैं। स्टेशन पर इस भीड़ को देखकर विनोद कुमार शुक्ल ने जो मानवीय ट्रेजिडी का दृश्यांकन किया है वह किसी मार्मिक तस्वीर से कम नहीं है। इस चित्रण में कहीं बौद्धिक तर्क वितर्क या दार्शनिक मूड व्यवधान उपस्थित नहीं करता । ट्रेन में बैठते हुए कितने निरीह, कितने दबे और सिमटे हुए
डर उसमें भी ज्यादा है

अलग अलग बैठने की बिल्कुल नहीं हिम्मत
घुस जायेंगे डिब्बों में
खाली होगी बेंच
यदि पूरा डिब्बा तब भी
खड़े रहेंगे चिपके कोनों में
या उखरू बैठ जायेंगे।
थके नीचे
डिब्बे की जमीन पर।

धीरे-धीरे छत्तीसगढ़ के अभिशप्त बेटों का यह काफिला असम के चाय बगान, आजमगढ़, कलकत्ता, कनाल चण्डीगढ़ और कलकत्ता की ओर चल पड़ता है । वहां पहुंचकर उन्हें अपनी जमीन की सोंधी खुशबू अपने आँगन के पेड़ पौधे, छप्पर का सफेद रखिया, लालभाजी, खेड़ा और करेले की लतर याद आने लगते हैं। सूखे से परेशान लोगों के प्रति व्यवस्था की उदारता भी कितनी विद[illegible] चुभनेवाली है –

समय गुजर जाता है
जैसे सरकारी वसूली के लिये साहब दौरे पर
फिलहाल सूखा है
इसलिए वसूली स्थगित
पिटते हुए आदमी के बेहोश होने पर
जैसे पीटना स्थगित।

और इस कविता के समापन अंश पर पहुंचते पहुंचते विनोद शुक्ल जैसे पूरी शक्ति के साथ चीख पड़ते हैं। ऐसा लगता है जेसे अकेला एक कवि कंठ नहीं हजारों–हजार, लाखों लाख लोगों की समवेत व्याकुल आवाज अपनी पूरी शक्ति के साथ सम्पूर्ण देश में प्रतिध्वनित हो रही है –

अरे। रोक दो मत जाने दो
मजबूर विस्थापित मजदूरों को
कहां गया लाल झंडा। लाल बत्ती। गाड़ी रोकने की
आ क्यों नहीं जाता सामने सूर्योदय लाल सिंगनल सा
खींच दे उनमें से ही कोई जंजीर खतरे की
या पहुंचे कोई इंजन तक
कर ले कब्जा गाड़ी के आगे बढ़ने पर
पलटा दे दिशा गाड़ी की
कूदे सब खिड़की दरवाजे से डिब्बे की तरफ
लौटे लेकर फैसले का विचार लश्कर
छोड़ दे पीछे मोह कवरे की गृहस्थी का
टट्टा कमल बासी की बटकी हंडी की
पर भूल न जाये ढिबरी कदिल
जरूरत अंधेरे में रास्ता ठीक देखने की

दरअसल, यह कविता अपने शब्द सीमांत को लांघकर व्यापक होती जाती है। इतनी व्यापक कि भविष्य की सम्पूर्ण उद्दीप्त चेतना को ही जैसे प्रतिभाषित करने लगती है। लगता है कविता समाप्त नहीं हो रही है, एक लम्बे संघर्ष भरे रास्ते पर चल पड़ने के लिये तैयार हो रही है। अगर आज के उत्पीड़ित और असहाय आदमी

से कविता का मामूली सा भी सरोकार है तो निश्चित रूप से वह कविता इस संकलन के आखिरी पन्नों में मौजूद है।

इन कविताओं के संदर्भ में यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह कविता इतनी धूसर, शांत, सादी और कविता के लटकों से अलग है कि कविता ही नहीं लगती। न यह प्रति कविता है और न ही आज की कविता का प्रतिपक्ष है। प्रथम आवरण पर विनोद कुमार शुक्ल की कविता के संदर्भ में जो परिचयात्मक – टिप्पणी है उस टिप्पणी का इन कविताओं की संघर्षशील चेतना और अपने समकालीन जीवन की विद्रुपता को देखने–समझने की क्षमता से कोई अंत संबंध नहीं है। क्या यह टिप्पणी निरर्थक है। इस प्रश्न के उत्तर के पूर्व रचनाप्रक्रिया के उस विरोधाभास का पुनर्उल्लेख जरूरी है। जिसकी चर्चा प्रारंभ में कुछ प्रश्नों के साथ उल्लेखित है।

इस कविता संग्रह में अनेक ऐसी कविताएं है जो स्थितियों को न केवल अमूर्त रूप में प्रस्तुत करती है बल्कि एक ऐसे अपरिचित संसार की रचना करती है जिसे समझने के सभी प्रारंभिक उपक्रमनिरर्थक होते जाते हैं। हो सकता है कवि स्वयं किसी बहुत उलझी हुई स्थिति की गहराई तक जाना चाहता हो मगर उसकी यह यात्रा बेहद निजी और अपनी ही व्याकुल उत्कण्ठा तक सीमित्त है। हो सकता है संग्रह की ऐसी ही कविताओं का संबंध आवरण पर लिखी टिप्पणी से हो। इस संग्रह को पहली ही कविता में कितनी उलझी हुई बातें कही गई है –

पेड़ का धब्बा बिल्कुल पेड़ की तरह था
दाहिने रद्दी नस्ल के घोड़े का धब्बा
रद्दी नस्ल के घोड़े की तरह था
घोड़ा भूखाथा तो

उसके लिए कुहरा हवा में घास की तरह उगा था। संग्रह की दूसरी कविता की प्रारंभिक प्रक्रिया भी चमत्कारिक रूप में शुरू होती है और अंत तक आश्चर्यजनक मुद्रा का परित्याग नहीं करती

बतख के झुंड बहुत थे
आदमियों की तरह

बतख का झुंड
बतख की तरह था
बतख की तरह चोंच और पंख थे ।
ऐसे ही अमूर्त संसार या फेंटेसी का परिदृश्य खड़ा करने
के क्रम में एक और कवितांश –
बिस्तर भूल गया था
दाढ़ी बनाने का सामान था
बिस्तर भूल जाने से अपने ही कमरे में
रात को चहलकदमी करता हुआ मैं
खानाबदोश हो गया था

तथा ऐसी ही अनेक कविताएं जीवन के अनुभव खंड को इस रूप में प्रस्तुत करती है कि कवि के उपलब्ध जीवन अनुभवों तक पाठकों को आसानी से पहुंचने नहीं देती । तब यह सोचने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि एक ओर विनोद कुमार शुक्ल की कविताएं बिना किसी अतिरिक्त नाटकीय मुद्रा ओढ़े, आडम्बर हीन शिल्प के साथ, बेहद साफगोई के साथ प्रस्तुत होती है जबकि दूसरी ओर ऐसी भी कविताएं हैं । जिनकी दुरूह मुद्रा काफी जूझने के बाद भी आद्यान्त पकड़ में नहीं आती ।

"वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह" की कविताओं के संदर्भ में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विनोद कुमार शुक्ल के पास संश्लिष्ट जीवन स्थितियों को व्यक्त करने के लिये समर्थ दृष्टि है, नवीन भाषिक संसार है जिसके बगैर अधुनातन विसंगति संप्रेषित ही नहीं हो पाती, मानवीय करूणा से गहरा लगाव है, भविष्य के दरवाजे पर दस्तक देते हुए मेहनतकश हाथों की अनुगूंज को सुनने की क्षमता इस क्षमता का उपयोग वे कितनी तल्लीनता के साथ करते हैं यह उनकी काव्य यात्रा के अगले किसी सोपान पर ही विदित हो सकेगा । बहरहाल अगले पड़ाव के पहले यह बीज मंत्र ही पाथेय बने ।
'जल्दी ऐसी कि –

खुशबू बौर की पहले आई
अमराई बाद में होने के लिए
साथियों की खबर पहले आई
बाद में साथी पहुंचने के लिए
अच्छे भविष्य का विश्वास पहले
अच्छा भविष्य बाद में होने के लिए
काम करने की शुरूआत पहले
काम खत्म करने के लिए।'

***

रवि श्रीवास्तव

पहाड़ पर चढ़ते पाँव और ज्यादा सुदृढ़ हुए

त्रिभुवन पांडेय

मुझे तो होश नहीं, आप मशवरा दीजे
कहाँ से छेड़ूं फसाना, कहाँ तमाम करूं

भाई परदेशी राम वर्मा के आत्मीय व्यक्तित्व चित्रण की अपनी विशेषता है। 'अपने लोग' खंड दो में 'रवि श्रीवास्तव पर लिखते हुए उन्होंने यह पंक्तियां इस असमंजस में लिखी कि रवि श्रीवास्तव जैसे बहुआयामी व्यक्ति पर लिखने के लिये सचमुच यह सोचना पड़ता है। कि कहानी कहाँ से शुरू करें और कहां इस कहानी का समापन करें।' उनकी पंक्तियों को पढ़ते हुए मुझे लग रहा था रवि श्रीवास्तव को आसानी से किसी फ्रेम में फिट नहीं किया जा सकता। ज्यादा से ज्यादा उनका एक ऐसा स्केच बनाया जा सकता है जो रवि श्रीवास्तव होने का आभास दे। अपने में मुक्त लोग ही भीतर गहरे में जड़ों की तरह दृष्टि से इतने ओझल होते हैं कि उनको ठीक-ठीक जान पाना काफी कठिन काम होता है।

राजिम के पास एक छोटे से गाँव कोमा में रवि श्रीवास्तव का जन्म हुआ। एकांत श्रीवास्तव, मांझी अनंत व पथिक तारक से लेकर रवि श्रीवास्तव तक नयी कविता की एक प्रखर पंक्ति को दीप्तिवान बनाने वाले इस गाँव को देखने की उत्कृष्ट इच्छा मन में बनी हुई है। डाँ मांझी अनंत जो आजकल धमतरी में है और जिनकी किताब 'खिलेगा तो देखेंगे' काफी चर्चित हुई जब कभी मिलते हैं मैं उनसे कोमा चलने का आग्रह करता हूँ। रवि श्रीवास्तव हो या एकांत, मांझी अनंत हो या पथिक तारक इस गांव की आबोहवा उनके भीतर रच बस गई है। उनकी कविताओं में जो सादगी, प्रकृति के प्रति जो अनन्य स्नेह, ग्राम्य जीवन और संस्कृति के प्रति जो आत्मीयता है वह कहीं न कहीं कोमा के परिवेश का प्रभाव है।

रवि श्रीवास्तव से मेरी मुलाकात ठीक ठीक कब हुई यह बताना बहुत मुश्किल है लगता है जैसे जन्म जन्मांतर के संबंध है। कम से कम चार दशक एक दूसरे के साथ पत्र व्यवहार करते, बैठकों में मिलते, कवि सम्मेलनों में काव्य पाठ करते, जीप और रेल में सफर करते, योजना बनाते, ठहाके लगाते, गोष्ठियों में बहसें करते बीत गये। इसके बाद भी रवि भाई जब कभी मिलते हैं ऐसे गले लगकर मिलते हैं जैसे किसी अजनबी से पहली बार मिल रहे हों। यही कारण है कि हर बार रवि से मिलते हुए लगता है हम एक नये व्यक्ति से मिल रहे हैं। एक ऐसा व्यक्ति जिससे काफी कुछ कहा जा सकता है। आजकल ऐसे लोग संख्या में कम ही रह गये हैं। एक बने बनाये अपने में पूर्ण, अपने में मुग्ध व्यक्ति से मिलना और एक निर्मित होते, संवाद के लिये उत्सुक, दूसरों को जानने समझने के लिये व्यग्र व्यक्ति से मिलने में बड़ा अंतर होता है। रवि श्रीवास्तव से आप लगातार बातचीत कर सकते हैं।

पिछले दिनों 'अतिथि लेखक योजना' के अंतर्गत जब भिलाई दुर्ग गया तो रवि भाई की प्रसन्नता देखते ही बनती थी। पहले दिन के कार्यक्रम के बाद जब रवि भाई के घर पहुंचा तब भोजन की तैयारी चल रही थीं। भाभी जी भीतर अतिथि सत्कार की तैयारी में व्यस्त थीं। बाहर रवि भाई विभिन्न स्थानों में खींचे गये फोटोग्राफ दिखला रहे थे। साथ-साथ यात्रावृतांत सुनाते हुए वे दिलचस्प घटनाओं से भी अवगत करा रहे थे। बसंत देशमुख, अशोक सिंघई के साथ जाने कितनी बातचीत हुई। कुछ जरूरी आयोजनों की रूपरेखा पर चर्चा हुए। इस बीच तीन बार भोजन के लिये आग्रह किया जा चुका था। आख़िर बातचीत को 'ब्रेक के बाद' के लिये विराम देकर हम सब भोजन कक्ष के भीतर पहुंचें। खाना खाने के बाद वे होटल तक छोड़ने आये।

दूसरे दिन और तीसरे दिन के कार्यक्रमों के वे संचालक थे। वे मित्रों की जमकर प्रशंसा करते हैं पता नहीं कहां-कहां से खोजकर छोटी-बड़ी विशेषताओं को वे इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि उनके परिचय के बाद सहमा और सिमटा हुआ व्यक्ति भी नामवर सिंह की तरह दावे के साथ धाराप्रवाह अपनी बात कहने लगता है। परदेशी

राम वर्मा की शैली में कहूं तो रामचरितमानस की दो पंक्तियां रवि भाई के लिये उद्धरित की जा सकती है –

मूक होहिं वाचालु, पंगु चढ़हि गिरिवर गहन
जासु कृपा सो दयालु, हरहिं सकल कलि मलदहन

रवि श्रीवास्तव की सृजन यात्रा सातवें दशक में प्रारंभ हुई और देखते ही देखते वे छत्तीसगढ़ के प्रतिनिधि रचनाकारों में सम्मिलित हो गये। पवन दीवान, कृष्णारंजन, पुरूषोत्तम अनासक्त, लक्ष्मण मस्तूरिहा राजिम के बहुचर्चित रचनाकारों के साथ रवि श्रीवास्तव का नाम भी चारों ओर चर्चित हुआ। कवि सम्मेलन के जरिये उन्हें जो लोकप्रियता मिली वह उनकी विशिष्ट शैली, उनकी लोकप्रिय कविताओं और उनके प्रभावी व्यक्तित्व के कारण संभव हुई। भगवत रावत ने उनकी इस उपलब्धि के विषय में लिखा है – 'वे जनता के बीच जानेवाले उन लोकप्रिय कवियों में से है जिन्होंने अपनी कविता को लोकप्रियता पर न्योछावर होने से बचाया है। 'वे आज भी कवि सम्मेलन में 'नयी कविता' सुनाते हैं। उन्हें सुनते हुए उन कवियों की याद आने लगती है जो मंच में लोकप्रिय होते हुए साहित्य की सृजनशील रचनात्मक परम्परा काभी सचेत रूप में निर्वाह करते रहे।

'पहाड़ पर चढ़ते पाँव' काव्य संग्रह सन् 1996 में प्रकाशित हुआ। एक व्यंग्य संग्रह प्रकाशनाधीन है। कितनी ही महत्वपूर्ण पत्रिकाओं के वे सम्पादकीय सहयोगी रहे। वे अनेक महत्वपूर्ण संस्थाओं के पदाधिकारी हैं। भिलाई इस्पात संयंत्र में शिक्षा अधिकारी हैं। भिलाई का विराट व्यक्तित्व, उसका फौलादी रूप, आग का विभिन्न रूपों में बहता दरिया एक साथ रवि श्रीवास्तव की कविताओं में मौजूद दिखलाई पड़ता है।

अच्छा ही हुआ
अपनी बिरादरी के संघर्ष को
अँधी घाटी के उस पार का
सूरज दिखाते हुए
तुम कारखाने के होकर रह गये

संघर्ष का यह सिलसिला जन्म जन्मांतर है। वह किसी एक

पीढ़ी तक सीमित नहीं है। इसलिये संघर्ष को जारी रखने का दायित्व आने वाली पीढ़ी को सौंपते हुए कवि उम्मीद करता है कि कविता आज नहीं तो कल सामाजिक क्रांति का विस्फोट करेगी –

मैं आग लगाने की
पूरी जिम्मेदारी
उसे और उसकी पीढ़ी को
सौंप कर चला जाऊंगा
एक दिन वह स्वयं जान लेगा
कविता भी विस्फोट करती है

रवि श्रीवास्तव सजग कवि है इसलिये वे समकालीन मनुष्य के आत्मगौरव को छीनने की कोशिश में लगे लोगों का दिन रात पीछा करते हैं। वे अपनी कविताओं में उन्हें उद्धरित करते हैं। उनके बहुरूपिये चेहरे का चित्रण करते हैं। उसे विश्वास है कि उसके साथ हजारों आँखे वास्तविकता को देख रही है, स्थिति का आकलन कर रही हैं,

अब तो दीवारों की दरारों में
आँखे ही आँखे हैं
सब कुछ देखने को आतुर
और
उनके पीछे है लाँघने वालों की
पूरी जमात
जो दरारों से होकर नहीं
दीवारों को पार करने का
साहस और विश्वास जुटाकर बैठी है

आस्था और श्रेष्ठ अभिव्यक्ति की उम्र साठ बरस की हुई। पहाड़ पर चढ़ते पाँव और ज्यादा सुदृढ़ हुए हैं।

***

समकालीन जीवन की गहरी और प्रमाणिक पहचान 'नौकर की कमीज'

त्रिभुवन पांडेय

1. प्रमाणिक लेखन जो किसी भी सार्थक कृति की अनिवार्य पहचान है, कृतिकार के अपने निजी अनुभवों का ऐसा रूपान्तरण है जिसमें पारदर्शी शीशे की तरह जिंदगी स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। ऐसी कृतियां की न कोई तिलस्मी बनावट होती है, न कोई नक्काशीदार अभिव्यंजना की सजावट, न कोई भावुक प्रलाप होती है रूमानी प्रसंगों, अतिवादी नाटकीय स्थितियों और मोहक कटाक्षों के बिना भी इन कृतियों की शक्ति कहीं कम नहीं होती ''नौकर की कमीज'' को पढ़ते हुए सुखद आश्चर्य होता है कि उपन्यासकार विनोद कुमार शुक्ल ने जीवन के उन अनुभव क्षणों, और प्रसंगों को रेखांकित किया है जो सामान्य रूप में महत्वहीन मालूम पड़ते हैं। रोज-रोज इन्हें देखते हुए आंखे इतनी अभ्यस्त हो जाती है कि इनमें कोई उत्प्रेरणा नहीं रह जाती। मध्यवर्ग से लिया गया हर जीवन चित्र हमारी अपनी जिंदगी के अलबम से ही लिया गया है। दफ्तर का बाबू हो या साहब का नौकर, हरिजन मोहल्ला हो या सदर बाजार, मूंगफल्ली बेचने वाला हो या सब्जी, रोजी पर बिकने वाला मजदूरों का समूह हो या सुबह-सुबह घूमने के लिए निकला हवा रिटायर्ड अफसर या व्यापारियों का समूह, सभी दृश्य किसी मूवी केमरे से लिए गए चित्र की तरह हमारे सामने से गुजरते हैं। तब लगता है विनोद कुमार शुक्ल हमसे पृथक नहीं है, वह हमारे ही अनुभव संसार का एक हिस्सा है।

उपन्यासकार की सचेत दृष्टि जिंदगी के जिस हिस्से पर पड़ती है वही हिस्सा 'क्लोज अप' में लिए गए चित्र की तरह अपनी पूरी सूक्ष्मता के साथ सामने आता है। जिंदगी के चेहरे पर उभरे हुए छोटे-छोटे धब्बे जो सामान्य रूप से देखने पर उतने बुरे नजर नहीं

आते, इस सचेत दृष्टि के समक्ष आकर इतने विराट हो जाते हैं कि हर धब्बा चेहरे को निगलता हुआ दिखलाई पड़ता है। उपन्यासकार जब सन्तु बाबू के माध्यम से यह आत्मावलोकन प्रस्तुत करता है – अन्दाज से ही नहीं, होशियारी और चालाकी से भी दुनिया चलती हे जिसमें गल्तियों की संभावना कम होती है। इसमें खुद का नुकसान कम, दूसरों का नुकसान अधिक होता है। हम लोगों की सारी तकलीफ उन लोगों की होशियारी और चालाकी के कारण थी जो बहुत मजे में थे और जिनसे हमारा परिचय नहीं था।'' तब यह विश्वास दृढ़ हो जाता कि उपन्यास की नींव इस रूप से रखी जा रही है जिस पर जिंदगी अपनी समग्रता के साथ ईंट दर ईंट साकार हो जाये। तब यह भी लगता है कि इस उपन्यास को पढ़ना एक नये रास्ते से गुजरने के सदृश्य है जो हर मोड़ पर अछूते परिदृश्यों और नए सन्दर्भों से साक्षात्कार करता है। ऐसे सन्दर्भ जिसे हम और आप जानते तो हैं लेकिन यह जानकारी इतने अचेतन में रहती है कि जब तक कोई उससे साक्षात्कार न कराये हम अनभिज्ञ ही रह जाते हैं। जिस तरह तेज हवा कांच पर चढ़ी धूल की परत पीछे कर इस लायक बना देती है कि हम आर–पार देखने में समर्थ हो जाये। ''नौकर की कमीज'' में यही कोशिश है। सन्तु बाबू कोई तीसमार खां, आदर्शवादी, क्रांति धर्मी, क्षण भर में संसार को उलट–पुलट देने वाला महत्वकांक्षी व्यक्ति नहीं है। वे अपनी सीमाओं को अच्छी तरह जानते हैं। मध्यमवर्गीय परिवार में जीते हुए तथा अपने छोटे–छोटे सुख दुख के लिए संघर्ष करते हुए वे कभी झोपड़ पट्टी की ओर झांक कर देख लेते हैं जहां जिंदगी इतनी बदसूरत नजर आती है कि देखने के लिए साहस जुटाना पड़ता है। कभी उनकी दृष्टि डॉक्टर परिवार से होती हुई मुख्य बाजार पर कब्जा जमाए बैठे हुए सम्पन्न वर्ग तक चली जाती है जहां किसी तरह का कोई अभाव नहीं है। कभी वे अपनी तिलछटी हुई जिंदगी की ओर देख लेते हैं जहां बीबी के पास एक अच्छी साड़ी तक नहीं है और दाल सब्जी तक बेहद किफायत के साथ उपलब्ध है। वह बारिश से बचने के लिए मकान मालिक इसे कोई महत्वपूर्ण समस्या मानने के लिए तैयार नहीं है। इस जिंदगी से निकलने के सभी रास्ते बंद है। इस तरह की जिंदगी जीने वालों ने वेद मंत्र की तरह वह निष्कर्ष चुन लिया है –

अधिक लालच नहीं करना चाहिए कि जो हालत तुम्हारी है उससे खराब न हो। इससे तुम्हारे जीवन में शांति रहेगी। तुम्हें अपने काम को ठीक करना है। दुनिया का काम अपने आप ठीक चलता है। जैसा चल रहा है चलने दो। उतनी ही आग और लकड़ी इकट्ठी करो जितनी खाना बनाने के लिए जरूरत है। दुनिया में आग लगाने की माचिस सात समुद्र के नीचे है। और वह भीगकर सैकड़ों वर्ष पहले खराब हो चुकी है। वहां कोई नहीं पहुंच सकता। दुनिया को कोई नहीं बदल सकता। अगर तुम अकेले बदल जाओगे तो बुरी मौत मरोगे।'' इसे पढ़ते हुए लगता है एक पूरी पीढ़ी का शोक गीत हम पढ़ रहे हैं। एक ऐसा गीत जिसे सदियों से प्रार्थना के मंत्रों की तरह दोहराया जा रहा है।

आर्थिक आघातों से उत्पन्न हताशा के उठती आग और तनाव के बीच जीते हुए लोग धीरे–धीरे सम्पूर्ण असह्य परिस्थितियों से समझौता कर लेते हैं और कोल्हू के बैल की तरह जिंदगी के वृत्त के भीतर चक्कर काटते रहते हैं। संघर्ष की शुरूवात जिस अहसास से होती हे उस पर नियतिवाद हावी हो जाता है। एक बारगी कोई गर्दन काटने कोई नहीं आता। पीढ़ियों से गर्दन धीरे–धीरे कटती है इसलिए खास तकलीफ नहीं होती और गरीबी पैदाइशी रहती है। गर्दन को हिलाए सब लोग अपना काम जारी रखते हैं। यानी गर्दन कटवाने का काम ''यह शोषण का भी मानवीय ढंग है। जान ली मगर होठों पर मुस्कुराहट नाचती रहे। करोड़ों रूपये अवैध धन्धे से पैदा करें मगर माथे पर कोई शिकन न हो। आदमी मरे मगर रिस रिसकर दाने–दाने के लिए मोहताज होकर, इस प्रक्रिया में क्रांतिधर्मी चेतना भी एक दिन चुपचाप दम तोड़ देती है। सन्तु बाबू और पड़ोसी मास्टर जी के बीच कोई फर्क नहीं है। सन्तु बाबू जानते हैं कि जो आईना उनके घर में है वहीं आईना मास्टर जी के घर है। उनकी जैसी चारपाई वहां भी है। एक स्तर के आदमी जिस तरह खपते हैं, सामान भी उसी तरह खप जाता है। संघर्ष किस तरह चेहरे को सपाट और एक जैसा बना देता है, किस तरह एक ही वर्ग के लोग संघर्ष करते हुए एक दूसरे के प्रतिबिम्ब जैसे दिखलाई पड़ते हैं इसकी जानकारी

जब सन्तु को होती है तब उन्हें अकस्मात पत्नि का चेहरा याद आ जाता है – मुझे पति–पत्नि का चेहरा भी भाई बहन की तरह लगता था। लगातार साथ–साथ देखे जाने के कारण दिखने में एक सन्तुलन हो जाता है। शादी के तुरंत बाद जो तस्वीर खिचवाई थी उसमें कोई मेल नहीं था। साल भर बाद फोटो खिचवाई तो उसमें चेहरों का मेल दिखने लगा था। तब चेहरों का यह मेल जीवन की यातना को समान रूप से बाटकर उसे झेलने का ही परिणाम है। संघर्ष करते हुए सभी चेहरे कितने समान लगते हैं। कहीं कुछ भी फर्क नजर नहीं आता। धीरे–धीरे अभाव और अवसादों के बीच घिर हुआ दाम्पत्य जीवन एकरस, उत्कंठा रहित और जीवन्तता से रिक्त होता जाता है। तब लगता है – पत्नि का रिश्ता फुल को तोड़कर अपने पास रख लेने जैसा था। पेड़ में खिले फूल जैसा रिश्ता कहीं नहीं दिखता था।" सन्तु बाबू और श्रीमती सन्तु यांत्रिकी उपकरण की तरह जीते चले जाते हैं। उसी यांत्रिकी शैली में एक दूसरे का प्यार करते हैं। और अंत में यही महसूस करते हैं कि वे बेजान पुतले हैं जो अदृश्य के संकेतों पर चलते हैं।

पूंजीवादी मनोवृत्ति का चालाक भगिमा उपन्यासकार का तीक्ष्ण दृष्टि से बच नहीं पाती। पूंजीवादी व्यवस्था के कवच के रूप में साहब जब कहते हैं – 'मैं अपनी कमीज नौकर की कभी देना नहीं चाहूंगा। जो मैं पहनता हूँ उसे नौकर पहने यह मुझे पसंद नहीं है। जो स्वाद हमें मालूम है, उनको कभी नहीं मालुम होना चाहिए। अगर यह हुआ तो उनमें असन्तोष फैलेगा। बाद में हम लोगों को तकलीफ बढ़ जायेगी। खाना उनकी वैसा ही दो जैसा वे खाते हैं। जैसा हम खाते हैं वैसा बचा हुआ मत दो। सड़क किनारे चोट खाने वाले, चाट खाकर जो फेकतें हैं, वह मुझे गुस्सा दिलाता है। इसी के कारण आवारा गरीब लड़के पन्ने वाटक जादुई स्वाद का पता लगा लेते है जिससे चोरी, गुण्डागर्दी ओर एक मांगने वाली झंझटें बढ़ी है। अगर ये स्वाद के चक्कर में पड़ गये तो अपनी जान बचानी मुश्किल होगी।' तब लगता है पूंजीवाद पूरी सतर्कता के अपनी प्रतिरक्षा के लिए प्रयत्नशील है। उसकी संरचना की जानकर हो समय आने पर उसके मर्मस्थलों पर प्रहार कियाजा सकता है।

साहब के यहां काम करने वाले नौकर चाहे वह महंगू दया दुकालू महंगाई और दुकालू के प्रतीक बन जाते हैं। गांव से प्रतिदिन काम की तलाश में वे शहर आते हैं और खैर बाजार की तरह नौकर बाहर में बिकने के लिए खड़े हो जाते हैं, जहां सेठ या ड्रायवर रेजा छांटते समय कोशिश करते हैं कि वह जवान और अच्छी हो। इनसे रोजी तय करने में वे मजाक भी करते हैं। एक रोज का कितना लोगे। एक रात का कितना लोगे। घंटे भर का कितना। दस मिनट का कितना। अच्छे खानदानी लोग भी बेशर्मों से जवान सुन्दर लड़कियां को छांटकर के जाते थे। ऐसे छिछोरे लोगों के विषय में सन्तु बाबू ने अपने दोस्त संयत से एक दिन कहा -" गन्दगी वहां है जहां सफाई और सम्पन्नता है, वह आहाता है जहां से फूलों को खुशबू जाती है और घास पर बैठे हुए लोग है जो फुरसत से बैठ गए हैं। यही गन्दगी धीरे-धीरे फैलकर जिंदगी के हर खुबसूरत हिस्से पर अपना कब्जा जमा रही है।

उपन्यास के अंत में जब सन्तु बाबू की पत्नी बारिश की याद दिलाते हुए छप्पर के कमजोर होने की बात कहती है और भयभीत होती है तब सन्तु बाबू थक कर कहते हैं बेहतर है छप्पर ही टूटकर गिर जाये क्योंकि जब तक ऐसा नहीं होगा मकान मालिक इस छप्पर की मरम्मत नहीं करेगा। व्यापक सन्दर्भ में यह बात क्रांति की उन परिस्थितियों की ओर भी संकेत देती है जब जर्जर और प्राचीन व्यवस्था के ढह जाने के बाद ही नये निर्माण की शुरूआत होगी। यहां वहां एक दो बांध, एक दो कारखाने फटे कपड़े पर चस्पा किए गए थिगड़े की तरह लगते हैं। इस परिवर्तन से जिंदगी के मूल ढांचे में कोई फर्क नहीं आता। इसी तरह जब उपन्यास के अंतिम पृष्ठ में बच्चे का जन्म देने की मनः स्थिति में सन्तु को पत्नी तेजी से श्वास लेती है तो लगता है भविष्य की जन्म देने के लिए वर्तमान तेजी से श्वास ले रहा है। जीवन्त और शुद्ध प्राण वायु।

यह उपन्यास अपनी शक्ति और जीवन अनुभूतियों के कारण यह विश्वास दिलाता है कि उपन्यासकार विनोद कुमार शुक्ल में ऐसी अनेक संभावनाएं हैं जो किसी भी श्रेष्ठ उपन्यासकार के निर्माण के बीज तत्व के रूप में विद्यमान होती है। यह उनका पहला उपन्यास

है जिसमें कलात्मक सन्तुलन और ऊर्जा दोनों है। प्रारंभिक दो अध्याय किसी भी महान उपन्यास के समकक्ष रखे जा सकते हैं। यदि वे अपनी आगामी कृति में सामान्य लेकिन अप्रस्तुत जीवन संदर्भों को गहरा अर्थ दे सकें तो वे श्रेष्ठतम उपन्यासकारों की पंक्ति में होंगे। साहित्य में मौलिक और नये संदर्भ ही पर्याप्त नहीं होते उन नवीन संदर्भों के पीछे गहरी अन्तर्दृष्टि भी आवश्यक होती है जो छोटे-छोटे तथ्यों को विराट जीवन संदर्भों में बदलकर उसे गहरा अर्थ प्रदान करती है। ''नौकर की कमीज'' इस दिशा में एक सफल यात्रा है।

***

सामान्य मनुष्य की समय संगत कहानियाँ

त्रिभुवन पांडेय

जीवन की संरचना ऊपर से जितनी सरल और सीधी दिखलाई पड़ती है, वस्तुतः जीवन के भीतर प्रवेश करने पर वह उतनी ही उलझी और जटिल जान पड़ती है। अपने युग का प्रभावी रचनाकार जीवन की संरचनात्मक जटिलता को समझने का ही प्रयास नहीं करता, उसके विघटित होते हुए स्वरूप को संगठित करने का प्रयास भी करता है वह जीवन की उन मार्मिक अनुभूतियों को पाने का प्रयास करता है जो जीवन के मरूस्थल के भीतर निरन्तर बढ़ती रहती है। मानवीय संबंधों को संजोकर रखने वाली यह धारा कभी सूखती नहीं है, भले ही वह जीवन से विलुप्त होती हुई दिखाई पड़ती है।

'दर्द भरी यात्रा' की सत्रह कहानियों में से 'फातिमा रोती होगी' रिसता हुआ इतिहास, समझौता एक्सटेंशन और हड़ताल जैसी कहानियाँ जीवन मूल्यों को संयोजित करने का सार्थक प्रयास करती है। देवीप्रसाद वर्मा इन कहानियों के शिल्प के साथ–साथ कथ्य को भी मार्मिक और प्रभावी रूप देने में समर्थ दिखलाई पड़ते हैं। आज के संदर्भों में भी इन कहानियों की प्रासंगिकता महत्वपूर्ण है और भविष्य में भी इनकी जरूरत पाठकों के बीच बनी रहेगी।

आज जब भारतीय जनजीवन में व्याप्त, उदारता, सहृदयता, बंधुत्वभाव की संकीर्णता और आत्मकेन्द्रित जीवनदृष्टि में तब्दील करने की पुरजोर कोशिश चल रही है तब 'फातिमा रोती होगी' कहानी की संवेदना कितनी महत्वपूर्ण और आवश्यक जान पड़ती है। साम्प्रदायिक दंगे के कारण गांव छोड़कर कलकत्ता चल देने वाले मलखान का कुछ दिनों के बाद फातिमा के खिलौने लेकर वापस लौटना बड़े ही सहज आत्मीय भावों को प्रतिबिंबित करता

है । साम्प्रदायिक दंगे के बाद जो निकटता है, जो भाईचारा है वह अटूट है । उसे कोई दुर्घटना तोड़ नहीं सकती । फातिमा और रमेश के बीच जो अगाध प्रेम है वह झील के पानी की तरह साफ, सुन्दर और पवित्र है। यही मानवीय संबंध इस देश की खूबसूरत संस्कृति की सबसे बड़ी उपलब्धि है । देवीप्रसाद वर्मा की यह कहानी जीवन मूल्यों को पहचानने के कारण सदैव के लिए मार्मिक और स्मरणीय कहानी बन जाती है ।

'रिसता हुआ इतिहास' एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो गरीबी और अभावों में संघर्ष करता हुआ सम्पन्न व्यक्ति बनता है । लेकिन संपन्नता की चकाचौंध में वह अपनी विषमता को कभी विस्मृत नहीं कर पाता । वह जानता है कि भ्रष्ट आचरण से अर्जित संपन्नता की अपेक्षा निष्ठा और ईमान के साथ प्राप्त विपन्नता कहीं ज्यादा सम्मानजनक है । दीपावली के दिन दुकानदार द्वारा गरीब ग्राहक की उपेक्षा करने पर वह खीझ उठता है । वह सेठ से कहता है – "आज से ये बात गाँठ बांध लो कि किसी भी छोटे ग्राहक को अपमानित नहीं करना ।" 'उसके मूलतः दो कारण हैं ।' इनका पैसा खास ईमान का होता है और बरकत इसी पैसे से होती है ।

'समझौता' कहानी के शर्मा जी का द्वंद्व उनके अकेले का द्वंद्व नहीं है । आज कितने ही शर्मा जी जैसे ईमानदार कर्मचारी हैं जो अपनी ईमानदारी की यातना झेलने के लिये विवश हैं । आर्थिक अभावों के बाद भी जो अपनी आत्मचेतना को गिरवी रखना नहीं चाहते । अपनी आकांक्षाओं को कुचलकर, भौतिक सुविधाओं को ठोकर मारकर जो निष्ठा और ईमान को जीवित रखना चाहते हैं लेकिन भौतिक आवश्कताओं की आँधी के सामने जिनका स्थिर रहना दिनोदिन कठिन होता जा रहा है । शर्माजी को लगता है यदि युगानुरूप समझौता नहीं किया गया तो यातनाओं का बोझ कभी कम नहीं होगा । शर्मा जी में आने वाला यह परिवर्तन ईमानदार पीढ़ी के कमजोर होने का ऐसा संकेत है जिस पर आने वाली पीढ़ी को विचार करना पड़ेगा । शर्मा जी का टूटना जीवन मूल्यों के टूटने का संकेत है । शर्मा जी की हताशा ईमानदार और निष्ठावान पीढ़ी की हताशा है । शर्मा जी की यह कहानी आते हुए संकट की पूर्व सूचना है ।

'एक्सटेंशन' कहानी रामेश्वर दयाल श्रीवास्तव एक्सटेंशन के लिए की गई याचना के अस्वीकृत हो जाने की कहानी है। ईमानदारी के साथ सेवा करने के बाद भी उसे नौकरी में कुछ दिनों के लिये एक्सटेंशन नहीं मिलता जबकि वह पूर्णतः स्वस्थ और सक्रिय है। चीफ सेक्रेटरी तक वह गिड़गिड़ाता है मगर उसकी कोई सुनवाई नहीं होती। ठीक इसके विपरीत चीफ सेक्रेटरी को तुरन्त एक्सटेंशन मिल जाता है। समाचार पढ़कर रामेश्वर दयाल को लगता है समाज में जो ताकतवर है नियम भी उसी के अनुकूल परिवर्तित होते जाते हैं। चीफ सेक्रेटरी को एक्सटेंशन मिलना एक क्लर्क को एक्सटेंशन मिलने से कहीं ज्यादा आसान है।

'हड़ताल' इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। फैक्टरी के द्वारा उत्पादित चीजों की बिक्री गिर जाने पर फर्म के सामने घाटे का संकट उपस्थित हो गया। फैक्टरी चलने का अर्थ था स्टॉक का ढेर लगना। घाटे का बढ़ता जाना। इस संकट का सामना करने के लिये फैक्टरी का मेनेजिंग डायरेक्टर मजदूर नेता के साथ मिलकर हड़ताल घोषित करा देता है। हड़ताल की घोषणा के साथ ही फैक्टरी का काम बंद हो जाता है। उत्पादन रूक जाने से बढ़ता हुआ स्टॉक थम जाता है। कुछ दिनों बाद रूके हुए स्टॉक की कीमत बढ़ जाने पर कम्पनी को काफी मुनाफा होता है। मैनेजिंग डायरेक्टर उस मुनाफे का कुछ अंश मजदूरों को देकर हड़ताल समाप्त करा लेता है। इस कार्य के पुरस्कार के रूप में वह मजदूर नेता को शानदार डिनर और एक बंगला प्रदान करता है। मजदूरों के हित के लिए लड़ने वाले तथाकथित नेताओं का जिस खूबी से पर्दाफाश किया गया है वह इस कहानी को पठनीय बना देता है। कथाकार की व्यापक कथादृष्टि का परिचय भी इस कहानी के माध्यम से मिलता है।

सुप्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर की यह टिप्पणी इन कहानियों के संदर्भ में बेहद सटीक लगती है – 'इन कहानियों के भीतर एक वैचारिक टीस है जो बहुत बड़ी न लगती हो परन्तु बहुत व्यापक फलक पर मनुष्य की मूलभूत आशाओं और आकांक्षाओं को समेटते हुए उसके मोहभंग की दारूण कहानी बन जाती है। देवीप्रसाद वर्मा की यह कहानियां सामान्य मनुष्य की समय संगत कहानियां है।'

कमलेश्वर की यह टिप्णी 'दर्द भरी यात्रा' की सत्रह कहानियां में से बार–बार प्रतिध्वनित होती हुई जान पड़ती है। देवीप्रसाद वर्मा के कथा संसार को जितनी गहराई के साथ कमलेश्वर ने उपलब्ध किया गया है वह वर्मा जी के कथाकार की कथादृष्टि को रेखांकित करने के लिये यथेष्ट है। 'दर्द भरी यात्रा' की कहानियां अपनी रोचकता को यथावत रखकर जिस मार्मिकता के साथ समकालीन जीवन के टीसते हुए सच को उद्घाटित करने का प्रयास करती है, उसे पढ़कर प्रत्येक पाठक का अनुभव संसार अधिक संवेदनशील तथा मानवीय संबंधों को जानने समझने की दृष्टि से समृध्द होता जाता है।

***

त्रिभुवन पाँडेय

जन्म	:	21 नवम्बर 1938
जन्म स्थल	:	धमतरी
पता	:	सोरिद नगर/धमतरी (छत्तीसगढ़) पिन - 493773, फोन - 232815
कृति	:	भगवान विष्णु की भारत यात्रा (व्यंग्य उपन्यास) विश्व पॉकेट बुक दिल्ली पम्पापुर की कथा (व्यंग्य संग्रह) श्री प्रकाशन, ए-14, आदर्श नगर, दुर्ग (छ.ग.) झूठ जैसा सच (लघु उपन्यास) पँछी मत हँसो (हास्य व्यंग्य एकांकी संग्रह) सुनो सूत्रधार (गीत संग्रह) महाकवि तुलसी (जीवनी) ब्यूटी पार्लर में भालू (व्यंग्य संग्रह) लोकवाणी प्रकाशन दिल्ली कागज की नाव (गीत संग्रह) गाओ वन पाँखी (गीत संग्रह) व्यंग्य, नाटक, कविता, समीक्षा, रिपोर्ताज प्रकाशित। 'मोर्चा फीचर' में साप्ताहिक व्यंग्य प्रकाशन। महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय वर्धा द्वारा प्रकाशित "भारत की जनपदीय कविता" के छत्तीसगढ़ खंड का संपादन।
सम्मान	:	छत्तीसगढ़ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, रायपुर -1988 "स्मृति नारायण लाल परमार सम्मान - 2005" साहित्य संगीत सांस्कृतिक मंच, मुग्जगहन "साहित्य भूषण अलंकरण" निराला साहित्य मंडल चाम्पा - 2009 "गीत साधक सम्मान" -जिला हिन्दी साहित्य समिति, दुर्ग